

अश्ववैद्यकम् ।

TREATISE ON THE VETERINARY SCIENCE.



महासामन्त श्रीजयदत्तकृतम् ।

नथा

अश्वचिकित्सितम् ।

श्रीनकुलकृतम् ।

पण्डितकुलपतिना वि, ए उपाधिधारिणा

श्रीजीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्येण

संस्कृतं प्रकाशितञ्च ।



द्वितीयसंस्करणम् ।

कलिकातानगर्याम्

सिद्धेश्वरयन्त्रे

मुद्रितः ।

५ १८६३ ।

अथ अष्टवैद्यकस्य सूचीपत्रम् ।

उद्देशाध्यायः प्रथमः

[१—२ पृष्ठा]

श्लोकसंख्या ।

| | | |
|-----------------------|-----|---|
| मङ्गलाचरणम् | ... | १ |
| ग्रन्थकारप्रतिज्ञा | ... | २ |
| ग्रन्थकर्तुः परिचयः | ... | ४ |
| अध्यायसंख्यानिर्देशः | ... | ५ |
| श्लोकसंख्यानिर्देशः | ... | ५ |
| ग्रन्थप्रतिपाद्यकथनम् | ... | ६ |

प्रदेशाध्यायो द्वितीयः

[२ पृ०-५ पृ०]

| | | |
|----------------------------|-----|---|
| जिह्वादिष्वसर्वप्रदेशकथनम् | ... | २ |
|----------------------------|-----|---|

सर्वलक्षणाध्यायः तृतीयः

[५ पृ-२१ पृ०]

| | | |
|--------------------------------------|---------------|--|
| यत्र प्रदेशे यल्लक्षणं शुभं तत्कथनम् | (३-८ श्लोक) | |
|--------------------------------------|---------------|--|

| | | |
|---|-----|---------|
| अङ्गशुभलक्षणानि | ... | १० |
| शुभावर्त्तकथनम् | ... | २६ |
| अशुभावर्त्तकथनम् | ... | ४० |
| शुभपुण्ड्रककथनम् | ... | ७३ |
| अशुभपुण्ड्रककथनम् | ... | ७६ |
| स्यः नविशेषषु शुभाशुभपुष्पकथनम् | ... | ८२ |
| गतिकथनम् | ... | ८३ |
| वर्णकथनम् | ... | ८८ |
| कीकाहादिलक्षणम् | ... | १०० |
| कयाहलक्षणम् | ... | १०१ |
| मेराहलक्षणम् | ... | १०१ |
| मुरुहकलक्षणम् | ... | १०१ |
| नीलकलक्षणम् | ... | १०२ |
| त्रियूहलक्षणम् | ... | १०२ |
| खिलाहलक्षणम् | ... | १०२ |
| हलाहलङ्गाङ्गुलाहलक्षणानि | ... | १०३ |
| सराहलक्षणम् | ... | १०४ |
| वेरुहानलक्षणम् | ... | १०५ |
| उकनाहलक्षणम् | ... | १०६ |
| पुण्ड्रकविशेषिण्य कीकाहादीनां संज्ञान्तरकथनम् | ... | १०७-११० |
| वाजिदेहगतवर्णानां शुभाशुभलक्षणकथनम् | ... | १११-१२४ |
| अष्टमङ्गललक्षणम् | ... | ११३ |

| | | | |
|---|-----|--------------------------|---------|
| भङ्गिकाञ्चलक्षणम् | ... | ... | ११५ |
| पञ्चभद्रलक्षणम् | ... | ... | १२०-१२१ |
| स्वरकथनम् | ... | .. | १२५ |
| महादोषकथनम् | ... | ... | १३५ |
| काकुदीलक्षणम् | ... | ... | १४० |
| करालीलक्षणम् | ... | ... | १४१ |
| हौनदन्तलक्षणम् | ... | ... | १४१ |
| अधिकदन्तलक्षणम् | ... | ... | १४२-१४५ |
| एकाण्डलक्षणम् | ... | ... | १४६ |
| जाताण्डलक्षणम् | ... | ... | १४६ |
| कञ्चुकिलक्षणम् | ... | ... | १४७ |
| मार्जारपादलक्षणम् | ... | ... | १४८ |
| द्विसरिलक्षणम् | ... | ... | १४९ |
| द्विखुरिलक्षणम् | ... | ... | १५० |
| सञ्जातवृषणलक्षणम् | ... | ... | १५१ |
| स्तनिलक्षणम् | ... | ... | १५१ |
| त्रिकर्णिलक्षणम् | ... | ... | १५२ |
| व्याघ्रवर्णलक्षणम् | ... | .. | १५२ |
| वामनयमजलक्षणम् | ... | ... | १५३ |
| सुषलिलक्षणम् | ... | ... | १५४ |
| इन्द्रवज्रलक्षणम् | ... | ... | १५५ |
| एतद्दीपयुक्तघोटकरक्षणात् सुरथादिरशुभकथनम् | ... | ... | १५८ |
| उत्पातकथनम् | ... | ... | १६० |
| कायाकथनम् | ... | ... | १७१ |
| सलकथनम् | ... | ... | १८० |
| प्रमाणकथनम् | ... | .. | १८२ |
| आयुर्वयोज्ञानाध्यायः चतुर्थः | | [२१ पृ०—२४ पृ०] | |
| दीर्घायुर्लक्षणकथनम् | ... | ... | १ |
| स्वन्यायुर्लक्षणकथनम् | ... | ... | १२ |
| दन्तैर्वयोज्ञानकथनम् | ... | ... | १८ |
| कालिकादिरेखया वयोज्ञानम् | ... | ... | २० |
| पतितापतितीत्यदन्तलक्षणम् | ... | ... | २९ |
| दशक्षेत्राध्यायः पञ्चमः | | [२४ पृ०-२५ पृ०] | |
| दशविधदशाकथनम् | ... | ... | १ |

| | | | |
|--------------------------------|-----|--------------------------|----|
| दशापरिमाणकथनम् | ... | ... | २ |
| दशाक्षेत्रकथनम् | ... | ... | ३ |
| जन्मदेशाध्यायः षष्ठः | | [२५ पृ०-२६ पृ०] | |
| उत्तमाश्रसंख्या | ... | ... | २ |
| मध्यमाश्रसंख्यादि | ... | ... | ३ |
| अधमाश्रसंख्या | ... | ... | ४ |
| उत्तमतजिकाश्रलक्षणम् | ... | ... | ५ |
| उत्तमपारसीकाश्रलक्षणम् | ... | ... | ८ |
| मध्यमकेकणाश्रलक्षणम् | ... | ... | ९ |
| मध्यमतुरुक्ताश्रलक्षणम् | ... | ... | ११ |
| मध्यमभास्वजाश्रलक्षणम् | ... | ... | १२ |
| सैन्यायश्रलक्षणम् | ... | ... | १३ |
| वाहनविधानाध्यायः सप्तमः | | [२७ पृ०-३३ पृ०] | |
| विप्रादित्वाहनविवरणम् | ... | ... | १ |
| विप्रादिजातिलक्षणम् | ... | ... | ४ |
| विप्रादिवशीकरणम् | ... | ... | ६ |
| सत्वशक्तिद्वाहनविवरणम् | ... | ... | ८ |
| रङ्गभूमिविवरणम् | ... | ... | ११ |
| दोषगुणताडनविवरणम् | ... | ... | १३ |
| धारागतिविवरणम् | ... | ... | २४ |
| वल्गादिविवरणम् | ... | ... | ३० |
| आदिवाहने तिथिनक्षत्रादिकथनम् | ... | ... | ३७ |
| धूपादिविवरणम् | ... | ... | ५६ |
| सादिकार्यविवरणम् | ... | ... | ६३ |
| बन्धोपचाराध्यायोऽष्टमः | | [३३ पृ०-३४ पृ०] | |
| बन्धाया गर्भधारणे उपचारविवरणम् | ... | ... | ० |
| गर्भज्ञानाध्यायो नवमः | | [३४ पृ०-३५ पृ०] | |
| सर्गभालक्षणकथनम् | ... | ... | १ |
| गर्भप्रथमादिमासलक्षणकथनम् | ... | ... | ८ |
| सूतिकोपचाराध्यायो दशमः | | [३५ पृ०-३७ पृ०] | |
| प्रसूतायामुपचारकथनम् | ... | ... | १ |
| चौरशीघनम् | ... | ... | १२ |
| किशोरोपचारप्रकरणम् | ... | ... | १८ |

द्रव्यमात्राज्ञानाध्याय एकादशः

[३७ पृ०—४१ पृ०]

| | | | |
|-------------------------------|-----|-----|----|
| मानपरिभाषाकथनम् | ... | ... | २ |
| शुष्कादिद्रव्यमात्राकथनम् | ... | ... | ५ |
| भोजने यवादिमात्राकथनम् | ... | ... | ६ |
| नस्यधूपकर्णपूरणादिमात्राकथनम् | ... | ... | २४ |
| भ्रानूपादिपशुमांसगुणकथनम् | ... | ... | ३१ |

निघण्टुध्यायो द्वादशः

[४१ पृ०—४७ पृ०]

| | | | |
|------------------------|-----|-----|------|
| द्रव्याणां पर्यायकथनम् | ... | ... | १ ७७ |
|------------------------|-----|-----|------|

ऋतुविभागाध्यायः त्रयोदशः

[४८ पृ०—५५ पृ०]

| | | | |
|-------------------------------|-----|-----|----|
| सर्वर्तूपचारे ऋतुविभागविवरणम् | ... | ... | १ |
| शालानिर्माणविवरणम् | ... | ... | ६ |
| वर्षापीषणविवरणम् | ... | ... | १५ |
| शरत्पीषणविवरणम् | ... | ... | २६ |
| हेमन्तपीषणविवरणम् | ... | ... | ३३ |
| शिशिरपीषणविधिः | ... | ... | ६५ |
| वसन्तपीषणविधिः | ... | ... | ७५ |
| ग्रीष्मपीषणविधिः | ... | ... | ८२ |
| सर्वर्तुपीषणविधिः | ... | ... | ८४ |

क्षाराग्निशस्त्रविधानाध्यायः चतुर्दशः

[५५ पृ०—५७ पृ०]

| | | | |
|-----------------|-----|-----|----|
| क्षारदाहविधानम् | ... | ... | १ |
| लौहदाहविधानम् | ... | ... | ७ |
| मैदीदाहविधानम् | ... | ... | १३ |
| टाहलक्षणम् | ... | ... | २० |
| शस्त्रविधानम् | ... | ... | २१ |

शिराविधाध्यायः पञ्चदशः

[५७ पृ०—६० पृ०]

| | | | |
|--------------------|-----|-----|----|
| शिराविधकालनिरूपणम् | ... | ... | १ |
| शोणितविवरणम् | ... | ... | ६ |
| वेधस्थानकथनम् | ... | ... | १२ |

निरूहानुवासनाध्यायः षोडशः

[६१ पृ०—६३ पृ०]

| | | | |
|---------------------|-----|-----|----|
| नेत्रनिर्माणविवरणम् | ... | ... | १ |
| अनुवासनविवरणम् | ... | ... | ६ |
| निरूहविवरणम् | ... | ... | १४ |

नस्याध्यायः सप्तदशः

[६३ पृ०—६४ पृ०]

| | | | |
|-----------|-----|-----|---|
| नस्यविधिः | ... | ... | १ |
|-----------|-----|-----|---|

| | | |
|---|-------------------|----|
| वातादिरोगेषु विविधनस्यकथनम् | ... | ६ |
| स्वेदविधानाध्यायः अष्टादशः | [६४ पृ०—६५ पृ०] | |
| पुटस्वेदकथनम् | ... | १ |
| शङ्करस्वेदकथनम् | ... | २ |
| तुषस्वेदकथनम् | ... | ५ |
| कफादौ स्वेदकथनम् | ... | ६ |
| यत्र स्वेदनिषेधस्तत्कथनम् | ... | ८ |
| स्नेहप्रयोगाध्यायः एकोनविंशः | [६५ पृ०—६७ पृ०] | |
| घृतपानकालकथनम् | ... | १ |
| तैलपानकथनम् | ... | २ |
| घृतादिपाननियमकथनम् | ... | ५ |
| सस्यर्क्षस्त्रग्धगुणकथनम् | ... | ८ |
| अतिस्निग्धलक्षणं तत्प्रतीकारम् | ... | ९ |
| अतिस्निग्धस्य भोजनविधिः | ... | १० |
| तैलविधानाध्यायः विंशः | [६७ पृ०—६८ पृ०] | |
| मधुकारितैलम् | ... | १ |
| त्रिवृत्कार्पः | ... | ३ |
| प्रसारणतैलम् | ... | ५ |
| घृतविधानाध्यायः एकविंशः | [६८ पृ०—६९ पृ०] | |
| पञ्चतित्तघृतम् | ... | १ |
| करञ्जाद्यं घृतम् | ... | २ |
| द्वितीयं पञ्चतित्तं घृतम् | ... | ५ |
| श्रान्तोपचाराध्यायः द्वाविंशः | [६९ पृ०—७० पृ०] | |
| श्रान्तोपचारकथनम् | ... | १ |
| स्नानस्थारिष्टाध्यायः त्रयोविंशः | [७० पृ०—७२ पृ०] | |
| भोजनारिष्टकथनम् | ... | २ |
| क्वाथारिष्टकथनम् | ... | ३ |
| दर्शनान्द्र्यारिष्टकथनम् | ... | १० |
| श्रवणान्द्र्यारिष्टकथनम् | ... | ११ |
| रसनान्द्र्यारिष्टकथनम् | ... | १६ |
| वेधारिष्टाध्यायः चतुर्विंशः | [७२ पृ०—७४ पृ०] | |
| वेधारिष्टनिदानलक्षणम् | ... | ४ |
| वेधाख्योपसर्गलक्षणम् | ... | ४ |
| वेधारिष्ट चिकित्सा | ... | १५ |

| | |
|--|-------------------|
| कौटारिष्टाध्यायः पञ्चविंशः | [७४ पृ०—७५ पृ०] |
| कौटनिदानलक्षणम् | ... |
| तच्चिकित्सा | ... |
| मृगरोगाध्यायः षड्विंशः | ७५ पृ० |
| मृगरोगलक्षणम् | ... |
| तच्चिकित्सा | ... |
| वातादिकोपाध्यायः सप्तविंशः | ७६ पृ० |
| प्रकीपनिदानलक्षणम् | ... |
| वातादिप्रकीपकालकथनम् | ... |
| व्याधिनिर्देशाध्यायः अष्टाविंशः | [७६ पृ०—७७ पृ०] |
| मुखरोगादिलक्षणनिर्देशः | ... (१—७) श्लो० |
| मुखरोगाध्यायः एकोनत्रिंशः | [७७ पृ०—८० पृ०] |
| मुखरोगनिर्वाचनम् | ... (१—२) श्लो० |
| मुखरोगनिदानलक्षणम् | ... |
| मुखरोगचिकित्सा | ... १६ |
| अक्षिरोगाध्यायः त्रिंशः | [८० पृ०—८७ पृ०] |
| अक्षिरोगनिर्वाचनम् | ... (१—३) श्लो० |
| वातिकार्क्षिरोगनिदानलक्षणानि | ... |
| तच्चिकित्सा | ... ६ |
| पैत्तिकार्क्षिरोगलक्षणानि | ... २१ |
| तच्चिकित्सितम् | ... २४ |
| प्रचारलक्षणचिकित्सितम् | ... ३१ |
| काचलक्षणचिकित्से | ... ३७ |
| रक्तजार्क्षिरोगलक्षणानि | ... ४४ |
| तच्चिकित्सा | ... ४७ |
| पटललक्षणम् | ... ५४ |
| तच्चिकित्सा | ... ५८ |
| मुञ्जनालचिकित्सा | ... ६७ |
| वर्त्मकुन्दचिकित्सा | ... ८० |
| शिरोरोगचिकित्साध्यायः एकत्रिंशः | [८७ पृ०—९० पृ०] |
| वातिकशिरोरोगलक्षणम् | ... |
| तच्चिकित्सा | ... ४ |
| पैत्तिकशिरोरोगलक्षणम् | ... |
| तच्चिकित्सा | ... ७ |

| | श्लोकसंख्या । |
|---------------------------------------|----------------------------|
| श्लेष्मिकश्विरीरोगचिकित्सा ... | १३ |
| सान्निपातिकश्विरीरोगचिकित्सा ... | १८ |
| रक्ताभिघातश्विरीरोगचिकित्सा ... | २३ |
| लङ्घितरोगाध्यायः द्वात्रिंशः | [६० पृ०—६३ पृ०] |
| लङ्घितलक्षणम् ... | १ |
| तच्चिकित्सा ... | ४ |
| कर्णरोगाध्यायः त्रयस्त्रिंशः | ६३ पृ० |
| कर्णरोगनिदानचिकित्सिते ... | १ |
| कासरोगाध्यायः चतुस्त्रिंशः | [६४ पृ०—६६ पृ०] |
| कासरोगनिदानलक्षणानि ... | १ |
| वातकासचिकित्सा ... | ६ |
| पित्तकासचिकित्सा ... | १७ |
| श्लेष्मकासचिकित्सा ... | २४ |
| हिक्काश्वासाध्यायः पञ्चत्रिंशः | [६६ पृ०—६७ पृ०] |
| हिक्काश्वासनिदानलक्षणम् ... | १ |
| हिक्काश्वासचिकित्सा ... | ५ |
| ब्रणरोगाध्यायः षट्त्रिंशः | [६८ पृ०—६९ पृ०] |
| ब्रणनिदानलक्षणानि ... | १ |
| ब्रणचिकित्सा ... | (८२३) श्लो० |
| सिद्धानरोगाध्यायः सप्तत्रिंशः | [१०० पृ०—१०२ पृ०] |
| वातादिसिद्धानलक्षणानि ... | १ |
| तच्चिकित्सा ... | ४ |
| पौलकहृन्वजसिद्धानकचिकित्सा ... | १४ |
| शृणिरोगाध्यायः अष्टत्रिंशः | [१०२ पृ०—१०३ पृ०] |
| शृणिरोगलक्षणम् ... | १ |
| शृणिचिकित्सा ... | २ |
| पादरोगाध्यायः एकोनचत्वारिंशः | [१०३ पृ०—१०६ पृ०] |
| पादरोगसङ्ग्रहा ... | १ |
| पादरोगलक्षणानि ... | ६ |
| एषां चिकित्सा ... | २३ |
| ज्वररोगाध्यायः चत्वारिंशः | [१०६ पृ०—१०८ पृ०] |
| वातज्वरनिदानलक्षणानि ... | १ |
| वातज्वरचिकित्सा ... | ४ |
| पित्तज्वरलक्षणम् ... | ८ |

| | | | |
|--|---------------------|-----|----|
| पित्तज्वरचिकित्सा | ... | ... | ६ |
| श्लेष्मज्वरनिदानम् | ... | ... | १८ |
| तच्चिकित्सा | ... | ... | २० |
| सन्निपातज्वरलक्षणचिकित्साः | ... | ... | २४ |
| अभिघातज्वरलक्षणचिकित्साः | ... | ... | २५ |
| अजीर्णरोगाध्यायः एकचत्वारिंशः | [१०६ पृ०—११० पृ०] | | |
| अजीर्णलक्षणम् | ... | ... | १ |
| तच्चिकित्सा | ... | ... | ३ |
| अतीसाराध्यायः द्विचत्वारिंशः | [११० पृ०—१११ पृ०] | | |
| वाताद्यतीसारलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| पित्तातिसारचिकित्सा | ... | ... | १२ |
| श्लेष्मातिसारचिकित्सा | ... | ... | १५ |
| आमसन्निपातहृन्जातिसारचिकित्सा | ... | ... | १८ |
| गूलरोगाध्यायः त्रिचत्वारिंशः | [११२ पृ०—११३ पृ०] | | |
| पञ्चविधगूलनिदानलक्षणानि | ... | ... | १ |
| सौमिच्चविवन्धचिकित्सा | ... | ... | ७ |
| उदावर्त्तरोगाध्यायः चतुश्चत्वारिंशः | [११३ पृ०—११४ पृ०] | | |
| उदावर्त्तलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| प्रस्कन्नरोगाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः | [११४ पृ०—११५ पृ०] | | |
| प्रस्कन्नरोगलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| कृमिकोष्ठाध्यायः षट्चत्वारिंशः | [११५ पृ०—११६ पृ०] | | |
| कृमिकोष्ठनिदानचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| श्लेष्मिकोष्ठनिदानचिकित्सितम् | ... | ... | १७ |
| मूत्रग्रहणरोगाध्यायः सप्तचत्वारिंशः | [११६ पृ०—११८ पृ०] | | |
| वातादिमूत्रग्रहणलक्षणानि | ... | ... | १ |
| वातमूत्रग्रहणचिकित्सा | ... | ... | ५ |
| पित्तमूत्रग्रहणचिकित्सा | ... | ... | ६ |
| श्लेष्ममूत्रग्रहणचिकित्सा | ... | ... | १३ |
| कुष्ठरोगाध्यायः अष्टचत्वारिंशः | [११८ पृ०—११९ पृ०] | | |
| कुष्ठरोगलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| शोथरोगाध्यायः एकोनपञ्चाशत्तमः | [११९ पृ०—१२१ पृ०] | | |
| वातादिशोथलक्षणम् | ... | ... | १ |
| वातशोथसाधारणचिकित्सा | ... | ... | ६ |
| वातशोथचिकित्सा | ... | ... | १० |

| | | | |
|--|-----|----------------------------|----|
| पित्तश्लैथचिकित्सा | ... | ... | १४ |
| श्लैथश्लैथचिकित्सा | ... | ... | १७ |
| मुष्करोगाध्यायः पञ्चाशत्तमः | | [१२१ पृ०—१२५ पृ०] | |
| वाताखलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| पित्ताखलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १२ |
| श्लैथाखलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १७ |
| पौताखलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | २३ |
| रक्ताखलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | ३५ |
| श्रौनीतरोगाध्यायः एकपञ्चाशत्तमः | | [१२५ पृ०—१२६ पृ०] | |
| श्रौनीतरोगलक्षणम् | ... | ... | १ |
| तच्चिकित्सा | ... | ... | ५ |
| उदररोगाध्यायः द्विपञ्चाशत्तमः | | [१२६ पृ०—१२८ पृ०] | |
| अष्टविधीदरनामलक्षणानि | ... | ... | १ |
| वातीदरचिकित्सा | ... | ... | १२ |
| पित्तीदरचिकित्सा | ... | ... | १८ |
| श्लैथीदरचिकित्सा | ... | ... | २० |
| अर्शोरोगाध्यायः त्रिपञ्चाशत्तमः | | [१२८ पृ०—१३० पृ०] | |
| अर्शलक्षणम् | ... | ... | १ |
| तच्चिकित्सा | ... | ... | ३ |
| उत्कर्णरोगाध्यायः चतुःपञ्चाशत्तमः | | [१३० पृ०—१३१ पृ०] | |
| उत्कर्णलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| वातव्याध्यध्यायः पञ्चपञ्चाशत्तमः | | [१३२ पृ०—१३३ पृ०] | |
| मन्यास्रभ्रादिलक्षणानि | ... | ... | १ |
| एषां चिकित्साः | ... | ... | १३ |
| उन्मादाध्यायः षट्पञ्चाशत्तमः | | [१३३ पृ०—१३४ पृ०] | |
| उन्मादनिदानलक्षणम् | ... | ... | १ |
| तच्चिकित्सा | ... | ... | ५ |
| ग्रहगृहीताध्यायः सप्तपञ्चाशत्तमः | | [१३५ पृ०—१३८ पृ०] | |
| ग्रहनामलक्षणानि | ... | ... | ३ |
| तेषां ग्रान्यादिचिकित्सा | ... | ... | ३३ |
| शोषरोगाध्यायः अष्टपञ्चाशत्तमः | | [१३८ प०—१३९ प०] | |
| वातादिशोषलक्षणानि | ... | ... | ३ |

| | | | |
|--|---------------------|-----|---------|
| एतच्चिकित्साः | ... | ... | ८ |
| वातवलासकाध्यायः एकोनषष्टितमः | | | १४० पृ० |
| वातवलासकलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| व्यापदाध्यायः षष्टितमः | [१४० पृ०—१४१ पृ०] | | |
| व्यापदलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| विषरोगाध्यायः एकषष्टितमः | [१४१ पृ०—१४२ पृ०] | | |
| विषलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| अपस्माररोगाध्यायः द्विषष्टितमः | | | १४३ पृ० |
| अपस्मारलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| षट्पदीभक्षाध्यायः त्रिषष्टितमः | | | १४३ पृ० |
| षट्पदीभक्षलक्षणचिकित्सितम् | ... | ... | १ |
| साध्यासाध्यविवेकाध्यायः चतुःषष्टितमः [१४४पृ०—१४५पृ०] | | | |
| रोगाणामसाध्यलक्षणानि | ... | ... | १ |
| साध्यलक्षणानि | ... | ... | १८ |
| प्रकृतिज्ञानाध्यायः पञ्चषष्टितमः | | | १४६ पृ० |
| वातादिप्रकृतिलक्षणानि | ... | ... | १ |
| रसोनकल्पाध्यायः षट्षष्टितमः [१४६ पृ०—१४८ पृ०] | | | |
| रसोनप्रयोगव्यवस्था | ... | ... | १ |
| गुग्गुलुकल्पाध्यायः सप्तषष्टितमः [१४८ पृ०—१५० पृ०] | | | |
| गुग्गुलुप्रयोगविधिः | ... | ... | १ |
| रसायनकल्पाध्यायः अष्टषष्टितमः [१५० पृ०—१५१ पृ०] | | | |
| रसायनप्रयोगविधिः | ... | ... | १ |

नकुल कृतम्

अश्वचिकित्सितम् ।

| | | | |
|-----------------|-----|-----|---------|
| | | | पृष्ठाः |
| प्रथमोऽध्यायः | | | |
| प्रश्नः | | | १५२ |
| द्वितीयोऽध्यायः | | | |
| जात्यधिकारकथनम् | ... | ... | १५४ |
| तृतीयोऽध्यायः | | | |
| वर्णवर्णनम् | ... | ... | १५६ |

| | | | |
|------------------------|-----|-----|-----|
| चतुर्थोऽध्यायः | | | |
| भावार्थकथनम् | ... | ... | १५८ |
| पञ्चमोऽध्यायः | | | |
| दन्तकथनम् | ... | ... | १६१ |
| षष्ठोऽध्यायः | | | |
| सर्वावयवप्रमाणकथनम् | ... | ... | १६२ |
| सप्तमोऽध्यायः | | | |
| वेगकथनम् | ... | ... | १६४ |
| अष्टमोऽध्यायः | | | |
| आरोहणकथनम् | ... | ... | १६५ |
| नवमोऽध्यायः | | | |
| वाहनकथनम् | ... | ... | १६७ |
| दशमोऽध्यायः | | | |
| ऋतुपरीक्षाकथनम् | ... | ... | १७० |
| एकादशोऽध्यायः | | | |
| ऋतुचर्याकथनम् | ... | ... | १७६ |
| द्वादशोऽध्यायः | | | |
| नस्यकथनम् | ... | ... | १७९ |
| त्रयोदशोऽध्यायः | | | |
| पिण्डकथनम् | ... | ... | १८३ |
| चतुर्दशोऽध्यायः | | | |
| घृतविधानकथनम् | ... | ... | १८७ |
| पञ्चदशोऽध्यायः | | | |
| क्वाथवर्णनम् | ... | ... | १८८ |
| षोडशोऽध्यायः | | | |
| विषकथनम् | ... | ... | १८९ |
| अष्टादशोऽध्यायः | | | |
| अथशालाविधिकथनम् | ... | ... | १९१ |

अप्रववैद्यकम् ।



प्रथमोऽध्यायः ।

उद्देशः ।

प्रणम्य शङ्करं भक्त्या शङ्करं सर्वदेहिनाम् ।
शिवाय जगतो जातां शिवाञ्चापि विशेषतः ॥ १ ॥
सुखावबोधशब्दार्थं ग्रन्थविस्तरवर्जितम् ।
लक्षणं वाजिदेहस्थं संक्षेपेण यथाक्रमम् ॥ २ ॥
चिकित्सा च समासेन सिद्धौषधसमन्विता ।
मुनिप्रोक्तानि शास्त्राणि सम्यगालोच्य वाजिनाम् ॥ ३ ॥
श्रीमद्विजयदत्तस्य पुत्रेण क्रियतेऽधुना ।
श्रीमता जयदत्तेन वाहानां हितकाम्यया ॥ ४ ॥
अध्यायानां यथायोगं षष्ट्याष्टाधिकसंख्यया ।
श्लोकानाञ्च सहस्रेण शताष्टसंयुतेन च ॥ ५ ॥
प्रदेशलक्षणञ्चैव जीवितञ्च वयस्तथा ।
दशाविभागं क्षेत्रञ्च देशज्ञानञ्च वाहनम् ॥ ६ ॥
बन्ध्याक्रमं प्रसूतायाः शिशोश्च प्रतिपालनम् ।
द्रव्यमात्राविधिञ्चैव निघण्टुं शोषणक्रमम् ॥ ७ ॥
विधिं क्षाराग्निशस्त्राणां शिरावेधविधिं तथा ।
निरूहे च विधिञ्चैव विधिञ्चैवानुवासने ॥ ८ ॥
नस्ये स्वेदे विधिञ्चैव स्नेहपाने विधिं क्रमात् ।

तैलपाकविधानञ्च घृतपाकविधिं तथा ॥ ८ ॥
 अमोपचारं वाहानां तथारिष्टत्रयं पुनः ।
 वेधारिष्टं पुनश्चैव कटिवेधं तथैव च ॥ १० ॥
 मृगरोगचिकित्साञ्च चिह्नपूर्वं समासतः ।
 वातादीनाञ्च दोषाणां कोपहेतुं तथैव च ॥ ११ ॥
 व्याधिनिर्देशमुखरुद्धनेत्ररोगविधिं क्रमात् ।
 काचं प्रचारं विख्यातं रक्तं विख्यातपाटलम् ॥ १२ ॥
 मुञ्जजालं ततश्चेति नेत्ररोगास्तथैव च ।
 वातात् पित्तात् कफाश्चेति सन्निपातात्तथा पुनः ॥ १३ ॥
 रक्ताभिघाताद् ये जाताः शिरोरोगाश्च दारुणाः ।
 निदानश्चैव चिह्नञ्च रोगाणाञ्च चिकित्सितम् ॥ १४ ॥
 साध्यासाध्यविवेकञ्च कृच्छ्रसाध्ये विनिश्चयम् ।
 प्रकृतिञ्च तुरङ्गानां कथयाम्यनुपूर्वशः ॥
 रसोनादींस्तथा कल्कान् मुनिभिः पूर्वनोदितान् ॥ १५ ॥
 इति उद्देशाध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

प्रदेशः ।

प्रदेशान् वाजिदेहस्थान् यो न वेत्ति विभागतः ।
 न स जानाति मूढात्मा लक्षणं न चिकित्सितम् ॥ १ ॥
 अतएव प्रदेशानां ज्ञानमादौ प्रकीर्तितम् ।
 एतद् यत्नेन बोद्धव्यं वाजिनां हितकाम्यया ॥ २ ॥
 अतिप्रसिद्धा जिह्वा या तस्याः सूना भवेदधः ।
 ऊर्ध्वं तालु भवेत्तस्याः तदग्रे दन्तपौठकम् ॥ ३ ॥

ततो दन्ताः समुद्दिष्टा ऊर्ध्वं दन्ता भवन्त्यधः ।
 चिवुकञ्चाधरोभागस्तेषां प्रोक्तं विचक्षणैः ॥ ४ ॥
 चिवुकस्योपरिष्ठात्तु अधरौष्ठः प्रकीर्तितः ।
 चिवुकात् पार्श्वभागे तु हनुर्नामाभिधीयते ॥ ५ ॥
 षट्कहयं विजानीयाद् वक्त्रपार्श्वगतं बुधः ।
 उत्तरौष्ठः प्रपाणाख्यः तदूर्ध्वं प्रोथ उच्यते ॥ ६ ॥
 नासाच्छिद्रे तथा पार्श्वे प्रोथस्यैव व्यवस्थिते ।
 नासाच्छिद्राक्षिमध्ये तु घोणाख्यः समुदाहृतः ॥ ७ ॥
 घोणापार्श्वगतौ गण्डी क्षीरिके च ततःपरम् ।
 नेत्रयोरधरे भागे अश्रुपात उदाहृतः ॥ ८ ॥
 कर्णान्ते चैव नेत्रान्तमपाङ्गं भ्रुवते बुधाः ।
 कनीनिकाष्णोर्विज्ञेया यस्य नासासमीपगः ॥ ९ ॥
 सितासितञ्च तन्मध्ये नेत्रयोर्मण्डलं हि तत् ।
 प्रच्छादनं भवेद्दन्तं चाक्षिकूटमतःपरम् ॥ १० ॥
 तस्मादूर्ध्वं भ्रुवोर्लेखा ललाटञ्च तदुत्तरम् ।
 ऊर्ध्वं ललाटदेशात्तु केशान्तञ्च ततः श्रुवः ॥ ११ ॥
 ततः शिरो विजानीयात् श्रुवादूर्ध्वं गतं बुधः ।
 शिरःपार्श्वगतौ कर्णौ तयोर्मूलन्तु शष्कुली ॥ १२ ॥
 अपाङ्गाद् दृग्ङुले चैव शङ्खं विद्याद् विचक्षणः ।
 शङ्खकर्णान्तरे चैव कटाक्षः समुदाहृतः ॥ १३ ॥
 विदुर्मर्मं विदुश्चैव कर्णस्याधः षडङ्गुले ।
 घण्टाबन्धसमीपस्थो निगालः परिकीर्तितः ॥ १४ ॥
 अधस्ताच्च निगालस्य गलमाहुर्मनीषिणः ।
 ततः कण्ठं विजानीयादधोभागे विचक्षणः ॥ १५ ॥
 वक्षः क्रोडं तथा चैव हृदयं कुक्षिमेव च ।
 अनुपूर्वं विजानीयादधोभागगतं बुधः ॥ १६ ॥

ग्रीवा लोकप्रसिद्धा तु तस्याश्चोपरि केसरः ।
 ग्रीवास्कन्धान्तरे चैव बाह्वं प्राङ्मुर्मनीषिणः ॥ १७ ॥
 बाह्वस्योपरिजन्तु स्यात् काकसं ककुदश्च तत् ।
 ततः पृष्ठं विजानीयादासनं पृष्ठमध्यगम् ॥ १८ ॥
 अंसके ककुदश्चैव निबन्धे परिकीर्त्तिते ॥ १९ ॥
 स्यातामंसादधे बाह्व तयोर्बाह्वो षडङ्गुले ।
 बाह्वोरभ्यन्तरे विन्द्यात् किणञ्चातिप्रसिद्धकम् ॥ २० ॥
 अधरे च ततो जानु निर्दिष्टं शास्त्रकोविदैः ।
 मन्दिरं पश्चिमो भागः कलाची जानुनोऽग्रिमः ॥ २१ ॥
 जानुनोश्चाप्यधोभागे जङ्घां विन्द्याद्विचक्षणः ।
 जङ्घापार्श्वं कलां विन्द्यात् सन्ध्यश्चैषिकसंज्ञकम् ॥ २२ ॥
 अग्रतः पलिहस्तस्याः पश्चात् कूर्च उदाहृतः ।
 किणं तत्रैव मध्यस्थमधोभागे च कुष्ठिकम् ॥ २३ ॥
 खुरसन्धिं ततो विन्द्यादधोभागे ततः खुरम् ।
 खुरस्य पार्श्वं पार्श्विणः स्यादग्रभागे नखो भवेत् ॥ २४ ॥
 खुरस्याधस्तलं चैव मण्डूकी तलमध्यतः ।
 खुरमांसं विजानीयात् क्षीरिकाख्यं विचक्षणः ॥ २५ ॥
 हृदयात् परतः कुक्षी पार्श्वतश्च विभागतः ।
 कुक्षिमध्ये भवेद्रन्ध्रमुपरन्ध्रं तदूर्ध्वगम् ॥ २६ ॥
 जठरं पार्श्वमध्यस्थं तस्य नाभिश्च मध्यतः ।
 रोमराजीं ततो विन्द्यात् मूत्रकोशमतः परम् ।
 आकट्याः पश्चिमे भागे पुटौ स्फिची च कौर्त्तिते ॥ २७ ॥
 पुच्छमूलन्तु बाह्वानां मांसलं पुच्छमूलतः ।
 तस्याधः कौर्त्तितः पायुः सीवनी च ततः परम् ॥ २८ ॥
 मुष्कौ च कटिसन्धिश्च ततो विन्द्यात् परं बुधः ।
 अधस्तात् कटिसन्धेस्तु ऊरुसन्धिर्दाहृतः ॥ २९ ॥

सक्थिनी फलसन्धिस्तु ऊरूपान्ताभिधानकः ।
 ततः स्थुरं विजानीयात् तस्याधो मन्दिरं भवेत् ॥ ३० ॥
 किणञ्चैव ततो विन्द्यात् मङ्गिराभ्याससंस्थितम् ।
 ततः परं विजानीयात् कलां कूर्चञ्च कुष्ठिकम् ॥ ३१ ॥
 खुरान्तसङ्गं मण्डूकं ततो विन्द्याद्विचक्षणः ।
 अङ्गजङ्गाहयञ्चैव वक्तो ग्रीवा शिरोमुखम् ॥ ३२ ॥
 पूर्वकायः समुद्दिष्टः पृष्ठदेशस्तु मध्यमः ।
 आकटेः पश्चिमो भागः खुरान्तश्चापरोऽमतः ।
 इति प्रदेशा विख्याताः पूर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ३३ ॥

इति प्रदेशाध्यायः ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

सर्वलक्षणः ।

अङ्गलक्षणानि ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वाहानां लक्षणं स्मृतम् ।
 लक्षणं शृणु वाहानां मुनिना यत्तु भाषितम् ॥ १ ॥
 सर्वदोषहरं नित्यं नृपाणां जयवर्धनम् ।
 अशुभैर्लक्षणैर्युक्ता हया न ग्रहणोदिताः ॥ २ ॥
 अतो लक्षणमेवादी तेषां वक्ष्यामि देहजम् ।
 ओष्ठयोः सृक्कणोश्चैव जिह्वायां दशनेषु च ॥ ३ ॥
 वक्त्रे तालुनि नासायां गण्डयोर्नेत्रयोस्तथा ।
 ललाटे मस्तके चैव केशे कर्णपुटे तथा ॥ ४ ॥
 ग्रीवायां केशरे चापि स्कन्धे वक्षसि बाहुके ।
 जङ्घायां जानुनीचाधः कूर्चे पादे तथैव च ॥ ५ ॥

पार्श्वयोः पृष्ठभागे च कुक्षौ कट्याश्च बालधौ ।
 मेहने सुष्कयोश्चापि तथा चैवीरुकद्वयोः ॥ ६ ॥
 आवर्त्ते पुण्ड्रके पुष्ये मती वरुणे स्वरे तथा ।
 महादोषे तथोत्पाते छायायां गन्धसत्वयोः ॥ ७ ॥
 प्रमाणे चैव वाहानां लक्षणं यत्प्रतिष्ठितम् ।
 शुभाशुभविवेकाय तद्विन्द्याद् बुद्धिमान् भिषक् ॥ ८ ॥
 शालिहोत्रादिभिर्ज्ञातं त्रिकालज्ञानकोविदैः ।
 आताम्रौ पूजितावौष्ठौ बालहीनौ मृदुत्वचौ ॥ ९ ॥
 सुप्रोथस्तून्नतः शस्तो विपरीतं विवर्जयेत् ।
 सृक्कणोर्मृदुता शस्ता जिह्वायां रक्तता तथा ॥ १० ॥
 अतश्चान्यद्वि दोषाय तन्वी दीर्घा च सा शुभा ।
 घनाः स्निग्धाः सुबद्धाश्च समा दन्ताः सुशोभनाः ॥ ११ ॥
 षट्संख्येष्वधरीष्ठे च तेषु व्यञ्जनसम्भवः ।
 आननं तुङ्गघोणञ्च निर्मांसं प्रियदर्शनम् ॥ १२ ॥
 सुगन्धि पूजितं वक्त्रं विपरीतं विगर्हितम् ।
 तालु रक्तं प्रशस्तञ्च सुपुटे चैव नासिके ॥ १३ ॥
 नात्युल्बणौ समौ गण्डो वाहानां कीर्त्तिती शुभौ ।
 अत्यन्तं निर्गतं चैव सुबद्धे नैव चाविले ॥ १४ ॥
 प्रशस्ते वाजिनां नेत्रे मद्याभेऽमलतारके ।
 स्निग्धायते विशाले च श्लिष्टे मधुनिभेक्षणे ॥ १५ ॥
 स्वर्णप्रभे विशाले च शस्ते वाहस्य लोचने ।
 सावर्त्तञ्चाप्यनिम्नञ्च विशालञ्चैव वाजिनाम् ॥ १६ ॥
 ललाटं पूजितं प्राहुर्मुनयः शास्त्रकोविदः ।
 शिरः समं तथा वृत्तमावर्त्तद्वयभूषितम् ॥ १७ ॥
 केशाश्च मृदवः स्निग्धा वहवश्चैव पूजिताः ।
 ऋक्षता कर्णयोश्चैव तीक्ष्णता तनुता तथा ॥ १८ ॥

अदीर्घरोमता चैव प्रशस्तेति प्रकीर्त्तिता ।
 सुवृत्तां कुञ्चिताश्चैव धन्यां ग्रीवां विदुर्बुधाः ॥ १९ ॥
 केशरश्च जटाहीनो मृदुश्चैव प्रशस्यते ।
 सुबद्धः सुदृढश्चैव स्कन्धो वाहस्य पूजितः ॥ २० ॥
 प्रशस्तं विपुलं वक्षो निर्गतं विशिरश्च यत् ।
 ऋजुवृक्षसमौ बाहू गूढं जानु प्रशस्यते ॥ २१ ॥
 अवक्रा मांसहीना च वाजिजङ्घा शुभा स्मृता ।
 सुवृत्तं सुसमश्चैव नातिस्तब्धं नचोन्नतम् ॥ २२ ॥
 कूर्चमेवंविधं विद्याद् अन्यत्रणविवर्जितम् ।
 दृढमण्डूकिकायुक्तो वर्तुलः श्लिष्टसन्धिकः ॥ २३ ॥
 खुरः खरखुराकारः प्रशस्तः समुदाहृतः ।
 पार्श्वं चैव समे वृत्ते ऊर्ध्वं मांसोपशोभिते ॥ २४ ॥
 अविलम्बि सुवृत्तश्च उदरश्चातिपूजितम् ।
 नातिदीर्घं समं पृष्ठं किञ्चिच्च विनतं शुभम् ॥ २५ ॥
 सुवृत्ता चैव पीना च कटिर्धन्या प्रकीर्त्तिता ।
 मृदुस्निग्धायतैर्युक्तं बालैः पुच्छं प्रशस्यते ॥ २६ ॥
 वृषणी च समी वृत्ती ईषल्लम्बावलोमशी ।
 कृष्णवर्णविहीनन्तु क्लृप्तं मेहनमीष्यते ॥ २७ ॥
 आनुपूर्व्यायतं पीनं शोभितश्चोरुकद्वयम् ।
 पूर्वजङ्घेव जङ्घादि खुरान्तश्चापि पश्चिमम् ।
 शालिहोत्रादिभिः प्रोक्तं मुनिभिः सर्ववेदिभिः ॥ २८ ॥

आवर्त्ताः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि आवर्त्तानां विनिश्चयम् ।
 शुभाशुभविवेकाय यथा शास्त्रे व्यवस्थितम् ॥ २९ ॥
 विंशतिस्तु शुभाः प्रोक्ताः षट्सप्तत्यधिकाः स्मृताः ।
 उत्तरीष्ठं प्रपाणं स्यात्तत्रावर्त्ताः शुभावहाः ॥ ३० ॥

सृक्कणोश्च तथा प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः ।
 त्रयश्चैवाथ चत्वारो वाजिनो यस्य रोमजाः ॥ ३१ ॥
 द्वौ वा ललाटजौ यस्य स तु धन्यतमः स्मृतः ।
 आनुपूर्व्यां स्थिता चोङ्घ्रं ललाटे रोमजास्त्रयः ॥ ३२ ॥
 निःश्रेणी नाम सा ख्याता भर्तुः सर्वार्थसाधिनी ।
 शिरःकेशान्तयोर्मध्ये श्रवो नामाभिधीयते ॥ ३३ ॥
 तत्रावर्त्तः स्मृतोऽश्वस्य भर्तुर्जयविवर्द्धनः ।
 घण्टाबन्धसमीपस्थो निगालः कीर्त्तितो बुधैः ॥ ३४ ॥
 तस्मिन् देवमणिर्नाम रोमजः शुभकृत् स्मृतः ।
 कर्णमूले तथा बाह्वोः केशान्ते मस्तके तथा ॥ ३५ ॥
 आवर्त्ताः पूजिता नित्यं विशेषेण तु मस्तके ।
 आवर्त्ता यस्य चत्वारो वाजिनो वक्षसि स्थिताः ॥ ३६ ॥
 एकः कण्ठे भवेत् स्पष्टः स धन्यः सर्वकामदः ।
 रन्ध्रे चैव यटा भर्तुरीप्सितार्थप्रदो भवेत् ॥ ३७ ॥
 उपरन्ध्रे भवेच्चैव रोमजश्चातिपूजितः ।
 शङ्खचक्रगदावज्रशुक्तिपद्मोपमाश्च ये ॥ ३८ ॥
 विशेषेण शुभाः प्रोक्ता रोमजाः शुभदेशजाः ।
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि रोमजानतिनिन्दितान् ॥ ३९ ॥
 भर्तुः क्लेशावहान् सर्वान् धनप्राणापहारकान् ।
 नासिकापुटयोर्मध्ये प्रदेशः प्रीथ उच्यते ॥ ४० ॥
 तत्र भर्तुर्विनाशाय रोमजश्च प्रकीर्त्तितः ।
 ऊर्ध्वं च नासिकाच्छिद्रात् स्वामिनः क्लेशकारकः ॥ ४१ ॥
 गण्डयोश्चैव भर्त्तारं हन्त्यावर्त्तो दुरासदः ।
 अश्रुपातः समुद्दिष्टः प्रदेशश्चक्षुषोरधः ॥ ४२ ॥
 तत्रावर्त्तो भवेद्भोमः स्वामिनः कुलनाशनः ।
 अपाङ्गाद् इरङ्गुले चैव प्रदेशः शङ्ख उच्यते ॥ ४३ ॥

तस्मिन् भर्तुर्विनाशाय भवेद्वाहस्य रोमजः ।
 भ्रूप्रदेशममुद्भूत आवर्त्ती नैव पूजितः ॥ ४४ ॥
 सुहृद्वियोगकृत् सः स्याद्भर्तुरर्थावसादकः ।
 मन्यां ग्रीवां शिरो विन्द्यात्तत्रावर्त्तस्तु कुक्षितः ॥ ४५ ॥
 कक्षयोश्चापि संगमे स्वामिनश्चाशु घातयेत् ।
 चिवुकस्य समीपस्थो वामदक्षिणभागतः ॥ ४६ ॥
 प्रदेशस्तु हनुर्नाम तत्रावर्त्ती हि दारुणः ।
 अधरौष्ठस्य वाधस्ताञ्चिवुकं हि प्रसिद्धकम् ॥ ४७ ॥
 तस्मिन् पापो भवेद्भर्तुः कर्णयोश्चापि रोमजः ।
 कण्ठस्याथ निगालस्य मध्ये गलक उच्यते ॥ ४८ ॥
 तत्रावर्त्तः स्मृतः पापः स्कन्धसन्धिगतश्च यः ।
 अधस्ताज्जङ्घयोश्चैव ग्रन्थिः कूर्च इति स्मृतः ॥ ४९ ॥
 तत्रावर्त्तः स्मृतो भर्तुः संग्रामे जीवितान्तकृत् ।
 कूचोदष्टाङ्गुलं चोद्ध्वं पाश्वर्यास्तु कला स्मृता ॥ ५० ॥
 तत्र भर्तुः शराघातैर्जीवितान्तश्च रोमजः ।
 ककुदं वृषभस्यैव सुव्यक्तमुपलक्षयेत् ॥ ५१ ॥
 वाजिनो यस्य तत्र स्यादावर्त्तः स्वामिनाशनः ।
 ककुदस्य पुरोभागे समीपे वह उच्यते ॥ ५२ ॥
 भर्तुः सुतसमेतस्य तस्मिन्नाशाय रोमजः ।
 काकसेतु च यस्य स्यादावर्त्तस्तस्य दारुणः ॥ ५३ ॥
 रणे हतः समं भर्त्वा क्रव्याद्भिः स विलुप्यते ।
 क्रोडे चैवासने चापि हृदये चैव जानुनि ॥ ५४ ॥
 अवर्त्ताः स्वामिघाताय भवन्त्येव न संशयः ।
 पार्श्वयो रोमजो यस्य स चाश्वो नयति क्षयम् ॥ ५५ ॥
 सपक्षश्चाशु भर्त्तारं नीहाराम्बु यथा रविः ।
 कूर्चस्याधः प्रदेशस्तु कुष्ठिकः परिकीर्त्तितः ॥ ५६ ॥

अधन्यस्तत्र वाहस्य जङ्घयोर्जानुनोश्च यः ।
 नाभिजो मुष्कजश्चैव त्रिकजश्च विशेषतः ॥ ५७ ॥
 पुच्छमूलस्थितश्चापि नैव धन्यः प्रकीर्तितः ।
 कुक्षौ व्याधिं नियच्छन्ति रोमजाः कुक्षिसम्भवाः ॥ ५८ ॥
 पायुसीवनिमध्यस्था नैव धन्यास्तु कीर्तिताः ।
 स्फिक्पिण्डे स्थूरके चैव यस्यावर्त्तो हि वाजिनः ॥ ५९ ॥
 लिङ्गावर्त्तः स विख्यातो भर्त्तुः सर्वार्थनाशकः ।
 शतपादीति विख्यातस्तथा वै मुकुलोऽपरः ॥ ६० ॥
 आवर्त्तश्चैव सङ्घातः पादुकश्चार्धपादुकः ।
 शक्तिश्चैवावलीढश्च आवर्त्तः कीर्तितोऽष्टधा ॥ ६१ ॥
 वाजिटेहगतः सम्यक् शुभाशुभनिवेदकः ।
 शतपादीसमाकारः शतपादीति कीर्तितः ॥ ६२ ॥
 जातीमुकुलसङ्घाशो मुकुलः समुदाहृतः ।
 आवर्त्तो भ्रमितैर्बालैः सङ्घातो रोमपुञ्जकैः ॥ ६३ ॥
 शक्तिश्च शक्तिसंस्थानैः रोमभिर्व्यक्तलक्षणैः ।
 वत्सावलीढकाकारोऽवलीढः परिकीर्तितः ॥ ६४ ॥
 पादुकः पादुकाकारस्तथा चैवार्धपादुकः ।
 बाले विशेषसंस्थाने निर्दिशेन्नतिमान् भिषक् ॥ ६५ ॥
 शास्त्रमार्गानुसारेण यथा प्रोक्तं विचक्षणैः ।
 एतेषामेव सर्वेषामावर्त्तानां तपोधनैः ॥ ६६ ॥
 रोमजिति कृता संज्ञा वाजिलक्षणवेदिभिः ।
 शुभाशुभौ तु यत्र द्वौ तत्रैको न फलप्रदः ॥ ६७ ॥
 एको हेन्ना दहेत्यापं तेन दोषो न दुष्यति ।
 अथवा द्विजमुख्याय वेदादिगुणवान् हयः ॥ ६८ ॥
 दत्त्वा ग्राह्यः क्रयेणैव दुरावर्त्तस्तु काकुदी ।
 श्रीहृक्षो रोमजश्चैव रोचमानस्तथैव च ॥ ६९ ॥

अङ्गदी मुषली चैव राश्वरत्नप्रदः सदा ।
 प्रपाणे मारुतं विन्ध्याल्ललाटे च हुताशनम् ॥ ७० ॥
 उरसि चाश्विनौ देवी चन्द्रसूर्यौ च सूर्ध्वनि ।
 रन्ध्रे स्कन्दविशाखौ च उपरन्ध्रे हरो हरिः ॥ ७१ ॥
 इत्येवं पूजिता ह्येते दशावर्त्तास्तु वाजिनः ।
 अप्येकेन विहीनाश्चेद् भवेयुरशुभास्तदा ॥ ७२ ॥

पुण्ड्रकाः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुण्ड्राणां लक्षणं शुभम् ।
 आनुपूर्व्या यथादृष्टं मुनिभिस्त्वर्थवेदिभिः ॥ ७३ ॥
 शक्तिशङ्खगदाखड्गपद्मचक्राङ्कुशोपमाः ।
 शरासनसमाकाराः प्रशस्ताः पुण्ड्रकाः स्मृताः ॥ ७४ ॥
 मत्स्यभृङ्गारप्रासादस्रग्वेदीयूपसन्निभाः ।
 श्रीवृक्षदर्पणाकाराः शुभदाः परिकीर्तिताः ॥ ७५ ॥
 शिरो ललाटवदनं यः पुण्ड्रौ व्याप्य तिष्ठति ।
 स धन्यः पूजितो नित्यं ऋजुकश्चैव यो भवेत् ॥ ७६ ॥
 पर्वतेन्दुपताकाभा ये च स्रग्दामसन्निभाः ।
 ते सर्वे पूजिताः पुण्ड्रा धनधान्यफलप्रदाः ॥ ७७ ॥
 इति पुण्ड्राः शुभाः प्रोक्ताः पूर्वशास्त्रानुसारतः ।
 अशुभांश्चैव वक्ष्यामि यथायोगं समासतः ॥ ७८ ॥
 काककङ्ककबन्धाहि गृध्रगोमायुसन्निभाः ।
 असिताः पीतका रक्ताः पुण्ड्रका नैव पूजिताः ॥ ७९ ॥
 तिर्यग्गाश्चैव विच्छिन्नाः शृङ्खलापाशसन्निभाः ।
 शूलाया वामदेहस्थाः पुण्ड्रका न शुभाः स्मृताः ॥ ८० ॥
 जिह्वाकस्मषरुक्षाणि भस्मवर्णनिभानि च ।
 पुण्ड्रकाणि न शस्यन्ते भिन्नवर्णानि वाजिनः ॥ ८१ ॥

पुष्पाणि ।

आगन्तवस्तुरङ्गस्य ये भवन्त्यन्यवर्णगाः ।
 विन्दवः पुष्पसंज्ञास्तु ते हिताहितसंज्ञकाः ॥ ८२ ॥
 तेषां प्रदेशभेदेन लक्षणं यद् व्यवस्थितम् ।
 तत्तथैव समासेन विस्मष्टं कीर्त्त्यतेऽधुना ॥ ८३ ॥
 अपाने च ललाटे च भ्रुवोर्मूर्धनि कर्णयोः ।
 निगाले चैव केशान्ते पुष्पं धन्यतमं स्मृतम् ॥ ८४ ॥
 स्कन्धे वक्षसि कचे च मुष्कयोर्बाहुकेशयोः ।
 हन्वोः पृष्ठे च वाहानां पुष्पं स्वामिहितप्रदम् ॥ ८५ ॥
 नाभौ केशे तथा कण्ठे दन्ते चैव हि वाजिनाम् ।
 पुष्पं धन्यतमं प्रोक्तं भर्तुः सर्वार्थसाधकम् ॥ ८६ ॥
 अप्रशस्तानि दृष्टानि मुनिभिर्यानि वाजिनाम् ।
 तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि पुष्पाख्यागमदर्शनात् ॥ ८७ ॥
 अधरौष्ठे कठे प्रोथे उत्तरौष्ठे तथैव च ।
 घोणायां गण्डयोश्चैव शङ्खयोश्च तथा भ्रुवोः ॥ ८८ ॥
 ग्रीवायाञ्च वहे चैव सृक्कणोः स्थूरके स्फिचि ।
 पायौ क्रोड्रे च पुष्पाणि निन्दितानीति निश्चयः ॥ ८९ ॥
 रक्तं पीतं तथा कृष्णं पुष्पं सर्वत्र नेष्यते ।
 शुभप्रदेशसञ्जातं भवेत् साधारणं ततः ॥ ९० ॥
 पुत्रलाभं धनप्राप्तिमारोग्यं विजयं तथा ।
 विन्द्यात् पुष्पैः शुभैर्भर्तुरशुभैश्च विपर्ययम् ॥ ९१ ॥
 सर्वाङ्गपुष्पितो वाजो परित्याज्यो न संशयः ॥ ९२ ॥
 गतयः ।

दूरमुत्क्षिप्य यः पादांस्तप्ताङ्गारान् स्पृशन्निव ।
 पुत्रं याति सुसंज्ञतो वाजो भद्रगतिस्तु सः ॥ ९३ ॥
 पूजिता वृषमातङ्गसिंहशार्दूलगामिनः ।

अतोऽन्यगतयो नेष्टा सर्वदेव तुरङ्गमाः ॥ ८४ ॥
 सङ्कीर्णा विकटभ्रष्टा वक्राः सौष्ठववर्जिता ।
 अत्यूर्ध्वबलिता चैव वाजिनां निन्दिता गतिः ॥ ८५ ॥
 षोडशच्छोटिकाभिस्तु करवेष्टितजानुभिः ।
 शतं द्विगुणितं गत्वा हस्तानां पुनरेति यः ॥ ८६ ॥
 स शीघ्रगतिरित्युक्तो वाजो धन्यस्तपोधनैः ।
 दशहीना भवन्त्येते मध्यमाधमगा हयाः ॥ ८७ ॥

वर्णाः ।

चक्रवाकादिभिर्वर्णैः शालिहोत्रादिभिः स्मृतैः ।
 पाटलाद्वैश्च लोकस्य व्यवहारो न साम्प्रतम् ॥ ८८ ॥
 तस्मात् प्रसिद्धकान् वर्णान् वाजिनां देहसम्भवान् ।
 समासेन यथायोगं कथयाम्यनुपूर्वशः ॥ ८९ ॥
 श्वेतः कोकाह इत्युक्तः कृष्णः खड्गाह उच्यते ।
 पीतको हरितः प्रोक्तः कषायो रक्तकः स्मृतः ॥ १०० ॥
 पक्वतालनिभो वाजो कयाहः परिकीर्तितः ।
 पीयूषवर्णः सेराहो गर्दभाभः सुरूहकः ॥ १०१ ॥
 नीलो नीलक एवाश्व स्त्रियूहः कपिलः स्मृतः ।
 खिलाहः कपिलो वाजो पाण्डुकेशरबालधिः ॥ १०२ ॥
 हलाहस्त्रिलथैव खड्गाहः श्वेतपीतकः ।
 ईषत्पीतः कुलाहस्तु यो भवेत् कृष्णजानुकः ॥ १०३ ॥
 कृष्णा चास्ये भवेत्स्रेखा पृष्ठवंशानुगामिनी ।
 उराहः कृष्णजानुस्तु मनाक् पाण्डुस्तु यो भवेत् ॥ १०४ ॥
 वैरुहानः स्मृतो वाजो पाटलो यः प्रकीर्तितः ।
 रक्तपीतकषायोत्पवर्णजो यस्य दृश्यते ॥ १०५ ॥
 उकनाहः स विख्यातो वर्णो वाहस्य देहजः ।
 पूर्वोक्तानाञ्च वर्णानां सुखपुण्ड्रं वाजिनाम् ॥ १०६ ॥

ये भवन्त्यपरे भेदा स्नान् ब्रवीम्यनुपूर्वशः ।
 कोकाहः पुण्ड्रकेणाश्वः कोकुराहः प्रकीर्तितः ॥ १०७ ॥
 खरराहश्च खड्गाहो हरिको हरिरोहकः ।
 कलाहश्चैव वोलाहः सेराहः सरराहकः ॥ १०८ ॥
 कुलाहः कुलराहस्तु सुराहः सुरराहकः ।
 वोरुराहो भवेदश्वो वीरुराहस्तु यः स्मृतः ॥ १०९ ॥
 दुकुलाहो दुरुराहः पुण्ड्रकेणैव कीर्तितः ।
 त्रियूहस्त्रियुराहश्च चित्रलाङ्गश्च यो भवेत् ॥ ११० ॥
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविनिश्चयम् ।
 वाजिदेहगतानां हि वर्णानां पूर्वशास्त्रतः ॥ १११ ॥
 यस्य गौराणि पीतानि गात्ररोमाणि वाजिनः ।
 स भर्तुः त्रियमाधत्ते यस्य रक्तसितानि च ॥ ११२ ॥
 यस्य पादाः सिताः सर्वे पुच्छं वक्षो मुखं तथा ।
 मूर्द्धजाश्च सिता यस्य तं विद्यादष्टमङ्गलम् ॥ ११३ ॥
 प्रभूताः सितताराश्च प्रशस्ता मुनिभिः स्मृताः ।
 रक्तपीता सितसितैरधन्यः कीर्तितो ह्ययः ॥ ११४ ॥
 प्रशस्तकृष्णतारस्तु मल्लिकाक्षः प्रकीर्तितः ।
 श्वेतया वेष्टितं कृष्णं रेखया तारकं भवेत् ॥ ११५ ॥
 मल्लिकाक्षः स विज्ञेयः स्वामिनः सुखवर्द्धनः ।
 सिततारोऽप्रशस्तश्च स्वामिनः क्लेशवर्द्धनः ॥ ११६ ॥
 सर्वश्वेतश्च कृष्णश्च रक्तः पीतस्तथैव च ।
 एते सांग्रामिकाः प्रोक्ताः तुरङ्गा मुनिसत्तमैः ॥ ११७ ॥
 हरिताः किल जायन्ते वाजिनः पुख्यदर्शनाः ।
 ते हिताय नरेन्द्राणां जयारोग्यधनप्रदाः ॥ ११८ ॥
 रक्तास्यमेहनः शस्तः श्यामकर्णश्च यः सितः ।
 कपोतसमवर्णस्तु यो वाहः शुककेशरः ॥ ११९ ॥

शुक्लपादमुखो बाजी प्रशस्तः परिकीर्तितः ।
 चतुर्णाञ्चैव वर्णानां शुक्लता यस्य वाजिनः ॥ १२० ॥
 मुखे सिततरञ्चैव पञ्चभद्रः स उच्यते ।
 श्वेतमण्डलचित्रश्च भर्तुः सर्वार्थसाधकः ॥ १२१ ॥
 पाण्डुरायस्य रेखा स्यात् पृष्ठवशानुगामिनी ।
 श्वेतकृष्णाशिरा यस्य नैव धन्यः प्रकीर्तितः ॥ १२२ ॥
 अन्यवर्णं शिरो यस्य पुच्छं वा यस्य वाजिनः ।
 पुच्छेन शिरसा वापि नानावर्णेन निन्दितः ॥ १२३ ॥
 अव्यक्तवर्णी यो वाहस्तथा तित्तिरसन्निभः ।
 कुक्षितो वानराक्षस्य यो वा व्याघ्रावलीढकः ॥ १२४ ॥

स्वराः ।

ऋषितं मधुरञ्चैव तुरङ्गस्य प्रशस्यते ।
 अविच्छिन्नमदीनश्च गन्धीरं सानुनासिकम् ॥ १२५ ॥
 दृष्ट्वाग्निपूर्णपात्रश्च ब्राह्मणं कुसुमानि च ।
 दधि चापि समालोक्य वाहानां ऋषितं शुभम् ॥ १२६ ॥
 वादित्वध्वनिमाकर्ण्य ऋषन्ते यदि वाजिनः ।
 ग्रासपूर्णमुखाञ्चैव तदा भर्तुर्जयो भवेत् ॥ १२७ ॥
 ध्वजाग्रञ्चैव सूर्यश्च पश्यन्तो वाजिनो यदा ।
 ऋषन्तो वहवो हृष्टास्तदा विद्याञ्जयं विभोः ॥ १२८ ॥
 अतो यद्विपरीतन्तु ऋषितं कुक्षितन्तु तत् ।
 मिम्बिनं गद्गदं मूकं विरुद्धं कासजर्जरम् ॥ १२९ ॥
 ईदृशं ऋषितं नेष्टं हयानाञ्च तपोधनैः ।
 वाजिशस्त्रार्थतत्त्वज्ञैः कीर्तितं मुनिसत्तमैः ॥ १३० ॥
 बाले रोगिणि वृद्धे च क्षुधिते च पिपासिते ।
 श्रान्ते भीते कृशे वाहे न ग्राह्यं स्वरलक्षणम् ॥ १३१ ॥

अथ यः पुलतोऽश्वस्य शनैरविशदो ध्वनिः ।
 अन्तरुत्पद्यते कश्चित्तदश्वम्नू त उच्यते ॥ १३२ ॥
 तत्र कूकत्यधो नाभेर्गुदवस्त्यण्डमाश्रितः ।
 चतसृष्वन्तशाखासु वायुरेवोर्द्धमुच्छलन् ॥ १३३ ॥
 अतोऽश्वानां न वेगः स्यात् स्थिराणां न च ऋम्भणा ।
 तासामधोमुखत्वाच्च न भवेद् वड्वास्त्रपि ॥ १३४ ॥

महादोषाः ।

काकुदौ कृष्णजिह्वश्च कृष्णशेफारुडतालुकः ।
 कराली हीनदन्तश्च शृङ्गी चाधिकदन्तकः ॥ १३५ ॥
 एकाण्डश्चैव जाताण्डः कञ्चुको त्रिसरी तथा ।
 मार्जारपादो व्याघ्राभस्त्रिकर्णो द्विखुरी स्तनी ॥ १३६ ॥
 यमजो वामनश्चैव कुञ्जस्तित्तिरमन्निभः ।
 वानराक्षो विडालाक्षो मृषली चेन्द्रवृद्धकः ॥ १३७ ॥
 येषां पृष्ठे हतो भर्त्ता जातदन्तस्तथैव च ।
 एते दोषान्विता बाह्या न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥ १३८ ॥
 धनप्राणहरा ह्येते बभ्रुविग्रहकारकाः ।
 एषां चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन जानन्ति साटिनः ॥ १३९ ॥
 पूर्वशास्त्रानुसारेण मुनीनां वचनं यथा ।
 आवर्त्ता यस्य ककुदि काकुदौ स उदाहृतः ॥ १४० ॥
 कराली वाधरे दन्तो जायते यस्य चोत्तरा ।
 चतुर्भिः पञ्चभिश्चैव हीनदन्तः प्रकीर्तितः ॥ १४१ ॥
 सप्तभिश्चाष्टभिर्दन्तैः ख्यातश्चाधिकदन्तकः ।
 अङ्गुष्ठपर्वसङ्काशः छागशृङ्गोपमस्तथा ॥ १४२ ॥
 जम्बूवटरूपश्च तथा चामलकोपमः ।
 आम्नास्थिमदृगश्चापि हरीतक्याः फलोपमः ॥ १४३ ॥

दग्धचर्मनिभश्चापि वालुसंस्थान एव च ।

कीलः कर्णान्तरे यस्य केशान्ते चापि दृश्यते ॥ १४४ ॥

धौरेयः सर्वपापानां शृङ्गी वाहः स कीर्तितः ।

एवंविधेन शृङ्गेन शृङ्गी राष्ट्रे न वासयेत् ॥ १४५ ॥

एकेन लम्बमानेन मुष्केणैकाण्डसंज्ञकः ।

अत्यन्तरोमशाभ्यान्तु ताभ्यां जाताण्ड उच्यते ॥ १४६ ॥

स्कन्धे वक्षसि वाह्यौष्ठे अंसदेशे तथैव च ।

अन्यवर्णो भवेद्वाजी कक्षुकी स प्रकीर्तितः ॥ १४७ ॥

यस्यान्यवर्णा रेखा स्यात् पादे कूर्चे च वाजिनः ।

मार्जारपादः प्रोक्तोऽसौ न धन्यः कुलनाशनः ॥ १४८ ॥

अन्यवर्णस्य वाहस्य शिरः कृष्णं यदा भवेत् ।

त्रिसरी नाम सः प्रोक्तो भर्तुः कुलविनाशनः ॥ १४९ ॥

द्विखुरं गोखुराकारं खुरैर्विन्द्याद्विचक्षणः ।

अथवा सिवनीयुक्तैर्निम्नमध्यैस्तु निर्दिशेत् ॥ १५० ॥

वृषणाभ्यां सजाताभ्यां सञ्जातवृषणो भवेत् ।

तद्वृषणसञ्जातस्तनाभ्यां विद्यते स्तनी ॥ १५१ ॥

त्रिभिः कर्णैस्त्रिकर्णी च व्याघ्राभो व्याघ्रवर्णकः ।

एकेनाङ्गेन हीनेन भिन्नेन च विशेषतः ॥ १५२ ॥

यमजं वाजिनं चिन्द्याद् वामनं वामनाकृतिम् ।

वर्णादेकेन पादेन अन्यवर्णं न वो ह्ययः ॥ १५३ ॥

मुषलीति समाख्यातो वाजिशस्त्रविशारदैः ।

विरोधं नैव यो याति दृष्ट्वाशां मुष्कवर्जितः ॥ १५४ ॥

इन्द्रवृद्धः स विख्यातो भर्तुश्च कुलनाशनः ।

अथ चेद् वडवायान्तु विरोधमधिगच्छति ॥ १५५ ॥

निगूढवृषणश्चाश्वः स धन्यः सर्वकामदः ।

द्वि वर्षात्तु समारभ्य यावता पञ्चवार्धिकः ॥ १५६ ॥

दन्तानां मुष्कयोश्चैव सश्वो वाजिनः स्मृतः ।
 अत ऊर्ध्वं न जायन्ते मुष्कौ दन्ताश्च वाजिषु ॥ १५७ ॥
 अशुभन्तु फलं वाच्यमभावेन शुभाशुभम् ।
 सुरथस्य गतं राज्यं ककुदस्यैव दूषणात् ॥ १५८ ॥
 हतकम्बलवैकर्णपशुदन्ताश्च पाण्डुरात् ।
 शृङ्गिणी स्तनदोषेण स्तनी च सगरे क्षयम् ।
 जान्वावर्त्यश्वदोषेण पञ्चत्वं रावणी गतः ॥ १५९ ॥

उत्पाताः ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि तुरगाणां विभागतः ।
 ज्वलितेन यथाङ्गेन फलं वाच्यं शुभाशुभम् ॥ १६० ॥
 यदा ज्वलति वाहस्य सर्वगात्रे हुताशनः ।
 तदा विन्द्यादनावृष्टिमष्टमेकं न संशयः ॥ १६१ ॥
 अन्तःपुरविनाशस्तु मेहने ज्वलिते भवेत् ।
 उदरे वित्तनाशस्तु पायौ पुच्छे पराजयः ॥ १६२ ॥
 उत्तमाङ्गे च वक्त्रे च स्कन्धे चैवासने तथा ।
 भर्तुर्जयाय वाहानां ज्वलनं यत्र नेत्रजम् ॥ १६३ ॥
 धूमं ललाटे बाह्वोश्च तथा वक्षसि निन्दितम् ।
 तत्रैव ज्वलनं शस्तं यथा नासासमुद्भवम् ॥ १६४ ॥
 यदा व्याधिं विना वाजी आसं त्यजति दुर्मनाः ।
 अश्रुपातश्च कुरुते तदा भर्तुरशोभनम् ॥ १६५ ॥
 स्वयमेव यदा वक्त्रं हृष्टो लोकयते हयः ।
 रावं कृत्वा प्रयाणे तु तदा विद्याञ्जयं प्रभोः ॥ १६६ ॥
 सर्वदैव शिरोन्नस्तु सर्वेषां नैव पूजितः ।
 वामपादाभिघातस्तु प्रभोर्यात्रा निषेधकः ॥ १६७ ॥
 स्वामिन्यारूढमात्रे तु दक्षिणं पार्श्वमात्मनः ।
 तुरङ्गमां यदा पश्येत्तदा भर्तुर्जयो भवेत् ॥ १६८ ॥

पुच्छभागं यदा बाहो वामतो विकिरेत् सदा ।
 तदा भर्तुः प्रवासः स्याद् दक्षिणे विजयस्तथा ॥ १६८ ॥
 प्रकिरन्ति यदात्यर्थं सर्वं पुच्छं तुरङ्गमाः ।
 अकस्मादेव जाताश्च तेषां भीतिः प्रभोः स्मृता ॥ १७० ॥

छायाः ।

छाया वाजिशरीरेषु शुभाशुभनिवेदिनी ।
 वाजिनश्च प्रभोश्चैव तां ब्रवीम्यनुपूर्वशः ॥ १७१ ॥
 सुस्निग्धा पार्थिवी छाया नानाज्योतिःसमन्विता ।
 पद्मरागारुणा चैवमाग्नेयी परिकीर्त्तिता ॥ १७२ ॥
 शुद्धस्फटिकसङ्काशा सुस्निग्धा चैव वारुणी ।
 रूक्षा दीना च वायव्या परुषा चैव निन्दिता ॥ १७३ ॥
 पार्थिवी च तथाग्नेयी वारुणी या च कीर्त्तिता ।
 तिस्रस्तु शुभदाश्छाया वायवी त्वशुभप्रदा ॥ १७४ ॥
 प्रस्त्रिन्नानां भवेद् गन्धो वाहानां गात्रसम्भवः ।
 मतिमद्भिः स निर्दिष्टः शुभाशुभनिवेदकः ॥ १७५ ॥
 मनसः कुरुते तुष्टिं घ्राणमार्गगतस्तु यः ।
 स शुभो वाजिनां गन्धो विपरीतोऽतिकुक्षितः ॥ १७६ ॥
 शुभगन्धो भवेद्वाजी धनपुत्रप्रदः प्रभोः ।
 मित्रावाप्तिजयश्चैव कल्याणश्च नियच्छति ॥ १७७ ॥
 अनिष्टे चैव गन्धे च सर्वमेतदनिष्टकम् ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सुगन्धोऽश्वः प्रपूजितः ॥ १७८ ॥
 संघ्राह्यो न तु दुर्गन्धो नायकेन विजानता ।
 यथाशास्त्रं समुद्दिष्टो गन्धस्तौरङ्गमो मया ॥ १७९ ॥
 सत्वानि ।

अग्नेध्वे कर्दमे चैव वस्तमूत्रे विशेषतः ।
 घृणा यस्यास्ति वाहस्य देवसत्वः प्रकीर्त्तितः ॥ १८० ॥

पिशाचसत्वो मन्तव्यो व्यत्ययेन तुरङ्गमः ।

देवसत्वः शुभो भर्तुः पैशाचश्चाशुभः स्मृतः ॥ १८१ ॥

प्रमाणम् ।

साङ्गं यवत्रयं प्रोक्तमङ्गुलस्य तपोधनैः ।

प्रमाणं शालिहोत्रायैर्वाजिशस्त्रविशारदैः ॥ १८२ ॥

हस्तोऽङ्गुलानां त्रिंशत्या चतुरत्तरया स्मृतः ।

चतुर्हस्तैस्तु विख्यातः शास्त्रोक्तैरुत्तमो ह्ययः ॥ १८३ ॥

अर्द्धहस्तेन हीनस्तु भवेन्मध्यस्तुरङ्गमः ।

मुष्टिशून्येन हस्तेन हीनश्चाप्यधमः स्मृतः ॥ १८४ ॥

ऊर्ध्वमानप्रमाणन्तु परिणाहं विनिर्दिशेत् ।

उत्तमानां च मध्यमानां हीनानाञ्चैव वाजिनाम् ॥ १८५ ॥

अर्द्धसप्तमहस्तन्तु अष्टं दैर्घ्येण निर्दिशेत् ।

षड्भिर्मुष्टिविहीनैश्च मध्यमञ्च विचक्षणः ॥ १८६ ॥

पञ्चहस्तप्रमाणस्तु जघन्यः समुदाहृतः ।

द्वात्रिंशदङ्गुलं वक्त्रमुत्तमाश्वस्य कौर्त्तितम् ॥ १८७ ॥

पृष्ठं वक्षः कटिञ्चैव मुखतुल्यं समादिशेत् ।

अङ्गुलद्वयहीनन्तु मुखादि मध्यमाधमम् ॥ १८८ ॥

निर्दिशेन्मतिमांश्चैव वाजिशस्त्रविशारदः ।

सप्ताङ्गुलं खुरञ्चैव उत्तमाश्वस्य कौर्त्तितम् ॥ १८९ ॥

षडङ्गुलो भवेन्मध्ये जघन्यश्चतुरङ्गुलः ।

षोडशाङ्गुलदीर्घा तु जङ्घा चैवोत्तमा स्मृता ॥ १९० ॥

चतुर्दश तथा मध्ये हीने च द्वादशाङ्गुलः ।

एवंविधप्रमाणन्तु निर्दिष्टं शास्त्रशालिभिः ॥ १९१ ॥

अपाङ्गात् पुच्छमूलन्तु दैर्घ्येणाश्वं प्रमाणयेत् ।

खुरान्तात् ककुदं यावदूर्ध्वमानेन बुद्धिमान् ॥ १९२ ॥

वक्षोभागे तु संवेद्य रज्जा वा सूत्रकेण वा ।

परिणाहं तुरङ्गस्य मापयेन्मतिमान् भिषक् ॥ १८३ ॥

एवं प्रमाणभागेन विभक्ताङ्गः शुभः स्मृतः ।

अतो ह्योनाधिकाङ्गाश्च हरयो नैव पूजिताः ॥ १८४ ॥

इति श्रीजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे सर्वलक्षणे

तृतीयोऽध्यायः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

आयुः ।

आयुर्लक्षणमश्वानामत ऊर्ध्वं प्रचक्षते ।

शालिहोत्रादिनिर्दिष्टं यथा पूर्वं तपोधनैः ॥ १ ॥

सुसंहितास्तु ये वाहा ऋस्रकर्णास्तथैव च ।

स्वरनेत्रस्वभावेषु न दीनाश्चिरजीविनः ॥ २ ॥

महाघोणा महाकाया ये चाश्वाः पृथु वक्षसः ।

तेषां दीर्घं भवेदायुः स्निग्धाङ्गा ये च सर्वदा ॥ ३ ॥

कर्णाग्रे पीडिते येषां सिन्दूराभस्य दर्शनम् ।

शोणितस्य भवेत् क्षिप्रं ते मताश्चिरजीविनः ॥ ४ ॥

न विष्किरन्ति ये बालं स्वग्रासाय तुरङ्गमाः ।

न वा जिघ्रन्ति ये चापि तेऽपि दीर्घायुषो मताः ॥ ५ ॥

कुष्टिकानां किणा येषां दृश्यन्ते वाजिनां स्फुटाः ।

प्रतिस्रोतः पिबन्त्यश्वो ये च ते दीर्घजीविनः ॥ ६ ॥

पद्मपत्रदलाकारं जिह्वार्यं यदि वाजिनाम् ।

दन्ताश्च मौक्तिकाकारा लिङ्गं येषाञ्च निर्मलम् ॥ ७ ॥

शीत्कारश्च भवेद् येषां लाङ्गुलं क्षिपतां पुनः ।

प्रस्वेदः शुभगन्धस्तु नखा वै दर्पणोपमाः ॥ ८ ॥

येषाञ्च दृढरोमाणि ते सर्वे चिरजीविनः ।

स्निग्धगन्ध्रीरदीर्घाश्च प्रोथजा यस्य वाजिनः ।
 भवन्ति विपुला रेखास्तं विद्याद्दीर्घजीवितम् ॥ ९ ॥
 कृत्तचामरभृङ्गारखङ्गशङ्खाञ्जसन्निभाः ।
 शुक्लवज्रदलाकारा ध्वजभद्रासनोपमाः ।
 श्रीवृक्षस्त्रिकाभासाः प्रोथरेखाश्चिरायुषाम् ॥ १० ॥
 ऊर्ध्वं प्रोथे सिता रेखा यस्य वामेन चोन्नता ।
 ज्ञस्वा वा यस्य वाहस्य न चिरं तस्य जीवितम् ॥ ११ ॥
 ऊर्ध्वं प्रोथे समा रेखा दृश्यन्ते यदि वाजिनः ।
 तस्य मृत्युः समुद्दिष्टो दशमं प्राप्य वत्सरम् ॥ १२ ॥
 त्र्यङ्गुला द्वादश हे च वर्षाणां तस्य जीवितम् ।
 त्रयोदशाब्दं जीवेद् यो रेखाः स्युश्चतुरङ्गुलाः ॥ १३ ॥
 तिर्यग्गे चोर्ध्वगे चैव रेखे हे यस्य वाजिनः ।
 प्रोथजे यस्य वाहस्य तस्य विद्याच्चतुर्दश ॥ १४ ॥
 वामेन वा दक्षिणेन श्रुते यश्चैव सर्वदा ।
 बहुमूत्राल्पमूत्रश्च चिरं जीवति नो हयः ॥ १५ ॥
 विनतः पूर्वकायेन स्थूलजानुश्च यो हयः ।
 शूनाच्चिकूटस्तब्धाक्षः स्वल्पायुः स प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥
 वयः ।

लक्षणेनापि संयुक्ता वयोवृद्धास्तु वाजिनः ।
 नैव कार्यकरा येन ज्ञेयं तेषामतो वयः ॥ १७ ॥
 जातदन्तद्वयं बाल्ये पतत्यब्दे तृतीयके ।
 चतुरो दशनान् विन्द्याच्चतुर्थे पतितोत्थितान् ॥ १८ ॥
 पञ्चमे पतितोद्भूतान् षड्वदन्ति मनीषिणः ।
 षष्ठाष्टासु च सर्वेषु कालिकादिसमुद्भवः ॥ १९ ॥
 कालिका हरिणी शुक्ला काचा चैव समाक्षिका ।
 शङ्खा चैव क्रमेणाश्ववयसः परिसूचिका ॥ २० ॥

वक्रा तु कालिका रेखा कृष्णा दन्ताग्रसंस्थिता ।
 षष्ठे च सप्तमे वर्षे चाष्टमे च भवेत् क्रमात् ॥ २१ ॥
 सा पीता हरिणी ज्ञेया कालिका स्थानमाश्रिता ।
 नवमे दशमे वर्षे भवेदेकादशे तथा ॥ २२ ॥
 कृष्णा चैष भवेच्छुक्ला दन्तमूर्ध्नि समुद्भवा ।
 द्वादशाब्दं समाारभ्य भवेद् यावच्चतुर्दश ॥ २३ ॥
 सिता सिद्धार्थकाकारा काचेति परिकीर्त्तिता ।
 पञ्चदशाब्दमारभ्य यावच्छसदशादितः ॥ २४ ॥
 माक्षिका माक्षिकाकारा भवेदष्टादशादिषु ।
 विंशत्यन्तेषु सर्वेषु वाजिनां दशनोद्भवः ॥ २५ ॥
 त्रयोविंशवसानेषु एकविंशादिषु त्रिषु ।
 शङ्करूपा भवेच्छङ्गा पूर्वोक्तस्थानमाश्रिता ॥ २६ ॥
 किद्रश्च चलनं चैव तथा पातश्च यः स्मृतः ।
 नवाब्दतः क्रमाविद्याद्दृष्टानं तुरगात् स्मृतम् ॥ २७ ॥
 श्रतिवद्धाः कषायाश्च तनवश्चैव ये द्विजाः ।
 ते भवन्ति द्विवर्षस्य शुक्लाश्चैवाब्दजन्मनः ॥ २८ ॥
 श्रखल्लशिरसः सूक्ष्मा भवन्त्यपतितोत्थिताः ।
 खल्लाया विपुला दन्ता भवन्ति पतितोत्थिताः ॥ २९ ॥
 खल्लभागे विनापूर्णे व्यञ्जनानां न सम्भवाः ।
 पूर्णेषु खल्लभागेषु जायन्ते कालिकादयः ॥ ३० ॥
 निम्नं कृष्णञ्च दन्ताग्रं खल्लमित्यभिधीयते ।
 पूर्णतां तस्य जानीयात् प्रष्ठात् प्रभृति वत्सरात् ॥ ३१ ॥
 खल्लेषु कालिकाभावा नात्र कार्या विजानता ।
 नियता कालिका रेखा सुपूर्णे दन्तमस्तके ॥ ३२ ॥
 द्वयोर्भवति षष्ठेऽब्दे चतुर्णां सप्तमे तथा ।
 षष्ठ्यामष्टासु वर्षेषु दन्तानां कालिकाक्रमः ॥ ३३ ॥

कालिकानुक्रमेणैव हरिण्यादिषु बुद्धिमान् ।
 द्वौ द्वौ वर्षेण जानीयाद्वाजिनां व्यञ्जनं प्रति ॥ ३४ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे आयुर्वयो-
 ज्ञाने चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

दशाक्षेत्रविवरणम् ।

दशादशकमश्वानां जीवितं परिकीर्तितम् ।
 प्रवरं वाजिनामेतद् ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ॥ १ ॥
 वासराः सप्ततिर्द्वौ च वर्षाणाञ्च तथा त्रयम् ।
 दशाप्रमाणं वाहानां शालिहोत्रेण कीर्तितम् ॥ २ ॥
 प्रथमं प्रथमा चैवं द्वितीया च द्वितीयके ।
 दशा एवं क्रमेणैव भवेत् क्षेत्रफलप्रदा ॥ ३ ॥
 अपानादौ ललाटे तु प्रथमं क्षेत्रमुच्यते ।
 ललाटान्मस्तकं यावद् द्वितीयं समुदाहृतम् ॥ ४ ॥
 ग्रीवास्कन्धावधिच्छिन्नं तृतीयं परिकीर्तितम् ।
 उरोजन्तु तथांशे च ककुदं काकसं तथा ॥ ५ ॥
 चतुर्थं विहितं क्षेत्रं पञ्चमं चांसकं भवेत् ।
 कटिं वदन्ति षष्ठञ्च सप्तमं स्फिगुदाहृतम् ॥ ६ ॥
 स्थुरकौ चाष्टमं क्षेत्रं जङ्घा च नवमं स्मृतम् ।
 कूर्चसन्धिः खुरं चैव दशमं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥
 एवं बुद्ध्वा भिषक् प्राज्ञः सदृशं फलमादिशेत् ।
 क्षेत्रसाम्ये दशायास्तु वयोज्ञानपरायणः ॥ ८ ॥

ककुदावर्त्ति नोऽश्वस्य तथा शृङ्गान्वितस्य च ।
सर्वकालं फलं दुष्टं दशा तत्र निरर्थका ॥ ८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे दशाचेत्त्रीये
पञ्चमोऽध्यायः ।

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

जन्मदेशः ।

अश्वानां जन्मदेशांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
उत्तमानाञ्च मध्यानां ह्रीनानां यत्र सन्भवः ॥ १ ॥
उत्तमास्ताजिकाः प्रोक्तास्तथा पारसिकाश्च ये ।
केक्काणाश्चैव ये वाहाः पृष्ठजा ये च कीर्त्तिताः ॥ २ ॥
तुरी जाताश्च कीराश्च भूरुष्टा भाण्डजाश्च ये ।
पार्वताः सैन्धवा मध्यास्तथा सारस्वता हयाः ॥ ३ ॥
सम्भलाश्वाः कुशाश्चैव जटदेशोद्भवाश्च ये ।
अधमाष्टङ्गणैः साङ्गं हये प्राग्दक्षिणोद्भवाः ॥ ४ ॥
वृत्तदीर्घाश्चित्तग्रीवा ऋस्वकर्णा महाजवाः ।
महाकाया महोरस्का निस्त्रासास्ताजिका मताः ॥ ५ ॥
अत्यन्तविनतं येषां निर्मांसञ्च सुखं भवेत् ।
पौनेन कटिदेशेन मुखराश्च भवन्ति ते ॥ ६ ॥
अध्वन्याश्च महासाराः संग्रामे चैव पूजिताः ।
अपि शस्त्रहताङ्गाश्च नैव सुञ्चति सादिनम् ॥ ७ ॥
पारसीकास्ताजिकाभा कोङ्काणाः केचिदुन्नताः ।
स्यूलाः स्रक्ष्यशरीराश्च प्रधाना दीर्घपृष्ठकाः ॥ ८ ॥
केक्काणादेशजातानां मध्यमानाञ्च वाजिनाम् ।

ताजिकैः सदृशं वक्त्रं बाहुल्येन विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 सुवृत्तदेहस्तीक्ष्णश्च सप्रमाणेन मध्यमः ।
 उरुजातः समुद्दिष्टः किञ्चित् स्थूलो मनोजवः ॥ १० ॥
 अतिस्थूलोऽतितीक्ष्णश्च ऋस्वग्रीवस्तुरुस्तथा ।
 तुरुष्कः कीर्त्तितो वाजी स्थूलवक्रमुखश्च यः ॥ ११ ॥
 केकनाकारदेहस्तु भवेन्नाण्डविको हयः ।
 शान्त्या चैव प्रमाणेन केवलं नैव तत्समः ॥ १२ ॥
 सिन्धुदेशोद्भवो वाजी पृष्ठन्यसारुकीरकः ।
 आननञ्चापि दीर्घञ्च तस्य पृष्ठं प्रकीर्त्तितम् ॥ १३ ॥
 शक्त्या चैव जवेनापि रणशूरस्त्वजाघनः ।
 सादिभक्त्येच्छतो याति ताजिकादधिकस्तथा ॥ १४ ॥
 परिमण्डलदेहास्तु तीक्ष्णकर्णमुखा हयाः ।
 पक्रदेशोद्भवा दृष्टास्तथा सारस्वताश्च ये ॥ १५ ॥
 लम्बकर्णोऽजटश्चैव अकुलः परिकीर्त्तितः ।
 सःश्ललः श्लिष्टजानुश्च जटालश्चाकुलोपमः ॥ १६ ॥
 वर्तुलश्चापि ऋस्वश्च टङ्कणः परिकीर्त्तितः ।
 दाक्षिणात्यो भवेद् गुण्टो योऽधन्यः सर्ववाजिनाम् ॥ १७ ॥
 जवहीना महादुष्टाः पूर्वदेशसमुद्भवाः ।
 वाजिवहेशराणाञ्च देशं विन्द्याद्विचक्षणः ॥ १८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे

जन्मदेशे षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

वाहनविधाने

विप्रादितद्वाहनविवरणम् ।

ब्रह्मणैव यथोद्दिष्टो वाहानां वाहने विधिः ।
सारन्तस्य समुद्धृत्य सर्वं तत्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥
तुरङ्गवाहकस्यापि दोषस्य च गुणस्य च ।
विशेषन्तु विधानेन तत्सर्वं कथयाम्यहम् ॥ २ ॥
सत्वेन ज्ञायते जाती रूपेण तु च वाहयेत् ।
सामप्रधानं दण्डञ्च त्रिविधं विनियोजयेत् ॥ ३ ॥
त्रासी लुब्धो दयालुश्च विप्रः स परिकीर्त्तितः ।
शूरश्च दृढमन्युश्च क्षत्रियस्तुरगः स्मृतः ॥ ४ ॥
पापिनः कल्पषा रुक्षा दुष्टा वैश्याः प्रकीर्त्तिताः ।
विरूपा विषमाश्चैव शूद्राश्चण्डा उदाहृताः ॥ ५ ॥
ब्राह्मणान् शक्तिदानेन साम्ना चैव तु क्षत्रियान् ।
वैश्यं दण्डेन शब्देन शूद्रं दण्डेन वाहयेत् ॥ ६ ॥
प्रत्यूषे वाहयेद्विप्रं क्षत्रियं प्रहरे गते ।
वैश्यं सभ्यागते काले शूद्रं रात्रौ च वाहयेत् ॥ ७ ॥

सत्वशक्तितद्वाहनविवरणम् ।

सत्वञ्च त्रिविधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ।
उत्तमञ्चोपशामेन साम्ना दण्डेन मध्यमम् ॥ ८ ॥
शब्दाङ्गेन च दण्डेन वाहयेदधमं बुधः ।
सहजे निर्मले वाहे तैलदुग्धस्य रूपवान् ॥ ९ ॥
शक्तिश्च द्विविधा प्रोक्ता बलदौर्बल्यसम्भवा ।
बलिष्ठो दुर्बलत्वेन दुर्बलोऽपि बलेन वा ॥ १० ॥

रङ्गभूमिविवरणम् ।

क्लेनौपाधिकायाश्च सत्त्वं ज्ञात्वा च वाहयेत् ।
 सान्द्रां सुकठिनाञ्चैव पाषाणोदकसंयुताम् ॥ ११ ॥
 दणकाष्ठसमायुक्तां रङ्गभूमिन्तु वर्जयेत् ।
 समाञ्च विपुलाञ्चैव किञ्चित्पांशुसमन्विताम् ॥
 एकान्ते विजने रम्ये रङ्गभूमिन्तु कारयेत् ॥ १२ ॥

दोषगुणताडनविवरणम् ।

स्थूलः क्रोधी च मूर्खश्च चित्तोत्सुकचलासनः ।
 अस्थाने दण्डपाती च वाजी तस्य न सिध्यति ॥ १३ ॥
 प्रचलति यस्य कटिरुद्धुर्बाहुश्च दण्डवान् ।
 न तस्य वाहनं वाजी दुर्लभ्यं वाजिवाहितम् ॥ १४ ॥
 दृढासनोऽथ तत्त्वज्ञो जितमुष्टिर्निरालसः ।
 अविरागी स्थिरश्चापि षडेते वाजिवाहकाः ॥ १५ ॥
 चित्तं यो नैव जानाति तुरङ्गस्य समासतः ।
 न वहन्ति हयास्तस्य दण्डपातेन ताडिताः ॥ १६ ॥
 क्रोषिते बलिते भीते तथाचोन्मार्गगामिनि ।
 कुपितोदभ्रान्तचित्ते वा षट्सु दण्डं निपातयेत् ॥ १७ ॥
 क्रोषिते ताडयेन्मूर्ध्नि जानुभ्यां बलिते तथा ।
 क्रुद्धे उरसि हन्तव्यो भ्रान्तचित्ते तथोदरे ॥ १८ ॥
 भीतश्च ताडयेत् पश्चान् मुखे चोन्मार्गगामिनम् ।
 ज्ञात्वा दोषश्च रूपश्च स्थानेष्वेतेषु ताडयेत् ॥ १९ ॥
 अस्थानताडितो वाजी यावज्जीवं न सिध्यति ।
 नो जहाति च तद्दोषं यावज्जीवत्वसौ ह्ययः ॥ २० ॥
 कुपिते पुच्छसंस्थाने भ्रान्तौ जानुद्वये तथा ।
 सर्वस्याप्राप्तदण्डस्य दण्डमेकं निपातयेत् ॥ २१ ॥

अस्थाने ताडितो वाजी बहन् दोषानवाप्नुयात् ।
 तावद्भवन्ति ते दोषा यावज्जीवत्यसौ ह्यः ॥ २२ ॥
 अवाहिता विनश्यन्ति सर्वकर्मक्षमा अपि ।
 कृशा व्याधिपरीताङ्गा जायन्तेऽत्यन्तवाहनात् ॥ २३ ॥
 पञ्च धासः प्रवक्ष्यामि ऋषिभिर्याः प्रकीर्त्तिताः ।
 प्रथमा विक्रमा धारा द्वितीया पुलका स्मृता ॥ २४ ॥
 तृतीया पूर्णकण्ठी तु चतुर्थी त्वरिता स्मृता ।
 पञ्चमी चैव या धारा श्रूयते न च दृश्यते ।
 षष्ठी चैव तु या धारा निरालम्बा प्रकीर्त्तिता ॥ २५ ॥
 विक्रमा गतिधारा तु चतुःपादप्लुता स्मृता ।
 मुखपादसमायुक्ता पूर्णकण्ठी च या भवेत् ॥ २६ ॥
 स्वेच्छया त्वरिता धारा ताडिता चैव पञ्चमी ।
 षष्ठी चैव तु या धारा स्वर्गलोकेषु तिष्ठति ॥ २७ ॥
 या सङ्ग्रा रोमकूपानां वाहकस्य ह्यस्य च ।
 तावद्वर्षान् वसेत् स्वर्गं ह्यपृष्ठे हतो नरः ॥ २८ ॥
 यत्नोक्तं वाजिपृष्ठेषु हता गच्छन्ति मानवाः ।
 तं लोकं नाधिगच्छन्ति वड्ढवासु हताश्च ये ॥ २९ ॥
 वलाश्च संप्रवक्ष्यामि मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ।
 पुष्पदन्ती च गोकर्णी तूलोलूला तुलोद्धृता ॥ ३० ॥
 नागपीडी पुष्पधारी दुर्मुष्टी च रजस्तनी ।
 द्विहस्ती चैकहस्ती च शुभगा शोभना मता ॥ ३१ ॥
 इत्येता द्वादश वला मुनिभिः परिकीर्त्तिताः ।
 आरूढः कर्णमध्ये तु मनो लक्षति वाजिनः ॥ ३२ ॥
 शनैस्तु वाहयेत् पूर्वं पश्चात् पुलकमादिशेत् ।
 न वक्रो न तथोत्तानो न कुब्जो नाप्यधोमुखः ॥ ३३ ॥
 न भवेत् स्तम्भगात्रस्तु स भवेदश्ववाहकः ।

स्थिरोरुः स्थिरपार्श्वश्च त्रिकोन्नतः स्थिरासनः ॥ ३४ ॥

दक्षिणादितुरङ्गस्य चासने तु दृढः सदा ।

अश्ववाराः समाख्याताः शेषास्तु भयदायकाः ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मादिषु न कर्त्तव्यमृतुषु त्रिषु वाहनम् ।

हेमन्तादिषु कर्त्तव्यं सादिभिः शास्त्रवेदिभिः ॥ ३६ ॥

प्रतिपत्सु त्रयोदश्यां पञ्चम्यां वा सिते दले ।

घृतिसिद्ध्यादियोगेषु वासरे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३७ ॥

मूलरोहिणिहस्तेषु पुष्ये चैवोत्तरासु च ।

एवंविधे दिने सादी वाहनं वाहयेत् शुभे ॥ ३८ ॥

रङ्गभूमौ च रैवन्तं स्थापयेत् पूजयेत्ततः ।

पुष्पैर्धूपैः प्रदीपैश्च चन्दनैः पायसैस्तथा ॥ ३९ ॥

पक्वान्नैः पञ्चशब्दैश्च प्रातःशुचिः सुवाससः ।

रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तपुष्पधरस्तथा ॥ ४० ॥

ओं नमो रैवन्ताय अश्वहृदयाय क्लीं क्लीं ओं नमोऽति-
श्वंताय सौम्यरूपाय इमं मम अश्वं साधय साधय बन्धय
बन्धय वश्यं कुरु कुरु महावीर्याय रैवन्ताय नमः ॥ ४१ ॥

एतन्मन्त्रं जपेत्प्राज्ञो हयस्य दक्षिणे श्रुतौ ।

एकविंशतिवारांश्च ततः पर्याणयेद्द्वयम् ॥ ४२ ॥

क्रोशमेकं तमारुह्य नयेद्दीक्षां शनैः शनैः ।

वल्गाग्रहश्च कर्त्तव्यः सव्यापसव्यमेव च ॥ ४३ ॥

विक्रमा पुलका पूर्णकण्ठी च त्वरिता तथा ।

खलीनादि प्रयोक्तव्यं सादिना वाजिनां क्रमात् ॥ ४४ ॥

नातिस्थूलं क्लृप्तं नाति न स्तब्धं नातिकर्कशम् ।

सप्ताङ्गुलप्रमाणन्तु खलीनं कारयेद्बुधः ॥ ४५ ॥

खलीनादिषु लीहेषु धाराषु विक्रमादिषु ।

क्रमेणैव तुरङ्गाणां कटानि संप्रयोजयेत् ॥ ४६ ॥

खलीनादौ च धारासु यदा सुशिक्षितो ह्ययः ।
 तदा कटेषु तं सादौ भ्रामयेद्विक्रमादिभिः ॥ ४७ ॥
 शतहस्तादिकां भूमिं सप्तहस्तावसानिकाम् ।
 भ्रामयेद्वाजिनं सादौ सव्यं चैवापसव्यकम् ॥ ४८ ॥
 मण्डलं बतुरस्रञ्च गोमूत्रं चार्द्धचन्द्रकम् ।
 नागपाशक्रमेणैव भ्रामयेत् कटपञ्चकम् ॥ ४९ ॥
 एवमन्येषु लोहेषु त्रिष्वेव भ्रामयेत्कटे ।
 य एवं वाहयेद्वाहं तस्य कष्टं न जायते ॥ ५० ॥
 दद्याद् भयमभीतस्य भीतस्यापि हरेद्भयम् ।
 रहस्यं सादिनामेतद्वाहनेऽस्मिन्निवेदितम् ॥ ५१ ॥
 पूर्वोक्तेषु च देशेषु षट्सु दोषेषु ताडयेत् ।
 न जातु सादिनान्यस्मिन् काले दोषशतैरपि ॥ ५२ ॥
 दस्यमानस्य वाहस्य यो दोषः सादिदोषतः ।
 जायतेऽसौ निराकर्त्तुः सादिना नैव शक्यते ॥ ५३ ॥
 एवं शास्त्रविधानेन यः सादौ वाहयेद्दयान् ।
 हरयस्तस्य सिध्यन्ति भवन्ति फलदायकाः ॥ ५४ ॥
 वाहनं सच्च दुष्टञ्च धूपालेपनमन्त्रकैः ।
 तदहं संप्रवक्ष्यामि मुनिभिः कीर्त्तितं यथा ॥ ५५ ॥
 अस्थिभिर्दशनैश्चैव वृकाणाञ्च तथा बुधैः ।
 विषमकरदंष्ट्राभिर्धूपमुक्तं हि सर्पिषा ॥ ५६ ॥
 एलागुरुमदोशौरनागकेसरचन्दनैः ।
 सर्जिकातेलसंयुक्तैर्धूपयेद्दुष्टवाजिनम् ॥ ५७ ॥
 विषलोहगदैलाभिस्तैलाज्यदधिचन्दनैः ।
 निःशेषदोषनाशाय धूपमुक्तं हि वाजिनम् ॥ ५८ ॥
 विलिप्ता गोमयैः प्रातर्निशीथे सर्वसन्धिषु ।
 अष्टम्याञ्च विशेषेण दुष्टाः सिध्यन्ति धूपिताः ॥ ५९ ॥

कासीसं चन्दनं कौन्तीसिद्धार्थमरिचानि च ।
 सैन्धवं वडवामूत्रं गोमूत्रं कर्णजं मलम् ॥ ६० ॥
 सुनिगुप्तानि पिष्टानि कणायासवचानि च ।
 अञ्जनं सर्वदुष्टानां देयं पर्वणि पर्वणि ॥ ६१ ॥
 अनेनाभ्यञ्जितो वाजी निर्वाणमधिगच्छति ।
 कोपं मोहं भयं त्यक्त्वा वश्यः स्यात् सादिनो भृशम् ॥ ६२ ॥

सादिकार्यविवरणम् ।

प्रातः सादौ शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरस्तथा ।
 उपोषितो यतिर्भूत्वा जपेत्कर्णं च दक्षिणे ॥ ६३ ॥
 हयगन्धर्वराज त्वं शृणुष्व वचनं मम ।
 गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषणः ॥ ६४ ॥
 द्विजानां सत्यवाक्यानां सीमस्य गरुडस्य च ।
 रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ॥ ६५ ॥
 हुताशनस्य दीप्तस्य स्मर जातिं तुरङ्गम ।
 स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ॥ ६६ ॥
 स्मर त्वं वारुणीं कन्यां स्मर त्वं कौस्तुभं मणिम् ।
 क्षीरोदसागरे चैवमवमथ्य सुरासुरैः ॥ ६७ ॥
 तत्र देवकुले जातः स्ववाक्यं परिपालय ।
 कुले जातस्त्वमश्वानां मित्रं मे भव शाश्वतम् ॥ ६८ ॥
 शृणु मित्र त्वमेतद्वै सिद्धो मे भव वाहनम् ।
 विजयेऽहं धराञ्चैव संग्रामे सिद्धिमावह ॥ ६९ ॥
 तव पृष्ठं समारुह्य हता दैत्याः सुरैः पुरा ।
 अधुना त्वां समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीम् ॥ ७० ॥
 मन्त्रजापं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन बुद्धिमान् ।
 विद्वज्य सर्वदेवांश्च ततः पर्याणयेद्वयम् ॥ ७१ ॥

वाहागमेषु येऽभिज्ञाः कुर्वन्ति हरिवाहनम् ।
सुहृदस्ते च वाहानामन्ये तु हरिशत्रवः ॥ ७३ ॥

इति महासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
वाहनविधौ सप्तमोऽध्यायः ।

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

बन्धोपचारः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि बन्ध्याया गर्भधारणम् ।
शालिहोत्रादिभिः प्रोक्तं यथापूर्वं तपोधनैः ॥ १ ॥
घृतेन वड्वामादौ स्निग्धां पाणिन्तु वेधयेत् ।
ततो निरूहयेदश्वं यथाशास्त्रं विचक्षणः ॥ २ ॥
ततोऽनुवासयेत् प्राज्ञः सप्तरात्रन्तु वाहयेत् ।
कुडवं विखचूर्णस्य मात्सिकं कुडवद्वयम् ॥ ३ ॥
क्षीराढकं भिषग्दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
मधुना मूर्च्छितं कृत्वा वैद्यस्तत्पाययेद्वयीम् ॥ ४ ॥
महास्नेहस्य प्रस्थांशं योन्यां वस्तिं प्रदापयेत् ।
सर्वं प्रवेशयेन्नेत्रं सम्पूर्णं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ५ ॥
अपामार्गवचाविल्वशिशुवीजरसोनकैः ।
त्रिफला पिप्पली वाजिगन्धासर्षपसंयुतम् ॥ ६ ॥
सन्नीय भोजयेदश्वीं यावकं लवणाभसा ।
विल्वचूर्णयुतं दध्ना कृशरं पापयेत्ततः ॥ ७ ॥
मागधी त्रिफलाशिशुवीजापामार्गसुस्तकैः ।
सुचूर्णितैः पचेत्तैलं वचामरिचसर्षपैः ॥ ८ ॥
वस्ती पानं प्रदातव्यं तैलमेतद्विचक्षणैः ।
यावकञ्च ततो देयमन्नं दधिसमन्वितम् ॥ ९ ॥

एवंविधैः प्रयोगैश्च बन्ध्या भवति गर्भिणी ।
 शीतपाक्थौ च मेदे च वृद्धे द्वे त्रिफला वचा ॥ १० ॥
 काथयेन्मतिमांस्तोये द्रोणे पादावशेषितम् ।
 कृत्वा संस्नाव्य वस्त्राच्च देयं तत्र घृताढकम् ॥ ११ ॥
 बला चातिबला मेदे तथा क्षीरविदारिका ।
 जीवकर्षभकी चैव यष्टीमधुकशारिवे ॥ १२ ॥
 चूर्णयित्वा क्षिपेत्तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
 स्नेहानुवासनादेतद् बन्ध्यायाः स्यात् फलप्रदम् ॥ १३ ॥
 काथं रौहीतकं क्षीरं मात्तिकं रोहिणीद्वयम् ।
 विडङ्गनेन समालोड्य पाययेन्मतिमान् भिषक् ॥ १४ ॥
 एतैश्च पिण्डिकां कृत्वा योन्यां तस्याः प्रवेशयेत् ।
 ततः संयोजयेदश्वं पश्चात्तोयावगाहनम् ॥ १५ ॥
 कारयेन्मस्तकं चास्या अश्वुभिः परिषेचयेत् ।
 एवं गर्भं प्रगृह्णाति कर्त्तव्यो नात्र संशयः ॥ १६ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे बन्धोप-
 चारेऽष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः ।

गर्भज्ञानः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि सगर्भायास्तु लक्षणम् ।
 योन्यां बीजग्रहे तृप्तिर्लोचनाविलता तथा ॥ १ ॥
 सगर्भा ताडयेदश्वं गर्भस्य परिलक्षणम् ।
 काचिन्मूका जङ्गीभूता निर्विकारा त्यजेद् वृषम् ॥ २ ॥
 काचित् कण्डूयमानाश्वा गर्भिण्यपि प्रहर्षते ।
 काचिद्रागवशाद्वापि समूत्रा ताडयेद् वृषम् ॥ ३ ॥

रुणद्धि परुषा काचिदश्वा पुच्छेन योनिकाम् ।
 विन्यस्तकर्णी क्रोधाद्वा वृषं दृष्ट्वापसर्पिणी ॥ ४ ॥
 शूनाधो योनिभागा च सदा कान्तिविधारिणी ।
 प्रशस्तरन्ध्रा स्निग्धाङ्गी निविडोदरबन्धना ॥ ५ ॥
 गर्भोपलिम्पार्श्वा च वड्वा गर्भिणी मता ।
 शरीरोपचयः शोभानिर्हृत्तिर्गतिमन्दता ॥ ६ ॥
 श्वासः स्वल्पाशनत्वञ्च शरीरस्य च पुष्टता ।
 स्निग्धता चैव रोमाणां घनरन्ध्रत्वमेव च ॥ ७ ॥
 चान्ता दान्ता प्रशान्ता च वृषं नेक्षति गर्भिणी ।
 प्रथमे च द्वितीये च मांसशोभा प्रजायते ॥ ८ ॥
 तृतीये च चतुर्थे च पक्वमांसञ्च वर्द्धयेत् ।
 पञ्चमे चैव षष्ठे च त्वचि रोमं प्रसीदति ॥ ९ ॥
 सप्तमे वाष्टमे मासे योनिः सम्पद्यतेः पृथुः ।
 पादाः श्रूयन्ति नवमे तस्याधश्चातिवर्द्धते ॥ १० ॥
 दशमे चैकादशे वा द्वादशे वा प्रसूयते ।
 एवं नानाविधैर्ज्ञेया गर्भिणी ह्यकोविदैः ॥ ११ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे गर्भज्ञाने
 नवमोऽध्यायः ।

अथ दशमोऽध्यायः ।

सूतिकोपचारः ।

गर्भन्तु निर्गतं ज्ञात्वा वारिणा परिषेचयेत् ।
 ऋतुं विज्ञाय मतिमान् शीतोष्णेन च वा पुनः ॥ १ ॥
 अथ मातुः स्तनौ धीतौ पाययेत् परिगृह्य तम् ।
 विलग्नेषु च गर्भेषु जरायुषु पतत्सु च ॥ २ ॥

समान्येतानि मेधावी भेषजान्युपकल्पयेत् ।
 ज्योतिष्मती तेजवती शङ्खपुष्पी शतावरौ ॥ ३ ॥
 भार्गी वचा विशल्या च तथा लाङ्गलिकापि च ।
 एतत् संहृत्य सन्धारं ग्रन्थयेत् सर्षपैः सह ॥ ४ ॥
 ततः शिरसि कण्ठे च पुच्छे चाप्युपयोजयेद् ।
 लाङ्गली विष्वशुण्ठीनां चूर्णं तोयेन पाययेत् ॥ ५ ॥
 एवं विमुच्यते गर्भो जरायूषि पतन्ति च ।
 प्रतिपानैस्ततः कोष्ठं शोधयेद्द्व्यमाणकैः ॥ ६ ॥
 सौधुमधु त्रिकटुकैः पूर्वाह्णे पाययेद्द्वयीम् ।
 पैष्टिकीं वा सुरां दद्याद् गुड़तैलेन संयुताम् ॥ ७ ॥
 अश्वायै दापयेद् ग्रासं सुजीर्णं प्रतिपानकैः ।
 ततो न पाययेत् क्षीरमेकरात्रिं त्रिको निधिः ॥ ८ ॥
 चतुर्थे दिवसे प्राप्ते तोयं चैव शृतं पिबेत् ।
 तदा न मुच्यते योन्या फेनं गर्भोदकन्तु वा ॥ ९ ॥
 यस्माद्दिमुक्तगर्भायाः कोष्ठे वायुरुदीर्यते ।
 तस्माद् घृतं प्रदातव्यं प्रसूतायां विजानता ॥ १० ॥
 यवाः सर्वे हिता दूर्वा यावकं सर्पिषा सह ।
 दशमेऽहनि संप्राप्ते सवस्त्रां स्नापयेद्द्वयीम् ॥ ११ ॥
 गन्धाद्यैः पूजयेत् पुष्पैर्गन्धधूपैश्च धूपयेत् ।

क्षीरशोधनम् ।

अथ दुष्टस्य वक्ष्यामि क्षीरस्य परिशोधनम् ॥ १२ ॥
 जम्बूकषायं क्षौद्रेण मिश्रितं पाययेद्द्वयीम् ।
 पञ्चवल्कलमादाय चालितं जर्जरीकृतम् ॥ १३ ॥
 वारिणा साधयेद्द्वयो रात्रुप्रषितञ्च कारयेत् ।
 प्रभाते दापयेदश्वं शर्करा मधुमिश्रितम् ॥ १४ ॥
 अजाजी भद्रमुस्ता च शृङ्गवेरञ्च सर्षपम् ।

तुम्बुरुणि विडङ्गानि चित्रकं देवदारु च ॥ १५ ॥
 पिप्पली च हरिद्रे द्वे पाठां शिशुञ्च पेषयेत् ।
 कल्कं सौवीरकेणैव सन्नीय प्रतिभोजयेत् ॥ २६ ॥
 गुड़तैलसमायुक्तं तौक्ष्णां वा पाययेत् सुराम् ।
 दुष्टस्य शोषना योगा क्षीरस्यैते विवर्द्धनाः ॥ १७ ॥

किशोरोपचारप्रकरणम् ।

क्षौद्रञ्च नवनीतञ्च मिश्रितं लेहयेच्छिशुम् ।
 मासमेकं किशोरन्तु ततो भोजनमाचरेत् ॥ १८ ॥
 गोधूमान्नं यवान्नञ्च सुसिद्धं पयसान्वितम् ।
 मधुसर्पिः समायुक्तं किशोराणां प्रशस्यते ॥ १९ ॥
 तक्कं वा घृतसंयुक्तं मधुक्षीरविमिश्रितम् ।
 पाययेच्च किशोरांस्तु सद्योबलविवर्द्धनम् ॥ २० ॥
 पत्रं किशोरा वर्द्धन्ते बलवन्तो भवन्ति च ।
 गरौरेन्द्रियधात्वग्निदोषाः प्रकृतयस्तथा ॥ २१ ॥
 बलानाञ्च तुरङ्गाणां तुल्यरूपा भवन्ति ते ।
 तान्येव व्याधिरूपाणि तदेव तु चिकित्सितम् ॥ २२ ॥
 स एव वातस्तत्पित्तं स श्लेष्मा तद्धि शोणितम् ।
 विशेषः केवलस्तत्र मात्रायाः परिकीर्तितः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 सूतिकोपचारे दशमोऽध्यायः ।

अथ एकादशोऽध्यायः ।

द्रव्यमात्राज्ञानम् ।

प्रधानमध्यहीनानां देशकालबलं प्रति ।
 वाजिनामुपयोगाय द्रव्यमात्रा विधीयते ॥ १ ॥

पक्वगुञ्जाफलेर्माषो अष्टभिः परिकीर्तितः ।
 माषैः षोडशभिः कर्षस्तेष्वतुर्भिः पलं भवेत् ॥ २ ॥
 चतुःपलैः स्यात् कुडवः प्रस्थः षोडशभिः पलैः ।
 चतुःषष्ठ्या पलैरेक आढकः परिकीर्तितः ॥ ३ ॥
 शतद्वयं पलानान्तु षट्पञ्चाशत्तथैव च ।
 द्रोणस्य कीर्तिता संख्या प्रमाणज्ञानकोविदैः ॥ ४ ॥
 शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा सा द्रवे द्विगुणा भवेत् ।
 मूलादीनामशुष्काणां द्रव्यतुल्यो विधिः स्मृतः ॥ ५ ॥
 एकस्मिन्नेव दातव्यं दिने वाहस्य निस्तुपैः ।
 अविनष्टैर्यवैः पूर्णमाढकानां चतुष्टयम् ॥ ६ ॥
 उत्तमाधमहीनानां पादहीनन्तु दापयेत् ।
 पादो न आढको देयः सुसिद्धो भोजने तथा ॥ ७ ॥
 शालेश्च तण्डुलानां तु अर्द्धञ्चैव प्रदापयेत् ।
 कनीयसोऽर्द्धहीनञ्चेदिति मानं शरीरिणाम् ॥ ८ ॥
 चणकाश्चैव माषाश्च ये चान्ये ब्रीहयस्तथा ।
 यवार्द्धेन प्रयोक्तव्या देशसाम्नेन खादने ॥ ९ ॥
 मुद्गप्रस्थास्त्रयो योज्या वाजिनां मुद्गभोजने ।
 त्रयश्च स्नेहकुडवा एकश्च लवणस्य तु ॥ १० ॥
 तत्रमाणेन तैलेन लवणेन तथैव च ।
 माषा मुद्गसमा देया भोजनाय च वाजिनाम् ॥ ११ ॥
 सर्पिषश्चापि पानार्थं प्रस्थं दद्याद्विचक्षणः ।
 मधुनः कुडवं चापि फाणितस्य तथैव च ॥ १२ ॥
 शर्कराश्चैव खण्डश्च तथा मत्स्यण्डिकामपि ।
 फाणितस्य प्रमाणेन दापयेन्मनिमान् भिषक् ॥ १३ ॥
 अर्द्धप्रस्थन्तु तैलस्य पलान्यष्टौ गुडस्य च ।
 प्रतिपाने सुरायाश्च प्रस्थनेकं प्रदापयेत् ॥ १४ ॥

चूर्णं च लवणं पिण्डीं पलैकाञ्चैव बुद्धिमान् ।
 चतुःपलं घृताह्वयाह्नेहे पाने च भोजने ॥ १५ ॥
 पलानि दश कल्कस्य निरूहे संप्रदापयेत् ।
 आढकञ्च कषायस्य दद्याद् बुद्धिमतां वरः ॥ १६ ॥
 तावत् प्रमाणं क्षीरञ्च क्षीरवस्त्रौ प्रकीर्तितम् ।
 स्नेहप्रस्थः प्रदातव्यो निरूहे चैव वार्जिनाम् ॥ १७ ॥
 अभ्यङ्गं कारयेत्तावत् यावद्विन्दोश्चुरतिर्भवेत् ।
 कषाय प्रतिपानार्थं द्वौ प्रस्थौ परिकीर्तितौ ॥ १८ ॥
 प्रतिपानात्पलं यूषं द्विगुणञ्चैव दापयेत् ।
 अर्द्धाढकञ्च दातव्यो रसश्चेत्त्रिचक्षुषैः ॥ १९ ॥
 पेयार्थं तण्डुलप्रस्थो यवागूर्द्विगुणेन तु ।
 भोजितस्यानुपानाय सुराप्रस्थः प्रकीर्तितः ॥ २० ॥
 दापयेत्तण्डुलप्रस्थं तण्डुलोदककर्मणि ।
 यवागूमण्डकल्केन दद्याद्द्वै तण्डुलोदकम् ॥ २१ ॥
 द्वौ प्रस्थौ शक्तुकानान्तु शक्तुपाने प्रदापयेत् ।
 गुडस्य च पलान्यष्टौ आढकञ्चैव वारिणः ॥ २२ ॥
 इक्षोरससमं देयं पानार्थं च गुडोदकम् ।
 प्रतिपाने पलं देयं द्रव्याणां सुरया सह ॥ २३ ॥
 स्नेहस्य कुडवस्यैव नस्यार्थं परिकीर्तितः ।
 भेदनीये च तीक्ष्णं च पादोऽनं संप्रदापयेत् ॥ २४ ॥
 कर्णयोः पूरणे स्नेहो भवेन्नावनसम्मितः ।
 शिरोविरेके दातव्यमर्द्धन्तु कुडवस्य वै ॥ २५ ॥
 औषधस्य पलं देयं हिङ्गोरिकञ्च माषकः ।
 नस्यप्रदाने चाश्वस्य कर्षमेकं प्रदापयेत् ॥ २६ ॥
 धूपे चूर्णं त्रयः कर्षा घृतकर्षञ्च सौरभः ।
 अनिर्दिष्टकषायस्तु पादशेषः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

निर्विशेषप्रमाणानां द्रव्याणां पलमादिशेत् ।
 रुधिरस्याढको देयः पानार्थं यत्र युज्यते ॥ २८ ॥
 विंशतिस्त्रिगुणाश्चैव वारिमानं प्रकीर्त्तिताः ।
 अनुपानं तथाशीतिशतं जाङ्गलचारिणाम् ॥ २९ ॥
 मांसानां दापयेत् सम्यक् पलसङ्ख्यामिमां बुधः ।
 रसके भोजने देयं वाजिनां हितकाम्यया ॥ ३० ॥
 शिशुमारोद्रकुम्भीरगोधामण्डूककर्कटाः ।
 शङ्खकच्छपशुक्त्याद्याः कीर्त्तिता जलजन्तवः ॥ ३१ ॥
 गवयो गण्डको हस्ती शूकरो महिषो रुहः ।
 आनूपाः कथिता ह्येते ये चान्येऽनूपवासिनः ॥ ३२ ॥
 कृष्णसारशशद्दीपिच्छागसिंहतरक्षवः ।
 सम्बरेणकनीलाण्डवृषभोद्गाविकैडकाः ॥ ३३ ॥
 जाङ्गलाः पशवः प्रोक्ता ये चान्ये स्थलवासिनः ।
 शशोऽतिलघुरेतेषां गुरुथैवाविकस्तथा ॥ ३४ ॥
 जम्बूवेतसहिन्तालकदलीनलवेणुभिः ।
 युक्तो बहुजलो निम्नो देशोऽनूप उदाहृतः ॥ ३५ ॥
 कशेरुकशमीपीलु करीरद्रुमशङ्करैः ।
 खदिरैश्चापि संयुक्तास्तथा च वकुलेर्युतः ॥ ३६ ॥
 जलहीनस्थलीप्रायो देशो जाङ्गल उच्यते ।
 साधारणा द्विरूपस्थास्तज्जाः साधारणा मृगाः ॥ ३७ ॥
 तेषां मांसप्रयोगे तु मात्रा साधारणा स्मृता ।
 पशवः पक्षिणश्चापि ज्ञेया देशसमाः सदा ॥ ३८ ॥
 वारिजा गुरवः स्निग्धा वातघ्नाः श्लेष्मशुक्रलाः ।
 आनूपा वारिजैस्तुल्या किञ्चिच्च लघवः स्मृताः ॥ ३९ ॥
 त्रिदोषशमना वल्या जाङ्गला मृगपक्षिणः ।
 अनभिष्यन्दिनो हृद्याः कायाग्नेश्चापि रोधिनः ॥ ४० ॥

साधारणाः समुद्भूता ज्ञेयाः साधारणाः सदा ।
 रसवीर्यविपाकाश्च तेषां साधारणा मताः ॥ ४१ ॥
 कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात् क्वाथश्चतुर्गुणः ।
 स्नेहपाके विधिश्चायं समानः परिकीर्तितः ॥ ४२ ॥
 स्नेहकल्की यदाङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् ।
 वङ्गी क्षिप्ते च नोशब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ४३ ॥
 व्रणे नस्ये तथा वस्ती मृदुपाकः प्रकीर्तितः ।
 अभ्यङ्गे मध्यपाकस्तु पाने किञ्चिद्द्वरो भवेत् ॥ ४४ ॥
 मध्यमोत्तमहीनानामेवमेव विचक्षणः ।
 वयोऽनुरूपद्रव्याणि दापयेच्च शरीरतः ॥ ४५ ॥
 वर्षजाते भवेत्पादो ही पादौ च द्विहायने ।
 त्रयस्त्रिहायने देयाः पूर्णं दद्यात्ततः परम् ॥ ४६ ॥
 कृशे चाल्पप्रमाणे च दद्यान्मात्रां कनीयसीम् ।
 महाकाये तथा स्थूले प्रयोज्या मध्यमोत्तमाः ॥ ४७ ॥
 क्वाथपानप्रलेपेषु वाह्यौ चापि तपोधनैः ।
 अनिर्दिष्टे जलं प्रोक्तं लवणञ्चैव सैन्धवम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 द्रव्यमात्राज्ञाने एकादशोऽध्यायः ।

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

निघण्टुः ।

निघण्टुं संप्रवक्ष्यामि पूर्वशास्त्रानुसारतः ।
 द्रव्याणामवबोधस्तु येन सम्यक् प्रजायते ॥ १ ॥
 वत्सादनी छिन्नरुहा गुडूची तन्त्रिकामृता ।

वृषो वासाटरूपश्च वासकः परिकीर्तितः ॥ २ ॥
 कुरुविन्दं घनं सुस्तं मेघाख्यं नागकेशरम् ।
 उदीच्यो जलनामा च वह्निरिष्टश्च बालकः ॥ ३ ॥
 उरुवूको व्याघ्रदलस्तथा गन्धर्वहस्तकः ।
 एरण्डः कीर्तितो वैशैर्वातारिश्च विशेषतः ॥ ४ ॥
 ब्रह्मदण्डी च भार्गी च तथा च द्विजयष्टिका ।
 मकूलो दुम्बरदला दन्ती प्रोक्ता निकुम्भिका ॥ ५ ॥
 एकाष्टीला स्मृता पाठा अश्वष्टा च प्रकीर्तिता ।
 उषणा चविका चय्या अजमोदा च दीप्यकः ॥ ६ ॥
 जिङ्गी च विकसा वापि मञ्जिष्ठा परिकीर्तिता ।
 अनन्ता सारिवा गोपी सृक्का देवीलता लघुः ॥ ७ ॥
 सृष्टीका गोस्तनी द्राक्षा कच्छुरा च शठी स्मृता ।
 यीवेष्टकं दधिकं स्यात्सुरभी शल्लकी सुधा ॥ ८ ॥
 कच्छुरा ताम्रपुष्पी च नादेयो भूमिजम्बुका ।
 अश्वत्यः पिप्पली बोधिन्यग्राधो बहुपादटः ॥ ९ ॥
 उदुम्बरस्तु यज्ञाङ्गी गर्दभाण्डः कपीतनः ।
 पाषाणभेदो विख्यातः शिलाभेदोऽश्मभेदकः ॥ १० ॥
 वृक्षादनी च वन्दाको सुरसा तुलसी स्मृता ।
 राक्षसी चैव चण्डा च चोरपुष्पाभिधीयते ॥ ११ ॥
 अगुरुर्लोहसंज्ञस्तु राजार्हश्चापि कीर्तितः ।
 यवानिका तु भूतीका, खदिरं दन्तधावनम् ॥ १२ ॥
 नलदा चैव मांसीतु हेमाख्यं नागकेशरम् ।
 गोधावती च सुवहा, गुन्द्रस्तेजनकः शरः ॥ १३ ॥
 चूडाला चक्रला चैव उच्चटा परिकीर्तिता ।
 वीजं कुटजवृक्षस्य कीर्तितं मुनिभिः पुरा ॥ १४ ॥
 कलिङ्गेन्द्रयवाहन्तु वसुको वसुहृदकः ।

त्रुटिर्वयस्था सूक्ष्मैला स्थूलैला तालकाफलम् ॥ १५ ॥
 अक्षीवश्चाक्षकश्चैव अजकः परिकीर्तितः ।
 युग्मपत्रः कोविदारः कुरवः कोकिलाक्षकः ॥ १६ ॥
 शिशुः शोभाञ्जनः प्रोक्तस्तत्फलं मरिचं सितम् ।
 अतिपत्रां महापत्रा सूक्ष्मपत्रा बला स्मृता ॥ १७ ॥
 समङ्गा वाधपुष्पी च वातला वाथ कादली ।
 महाद्रुमश्च वज्री च सुहा चैव सुही स्मृता ॥ १८ ॥
 अर्कस्य रविनामानि विज्ञेयानि विचक्षणैः ।
 धत्तूरः काञ्चनः प्रोक्तस्तथाचोन्मत्तकः स्मृतः ॥ १९ ॥
 करवीरोऽश्वमारश्च चित्रको वङ्गिमञ्जकः ।
 कोषातकी महाजाली देवदाली च कीर्तिता ॥ २० ॥
 धामार्गवश्च विख्यातो घोषा चेति च सूरिभिः ।
 आरग्वधः कृतमालो व्याधिघ्नश्चतुरङ्गुलः ॥ २१ ॥
 मार्जनस्तिल्बकश्चैव सावरो लोभ्र उच्यते ।
 नक्तमालः करञ्जश्च चिरविल्बः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥
 पूतीकरञ्जः पूतीकः प्रकीर्यः कलिमारकः ।
 कपित्थस्तु दधित्थः स्यान्मालूरो विल्ब उच्यते ॥ २३ ॥
 भाटलो मुष्ककः प्रोक्तस्तथा वै घण्टकः स्मृतः ।
 वृक्षको वल्ककश्चैव कुटजो गिरिर्मल्लिका ॥ २४ ॥
 वीजको वीजपूरश्च मातुलुङ्गश्च पूरकः ।
 कदली कीर्तिता रश्मा हरिद्रा रात्रिनामिका ॥ २५ ॥
 द्रवन्ती चैव चित्रा च तथा मूषकपर्णिका ।
 सर्वानुभूतिः सरला त्रिवृता कालर्मिषिका ॥ २६ ॥
 मसूरविदला वापि त्रिवृत्प्रोक्ता त्रिकण्टका ।
 यष्टिका त्रिदला रूपं क्लौतकं मधुयष्टिका ॥ २७ ॥
 यथ्याङ्गं मधुकश्चैव कीर्तितं शास्त्रशार्लाभः ।

हैमवत्युग्रगन्धा च षड्ग्रन्था च वचा स्मृता ॥ २८ ॥
 शकुलादन्यरिष्टा च कटुका कटुरोहिणी ।
 फलिनी च प्रियङ्गुः स्यात् विश्वक्सेना च कीर्त्तिता ॥ २९ ॥
 यवासो धन्वयासश्च दुस्पर्शा च दुरालभा ।
 श्वेतभण्डा च खुरिका शारदी गिरिकर्णिका ॥ ३० ॥
 अपराजिता समुद्दिष्टा वेणुर्वंशश्च कीर्त्तितः ।
 शङ्खिणी तिक्तला प्रोक्ता, सप्तला चर्मकारिका ॥ ३१ ॥
 ऋषभः स्यादृषभको जीवकः कूर्चशीर्षकः ।
 शीतपाकी च काकोली माषपर्णी महासहा ॥ ३२ ॥
 मुद्गपर्णी क्षुद्रसहा, पयस्यादित्यपुष्पिका ।
 क्षौरिका राजवृक्षश्च तथा वै पार्थिवादनी ॥ ३३ ॥
 शालपर्णेशुभती स्यात्तथा चापि स्थिरा ध्रुवा ।
 पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी कलशी धावनी गुहा ॥ ३४ ॥
 वार्त्ताकी वृहती सिंही भाण्टाकी दुष्प्रधर्षणी ।
 निर्दिग्धिका सृशा व्याघ्री क्षुद्रिका कण्टकारिका ॥ ३५ ॥
 राटं पिण्डीतकं गोलं श्वसनं मदनं फलम् ।
 लामज्जको मृणालश्च सेव्यश्चोशीर उच्यते ॥ ३६ ॥
 पलङ्कषा च चित्रांशुर्गुगुलुः कैशिकः पुरः ।
 श्योणाको दीर्घवृन्तश्च कटुङ्गश्चैव टुण्टुकः ॥ ३७ ॥
 काको दुम्बरिका फलुर्मलपूर्जं घने फला ।
 हरिबालं सुगन्धश्च ऐलेयं चैलवालुकम् ॥ ३८ ॥
 वक्त्रं नतश्च तगरं जिम्भं कालानुशारिवा ।
 अभीरुर्वहुपुत्री च तथा मूला शतावरी ॥ ३९ ॥
 दूर्वा सहस्रवीर्या स्याच्छतवीर्या तु सा मता ।
 छत्रा मधुरिका प्रोक्ता मिषिर्माङ्गलिका च सा ॥ ४० ॥
 भरद्वाजी च कार्पासी शृङ्गी कर्कटशृङ्गिका ।

कुटन्नटञ्च धन्यञ्च प्लवञ्च परिपेलवम् ॥ ४१ ॥
 गोकण्टको गोक्षुरकः खरदंष्ट्रा त्रिकण्टकः ।
 विम्बो रक्तफला प्रोक्ता तथा रक्तोष्ठका मता ॥ ४२ ॥
 सैरीयकः सहचरी वाणा दासी कुरुण्टका ।
 कुस्तुम्बुरैश्च धन्याको गोलोमी भूतकेशिका ॥ ४३ ॥
 श्रेयसी चैव चण्डा च रास्ना च परिकीर्तिता ।
 अर्जुनः ककुभः पार्थः क्षीरवृक्षो धनञ्जयः ॥ ४४ ॥
 चिरञ्जीवी च मधुरः प्रियको जीवको मतः ।
 ज्योतिष्मती हैमवती तेजोवत्यप्युदाहृता ॥ ४५ ॥
 कुठेरकोऽर्जकश्चैव पर्णासः परिकीर्तितः ।
 ब्रह्मपुष्पः फणिज्मस्तु, तर्कारी वैजयन्तिका ॥ ४६ ॥
 चायमाणा सहृक्षाणी कोलवल्ली च पिप्पली ।
 नीलिनी चैव नीलो स्यात् सोमराजो च वाकुची ॥ ४७ ॥
 रोहीतकः प्लीहशत्रुः, वातपोषस्तु किंशुकः ।
 सर्पदंष्ट्रा वृश्चिकाली आस्फोता वनमालिका ॥ ४८ ॥
 चित्रा गवाक्षी गोडुम्बी सुषवी कारवेल्लिका ।
 मार्कवो भृङ्गराजः स्यात् सुनिषसं चिकुत्रकम् ॥ ४९ ॥
 काला गृध्रनखी हिंसा सर्पगन्धा तु नाकुली ।
 कट्टम्बरा प्रसारणी गोजिह्वा दर्विपत्रिका ॥ ५० ॥
 महौषधं शृङ्गवेरं नागरं विश्वभेषजम् ।
 मागधी चोपकुल्या च वैदेही पिप्पली कणा ॥ ५१ ॥
 शितोपला शिता चापि शर्करा परिकीर्तिता ।
 विशेधौ द्वौ तु खण्डस्य मत्स्यण्डौ फाणितौ समौ ॥ ५२ ॥
 गुटिको मिषरो मत्स्यो मत्स्यण्डौ परिकीर्तितः ।
 फाणितस्तद्द्रवश्चापि विहितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ५३ ॥
 हरीतक्यभया पथ्या अमोघा चाव्यथा शिवा ।

धात्री चामलकी प्रोक्ता विभीतोऽक्षः कलिद्रुमः ॥ ५४ ॥
 जन्तुकं रामठं हिङ्गु वेलनं परिपोषणम् ।
 जरणो जीरकोऽजाजी कारवी कृष्णजीरकः ॥ ५५ ॥
 भद्रं श्रीचन्दनं श्वेतं कर्पूरं चन्द्रनामकम् ।
 किराततिक्तं भूनिम्बं क्षौद्रं पुष्परसो मधु ॥ ५६ ॥
 प्रसन्ना मदिरा कल्या गौडी शुण्डी सुधा सुरा ।
 अवन्ती सैव धान्यान्लः काञ्चिकश्चरणालकः ॥ ५७ ॥
 उदश्विन्मथितं चैव तक्रं घोलं प्रकीर्तितम् ।
 दधिमण्डं स्मृतं मस्तु मनाग् जातन्तु मण्डकम् ॥ ५८ ॥
 प्रपोण्डरीकं श्रीपुष्पं सैन्धवं लवणोत्तमम् ।
 कापोतः सर्जिकाक्षारो यवक्षारो यवाग्रजः ॥ ५९ ॥
 मनःशिला तु वैगन्धिर्हरिता नटमण्डनम् ।
 सौवर्चलन्तु रुचकं गन्धाश्मा तु बलीयसी ॥ ६० ॥
 हरिणुर्ब्राह्मणी कौन्ती रोहिषं रक्तचित्रकम् ।
 शरणं क्रियते कर्म चण्डालैर्येन सर्वदा ॥ ६१ ॥
 तं प्राहुर्मुनयो गव्यं मधूच्छिष्टन्तु सिक्थकम् ।
 अजस्तुमा रुद्रवन्ती कलायस्तु हरेणुका ॥ ६२ ॥
 अपामार्गः शैखरिकः प्रत्यक्पुष्पी मयूरकः ।
 पुनर्णवा तु वर्षाभूः शोतघ्नी प्राह्वषायणी ॥ ६३ ॥
 वृश्चिका श्वेतनामा स्याद् रक्तनामा कठिलिका ।
 इन्द्राणी इन्द्रसुरसा निर्गुण्डी सिन्धुवारिका ॥ ६४ ॥
 शुकशिखात्मगुप्ता च कपिकच्छुर्मर्षभी ।
 इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्तिक्तालावूर्त्पात्मजा ॥ ६५ ॥
 वैकङ्कतो मधुपर्णी स्निग्धा तु स्वादुकण्टकः ।
 वञ्जुलो निचुलः शीतो जलकासश्च वेतसः ॥ ६६ ॥
 वारिजो निचुलश्चैव हिज्जलः परिकीर्तितः ।

चिञ्चा तित्तिलिका प्रोक्ता फेनिलश्चाप्यरिष्टकः ॥ ६७ ॥
 काश्मरी सर्वतोभद्रा श्रीपर्णी भद्रपर्णिका ।
 शेलुः श्लेष्मान्तकः शीत उद्दालो बहुवारकः ॥ ६८ ॥
 विल्वकाश्मर्यश्योणाकपाटलागणिकारिकाः ।
 पञ्चमूलं स्मृतं श्रेष्ठं शास्त्रमार्गानुसारिभिः ॥ ६९ ॥
 गोक्षुरो बृहती चैव शालपर्णी निदिग्धिका ।
 पञ्चमूलं भवेत् सूक्ष्मं पृश्निपर्णी समायुतम् ॥ ७० ॥
 पञ्चमूलोभयञ्चैव दशमूलमिति स्मृतम् ।
 सन्निपातभवे रोगे हितमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ७१ ॥
 मरिचस्य च शृण्णस्य पिप्पलीनां तथैव च ।
 एतत्त्रिकटुकं प्रोक्तं व्योषाख्यं त्रूषणं तथा ॥ ७२ ॥
 त्वगेलापत्रसंयोगे त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् ।
 नागक्रेसरसंयुक्तं चातुर्जातकमुच्यते ॥ ७३ ॥
 लवणैः कटुचूर्णैश्च पृथ्यते यद् व्रणं बुधैः ।
 प्रतिसारं ततः प्रोक्तं वाजिशस्त्रविशारदैः ॥ ७४ ॥
 अनुवासनसंज्ञी तु निरूहास्थापने स्मृतौ ।
 वस्त्रिसंज्ञा समुद्दिष्टा एषामेव तपोधनैः ॥ ७५ ॥
 घ्राणमार्गेण यञ्जूर्णं प्रैर्यते मुखवायुना ।
 प्रधमनं तद्विख्यातं धावनं चालनं स्मृतम् ॥ ७६ ॥
 काष्ठाहारिकगोपालमालाकारवनेचरान् ।
 दृष्ट्वा नामानि जानीयात् भेषजानां विचक्षणः ॥ ७७ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 निघण्टौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

ऋतुविभागविवरणम् ।

स्वस्थवृक्षं प्रवक्ष्यामि तुरगाणां समासतः ।

शालिहोत्रादिभिः प्रोक्तं यथा सम्यक् प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

श्रावणश्च तथा भाद्रो हौ मासौ ऋतुवर्षकौ ।

आश्विनः कार्तिकश्चैव शरत्कालः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

मार्गपौषौ तु हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनी ।

वसन्तश्चैत्रवैशाखी शोभो ज्यैष्ठः शुचिस्तथा ॥ ३ ॥

शालानिर्माणविवरणम् ।

प्रागुदकप्रणते देशे स्थाणुकण्टकवर्जिते ।

चिताचैत्यविहीने च शालां कुर्वीत पण्डितः ॥ ४ ॥

शुष्का शाला च कर्त्तव्या इष्टकाष्ठेन संस्थिता ।

शिरसि स्थापयेद्देवं रैवन्तं पूजयेत् सदा ॥ ५ ॥

कार्या त्रिहस्तविस्तीर्णा लाक्षायाः पिण्डिका शुभा ।

शालाप्रमाणदीर्घा च तस्यां वासं प्रदापयेत् ॥ ६ ॥

हौ हस्तावुच्छ्रयेणास्या मानश्चैव प्रकीर्तितम् ।

तर्ज्जुकं काष्ठदण्डांश्च प्रान्तेऽस्याः स्थापयेद्दहिः ॥ ७ ॥

अग्निकार्यं ततः कृत्वा द्विजान् संभोज्य चादरात् ।

कृत्वा पुण्याहवादित्रं ततो वाहान् निवेशयेत् ॥ ८ ॥

सम्मुखान् स्थापयेत्तांस्तु पुष्पगन्धादिपूजितान् ।

रज्जुद्वयनिवद्धांश्च पश्चात्पाशेन संयुतान् ॥ ९ ॥

लौहश्च निम्बपत्राणि गुग्गुलुं सर्षपान् घृतम् ।

चैलबद्धं वचां हिङ्गुं बध्नीयाद्वाजिपुच्छके ॥ १० ॥

समीपे वानरः कार्यः वाजिनां नित्यतो वह्निः ।

सवत्सो वृषभश्चैव शुक्लो यश्चापि कुङ्करः ॥ ११ ॥
 शालापार्श्वे कुटीं कृत्वा स्थापयेत् सर्वभेषजम् ।
 घृततैलानि पक्वानि पुटकां नालिकां तथा ॥ १२ ॥
 आलोकं कारयेत्पान्नः प्रदीपैः सर्वरात्रिकैः ।
 जाग्रतः शुष्कास्तत्र तिष्ठेयुः शस्त्रपाणयः ॥ १३ ॥
 चालुकापूरितं कार्यं संस्कृतं चत्वरं तथा ।
 लुठनाय च वाहानां भवेच्च क्रमणाय च ॥ १४ ॥

वर्षापोषणविवरणम् ।

शालाप्रविष्टमात्रस्य नैव कार्यः क्रियाक्रमः ।
 दशाहं द्वादशाहं वा पथ्या तैलेन संयुता ॥ १५ ॥
 ततो निम्बः प्रदातव्यो वर्षादौ पलपञ्चकः ।
 मत्ताहमुत्तमाश्वाय शुण्ठीदीप्यकसैन्धवैः ॥ १६ ॥
 स्वस्थं बुद्ध्वा ततो वाहं दद्याद् गोमूत्रसंयुतम् ।
 हरीतकीपलं चैव कटुतैलेन मूर्च्छितम् ॥ १७ ॥
 आदौ पञ्च प्रदातव्या हरीतक्यो विजानता ।
 पञ्च पञ्च च वृक्षायां यावत् पूर्णं शतं भवेत् ॥ १८ ॥
 उत्तमाश्वे शतं प्रोक्तमशीतिर्मध्यमे तथा ।
 अधमे विहिता षष्ठिरश्वज्ञानपरायणैः ॥ १९ ॥
 मासे भाद्रपदे विद्वान् समानीय हरीतकीम् ।
 दशाहं केवलं तस्मै घासं दद्यात् समाहितः ॥ २० ॥
 कल्पोक्तेन विधानेन यथामात्रं यथाबलम् ।
 रसोनं गुग्गुलुञ्चापि प्रदद्याद्वाजिनां ततः ॥ २१ ॥
 प्रथमे प्रहरे चैव वर्षाकाले न चारयेत् ।
 द्वितीये च तृतीये च चारयेन्न तु पश्चिमे ॥ २२ ॥
 प्रभाते निस्तुषा देया यवा मध्यदिने तथा ।
 सम्याकाले भिषक् प्राज्ञः पुनश्चैवावचारयेत् ॥ २३ ॥

दुर्दिने नोदकं देयं वाहेहा टापयेद् बुधः ।

दिवसस्याष्टमे भागे भोजनस्य भवेद्धिधिः ॥ १४ ॥

तस्य पानं प्रयोगञ्च पूर्वाह्ने चैव कीर्तितम् ।

पिप्पली शृङ्गवेरेण चित्रकेण समाह्वया ॥ २५ ॥

लवणैः सुरया सार्द्धं प्रतिपानं घनागमे ।

शरत्पोषणविवरणम् ।

शरदाद्याश्विने मासेऽश्वान्नी कारयेत् अमम् ।

ग्रामैर्यवैश्च तत्राक्षः कैवलैः पोषयेद्भिषक् ॥ २६ ॥

ताडगं शस्यते तोयं पाने चैवावगाहने ।

मन्तमस्य तु कर्त्तव्यं क्षीरवस्तिक्रमो बुधैः ॥ २७ ॥

निस्तुषा जलकुम्भस्था यवास्तस्मै हिता स्मृताः ।

श्रीदकाश्च यवाः प्रोक्ता रक्तपित्तप्रशामकाः ॥ २८ ॥

काश्मर्याश्च फलं मुस्तं वदरं कटुरोहिणी ।

ऊशीरं शर्कराञ्चैव प्रियङ्गु मधुके तथा ॥ २९ ॥

पटोलं त्रायमाणाञ्च एकादश भवेन्मधु ।

एकादशाङ्गमित्युक्तं सीधुना संप्रदापयेत् ॥ ३० ॥

अत्यन्तश्वासतप्तानां प्रतिपानन्तु वाजिनाम् ।

चन्दनीशीरकल्कैश्च सान्द्रं वा लेपनं हितम् ॥ ३१ ॥

सुशीतञ्च प्रवातञ्च स्थानं तेषां प्रकीर्तितम् ।

व्यजनं तालवृत्तैश्च विस्तीर्णंऽश्वसि मज्जनम् ॥ ३२ ॥

देयं शरदि चाश्वाय भोजनं क्षीरशालिभिः ।

मांसयूषैरनस्त्रैर्वा किञ्चित् सैन्धवसंयुतैः ॥ ३३ ॥

शुक्लपत्रे द्वितीयायां शालां संवेष्ट्य रक्षयेत् ।

आदित्यरश्मिनो वाहान् कटैर्वस्त्रादिभिस्तथा ॥ ३४ ॥

अस्तं गते दिनकरे कटादीन्यपकर्षयेत् ।

प्रवातार्थं पुनर्दद्याद् यावत् सन्ध्या न जायते ॥ ३५ ॥

धूपो निम्बदलैः कार्थ्यो घृतगुग्गुलुसंयुतैः ।
 शालाप्रवेशविहितान् रक्षकांश्चैव दापयेत् ॥ ३६ ॥
 घर्षणं भ्रामणश्चैव तथाचैवापवर्त्तनम् ।
 निशाशेषे प्रकर्त्तव्यं यावद्दूरे दिवाकरः ॥ ३७ ॥
 एवं प्रतिदिनं कुर्यात् सप्तरात्रमतन्द्रितः ।
 कारयेद् ब्राह्मणैश्चैव शान्तिस्वस्त्ययनानि च ॥ ३८ ॥
 सप्तरात्रे व्यतिक्रान्ते क्षौरितान् स्नापयेत्तथा ।
 अर्चितान् कुसुमैर्गन्धैस्ततो नीराजयेद् बुधः ॥ ३९ ॥
 ततो वादित्वा निर्घोषैः कर्त्तव्या ग्रामतो वह्निः ।
 दिशं पूर्वां तथोदीचीमश्वान् विप्रैरधिष्ठिताः ॥ ४० ॥
 अग्रे वदेद्द्विजो मन्त्रं वेदोद्दिष्टं यथाक्रमम् ।
 अर्घशान्तिं तुरङ्गाणां ततो हृष्टः प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥
 प्रदक्षिणं ततो वङ्गेः कारयित्वा द्विजोत्तमैः ।
 पुरमश्वान् प्रवेश्यास्ते तोरणान्तरनिर्गताः ॥ ४२ ॥
 अग्रमाख्याग्रगन्धैश्च भोजनाद्यैस्तथैव च ।
 गृहागतेषु वाहेषु अर्घं दद्याद्भराधिपः ॥ ४३ ॥
 अर्चितेषु ततो वैद्यः कर्णे जापमिदं जपेत् ।
 कीर्त्तितं मुनिभिः पूर्वं वाजिशस्त्रार्थवेदिभिः ॥ ४४ ॥
 पूर्वं देवमयीं त्वं हि स्मर जातिं ह्योत्तम ! ।
 सर्वे जनास्त्वया रक्ष्या रणे भर्तुश्च वाहक ॥ ४५ ॥
 कर्णजार्पं भिषक् कृत्वा यथास्थानं ततो हयान् ।
 स्थापयेत् कृतमङ्गल्यान् हृष्टान् कल्पषवर्जितान् ॥ ४६ ॥
 नार्चयेज्जलजैः पुष्पैर्वाहनार्घविधिं प्रति ।
 सौगन्धिकविशेषेण तेषां दद्याच्च सर्वदा ॥ ४७ ॥
 दत्त्वा तिक्तं घृतं पूर्वं कार्तिके वेधयेच्छिराम् ।
 श्रीरसीं पौत्रिकीं मन्यां कुर्वाजां कौष्ठजां ततः ॥ ४८ ॥

आसां मध्ये यथायोगमेकां हे वापि वेधयेत् ।
 प्रतिपानं ततो दद्यादुत्तमं वक्ष्यमाणकम् ॥ ४९ ॥
 मञ्जिष्ठा मधुकं पुष्पं प्रियङ्गुस्त्रायमाणकम् ।
 एला च पिप्पली चैव तथा कटुकरोहिणी ॥ ५० ॥
 तुल्यांशान् दापयेदेतान् सौधुना मधुसंयुतान् ।
 कल्कं कृत्वा तुरङ्गाय स्राविताय विचक्षणः ॥ ५१ ॥
 पञ्चतित्तकषायेण द्वितीयञ्च प्रदापयेत् ।
 पिप्पली त्रायमाणाभ्यां प्रतिपानं सगोक्षुरम् ॥ ५२ ॥
 हेमन्ते अश्वपोषणविधानम् ।
 सुखेन वस्तिना चैव स्नेहं दद्याद्विभागमे ।
 विद्धा तालुशिरां प्राञ्जः प्रतिपानञ्च वाजिनाम् ॥ ५३ ॥
 यश्चर्तुं प्रतिपानेन ततो माषान् प्रदापयेत् ।
 पुष्पितान् रोगनिर्मुक्तान् कृमिभिश्चाप्यभक्षितान् ॥ ५४ ॥
 पुष्पिता रक्तजनना फलिता मांसवर्द्धनाः ।
 माषा भवन्ति दोषाय विना पुष्पैः फलैस्तथा ॥ ५५ ॥
 दिनत्रयं न दातव्यं प्रारम्भे तूदकं बुधैः ।
 एकान्तरं ततो देयं यावत् पूर्णं दिनाष्टकम् ॥ ५६ ॥
 ततः प्रतिदिनं देयमेकवारं यथेच्छया ।
 सकले चैव हेमन्ते विधिरेष जलं प्रति ॥ ५७ ॥
 पुष्पिते वारुणी शस्ता लवणेन समन्विता ।
 सतैललवणा चापि फलिते संप्रकीर्त्तिता ॥ ५८ ॥
 सुराया न प्रयोगस्तु सायाङ्गे परिकीर्त्तितः ।
 यामिनीप्रहरेऽतीते माषान् दद्यात् सकाञ्जिकान् ॥ ५९ ॥
 ढतीये सप्तकेऽतीते ततोऽश्वान् दापयेद् बुधः ।
 एकान्तरं यथा तेषां श्रमः स्वेदश्च जायते ॥ ६० ॥
 यावन्नो पाकमायाति तावन्माषा हिताः स्मृताः ।

कठिना नैव दातव्या सर्वदैव विजानता ॥ ६१ ॥
 माषभक्षस्य वाहस्य यदि स्यात् शूलसम्भवः ।
 शूलाध्यायोपदिष्टान्तु तदा कुर्याद्भिषक् क्रियाम् ॥ ६२ ॥
 अप्राप्तौ पर्णमाषाणां दद्यान्माषेण भोजनम् ।
 सतैललवणैर्माषैः शालिभिर्यवषष्टिकैः ॥ ६३ ॥
 धान्यकं चित्रकं व्योषं लोध्रं लवणमेव च ।
 एतानि सुरया सार्द्धं हेमन्ते प्रतिपाययेत् ॥ ६४ ॥

शिशिरपोषणविधिः ।

शिशिरप्रतिपानं तु चण्डं दद्याद्द्विचक्षणः ।
 ततश्चाग्निबलं दृष्ट्वा तुरङ्गं भोजयेद् बुधः ॥ ६५ ॥
 उत्स्विन्नैः फलमाषेस्तु युक्तैः काष्ठिकमात्रया ।
 तिलतैलसमेतैश्च तथा लवणसंयुतैः ॥ ६६ ॥
 शिशिरे तोयपानञ्च दद्यादेकं विचक्षणः ।
 एवं श्लेष्मा तुरङ्गाणां प्रकोपं नैव गच्छति ॥ ६७ ॥
 भोजनं वाहनं चैव कुर्यादेकान्तरं भिषक् ।
 अनुपाने सुरा तेषां भोजितानां प्रकीर्त्तिता ॥ ६८ ॥
 सव्योषेण विडङ्गेन द्विङ्गुना वचया सह ।
 यत्रानौ शतपुण्याभ्यां पञ्चभिर्लवणैस्तथा ॥ ६९ ॥
 वारुण्याः प्रतिपानन्तु शिशिरे संप्रदापयेत् ।
 कायाग्निदीपनं तच्च श्लेष्मदोषनिवारणम् ॥ ७० ॥
 शिशिरे गर्भिता देया यवाः स्वस्थाय वाजिने ।
 सप्ताहं द्विगुणञ्चैव वाहयेन्नैव बुद्धिमान् ॥ ७१ ॥
 आरम्भात् पञ्चरात्रन्तु पयःपानं न दापयेत् ।
 ततः सकृत् प्रदातव्यं यावद्द्वौ सप्तकौ गतौ ॥ ७२ ॥
 तृतीये सप्तमे चैव वाहयेच्च तुरङ्गमम् ।
 चतुर्थे च यथा शक्यं वाहयेच्च विचक्षणः ॥ ७३ ॥

पुष्पिताः फलिताश्चैव प्रशस्ताः सर्वदैव तु ।

ये च पुष्टिप्रदा हृद्या बलारोग्यविवर्धनाः ॥ ७४ ॥

वसन्तपोषणविधिः ।

वसन्ते वाहयेदश्वान् भोजनं नैव दापयेत् ।

खादने भक्षितास्तेषां संस्कृताः केवला यवाः ॥ ७५ ॥

त्रहाद् इत्रहाच्च दातव्यं लवणञ्च सुमात्रया ।

घासः शुष्को जलं वारमेकं द्वौ वा हितं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

व्योषलोध्रविडङ्गैश्च सक्षीद्रेः सैन्धवान्वितैः ।

प्रतिपानं हितं दृष्टं वसन्ते मदिरायुतम् ॥ ७७ ॥

हेमन्ते शिशिरे विद्वान् वसन्ते च तुरङ्गमान् ।

आतपे दिवसं सर्वं स्थापयेद्वाजिशस्त्रवित् ॥ ७८ ॥

स्थानं छायान्वितं शस्तं ग्रीष्मे व्यायामवर्जिते ।

त्रिःस्नानपानं घासञ्च सान्द्रो यश्चापि वारिजः ॥ ७९ ॥

अतीव घर्मतप्तानां शारदं कारयेद्विधिम् ।

क्षीरयुक्तं शतावर्या मूलं पाने च शस्यते ॥ ८० ॥

दुर्बलानां प्रदातव्यं सार्द्धं माषरसेन तु ।

यवभक्तं युतं दध्ना वाहानां स्वल्पसैन्धवम् ॥ ८१ ॥

कुक्कुटौमूलकल्कश्च क्षीरेणालोडितस्तथा ।

ग्रीष्मकाले हितो दृष्टो वाजिनां हितकाङ्क्षिभिः ॥ ८२ ॥

प्रियङ्गुः पिप्पलीलोध्रमधुकं विश्वभेषजम् ।

निदाघे प्रतिपानं स्यात् सीधुना मधुना युतम् ॥ ८३ ॥

सर्वर्तुपोषणविधिः ।

देशे देशे च घासानां नामान्यत्वं प्रजायते ।

तेन घासा मया नैव नामभिः परिकीर्त्तिताः ॥ ८४ ॥

श्रीदकं दापयेद्वासं ग्रीष्मे शरदि वाजिनाम् ।

कालेऽन्यस्मिन् हितो दृष्टः शुष्को रोगविवर्जितः ॥ ८५ ॥

सर्वेषु चैव रोगेषु तथा कालेषु षट्स्रपि ।
 दूर्वा नित्यं हिता दृष्टा वाजिपुष्टिविवर्द्धिनी ॥ ८६ ॥
 मात्रावत् संप्रयुञ्जीत स्वस्थानां सर्वकालिकम् ।
 तैलं कालानुरूपोक्तं पञ्चषड्दिवसान्तरे ॥ ८७ ॥
 व्योषजीङ्कसिन्धूत्यविडसौवर्चलानलैः ।
 हरिद्राद्वयपूतीकवीजशिशुकुठेरकैः ॥ ८८ ॥
 गोमूत्रपिष्टैः पिण्डन्तु प्रातर्वाजिषु दापयेत् ।
 मन्दाग्निदीपनं श्रेष्ठं बलतेजोविवर्द्धनम् ॥ ८९ ॥
 अथवा सुरया साङ्गं प्रतिपानेषु योजितः ।
 कायाग्निदीपनश्चाशु पिण्डोऽयं मुनिभाषितः ॥ ९० ॥
 सर्वदैव तुरङ्गाणां हितमेतत् प्रकीर्तितम् ।
 कण्डूयनं सुखं चाग्रं तेषां प्रोक्तं मनोषिभिः ॥ ९१ ॥
 संग्रामादिषु कालेषु तं स्मरन्ति ह्योत्तमाः ।
 तस्मात् कार्यं प्रयत्नेन तेषां कण्डूयनं बुधैः ॥ ९२ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽष्टाशस्त्रे सर्वर्तूपचारि
 त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

चारदाहविधानम् ।

एकस्य वा द्वयोर्वापि समस्तानामथापि वा ।
 रश्मापामार्गभानूनां स्रुही लाङ्गलि पुष्करान् ॥ १ ॥
 दग्ध्वा भस्म समादाय गोमूत्रेण तु गालयेत् ।
 गालितानन्तरं तच्च ताम्रपात्रे निधापयेत् ॥ २ ॥
 सृष्ट्वाग्निना पचेन्मूत्रं ततो दर्वीविघट्टितम् ।
 भेषजानि क्षिपेत्तस्मिन् दर्वीलेपत्वमागते ॥ ३ ॥

हिङ्गु टङ्गं यवक्षारं पञ्चैव लवणानि च ।
 क्षिप्तानि पचेत्तावद् यावत्क्षूर्णतां गतम् ॥ ४ ॥
 तक्षूर्णन्तु भवेत् सिद्धं स्थापयेत् शीतलं कृतम् ।
 वातजे कफजे कुष्ठे चार्बुदे मांसकीलके ॥ ५ ॥
 लोमान्युत्पाद्य दातव्यः क्षार एष शलाकया ॥ ६ ॥

लौहदाहविधानम् ।

वायौ प्रकुपितेऽत्यर्थमग्निं दद्याद्विचक्षणः ।
 यथाशास्त्रं भिषक् प्राज्ञो लौहकैर्मदसापि वा ॥ ७ ॥
 शलाकाभिश्च फालैश्च तप्तैर्लोहेन कीर्तितः ।
 वर्त्तिभिर्विन्दुदाहेन मेदसा समुदाहृतः ॥ ८ ॥
 अग्रकायं दहेत्लोहैः पश्चात् कायन्तु मेदसा ।
 एवं यः कुरुते सम्यक् तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ ९ ॥
 दहेत् प्रथमया लोम चर्म चैव द्वितीयया ।
 मांसं तृतीयया सम्यग् दहेद्विद्ध्वा शलाकया ॥ १० ॥
 ममांसलेषु देशेषु फालैर्विद्ध्वा प्रदापयेत् ।
 रेखाभिर्विन्दुभिश्चैव तथा काकपदादिभिः ॥ ११ ॥
 दहेद्देशं सम्यगेवं वाजिनोऽङ्गं शलाकया ।
 दग्ध्वा मधुककल्केन घृतमिश्रेण लेपयेत् ॥ १२ ॥

भेदोदाहविधानम् ।

पुरलात्तामधूच्छिष्टसर्जश्रीवेष्टकैः समैः ।
 मनःशिला गुडोपेतैर्वर्त्तिमष्टाङ्गुलायताम् ॥ १३ ॥
 कृत्वाष्टाङ्गुलविस्तारां शूकरादिवसान्विताम् ।
 घृतप्लुतेन संवेद्य कर्पटेन विनिःक्षिपेत् ॥ १४ ॥
 अधोभागे दृढं विद्ध्वा सुशिरं वेणुदण्डकैः ।
 प्रक्षिप्य छिद्रं कुर्वीत अधोभागे विचक्षणः ॥ १५ ॥
 कोलास्थिमात्रदण्डस्य द्विहस्तस्य विचक्षणः ।

यस्मिन् स्थाने स्थिता वर्तिस्तत्र दण्डं प्रवर्त्तयेत् ॥ १६ ॥
 अधोभागे घृताक्तेनालक्तकेनाङ्गुलाष्टकम् ।
 यस्मिन् कृत्वा ततो वङ्गं भृशं प्रज्वालयेद्बुधः ॥ १७ ॥
 तुरङ्गाङ्गे ततो दण्डं विद्वानुपरि धारयेत् ।
 द्रुताया वङ्गितापेन वर्त्याश्चिद्रान्तरे गतेः ॥ १८ ॥
 विन्दुभिर्दाहयेदश्वं सुवद्धं पातितं क्षितौ ।
 पश्चात् कायसमुत्थेन वायुनैवं विमुच्यते ॥ १९ ॥

दाहलक्षणम् ।

विल्वमध्यसवर्णन्तु पक्कतालनिभं तथा ।
 सम्यग्दग्धं विजानीयाद् विपरीतं विवर्जयेत् ॥ २० ॥

शस्त्रविधानम् ।

अर्द्धाङ्गुलन्तु विस्तीर्णं कुर्याच्छस्त्रं षडङ्गुलम् ।
 नाम्ना ब्रीहिमुखं सम्यक् तथा चात्पलपत्रकम् ॥ २१ ॥
 त्र्यङ्गुलं वृद्धिपत्रञ्च क्षुराकारं प्रकीर्त्तितम् ।
 पक्कशोथादिषु प्राञ्जः पाटनं तेन कारयेत् ॥ २२ ॥
 शस्त्रेणोत्पलपत्रेण ब्रीहिपत्रेण वा भिषक् ।
 शिरावेधविधिं सम्यग् दृष्टकर्मा प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे क्षाराग्निशस्त्र-
 विधाने चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

शिरावेध कालनिरूपणम् ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि शिरावेधविनिश्चयम् ।
 प्रधानं वाजिनामेतद्भेषजं गदितं बुधैः ॥ १ ॥

औषधैर्नैव सिध्यन्ति रोगा रक्तसमुद्भवाः ।
 यतो वेधेन सिध्यन्ति स्निग्धस्निग्धस्य वाजिनः ॥ २ ॥
 देहस्य रुधिरं मूलं तदालम्बं हि जीवितम् ।
 तस्मान्न वाहयेच्छुद्धं दुष्टञ्चैव न धारयेत् ॥ ३ ॥
 शरत्काले निदाघे च विकाले वेधयेच्छिराम् ।
 अर्दुर्दिने च वर्षासु शीते मध्यन्दिने तथा ॥ ४ ॥
 शिशिरे च वसन्ते च स्वेदं कृत्वा विचक्षणः ।
 शीतकाले च मध्याह्ने शिरावेधं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

शोणितविवरणम् ।

शब्दवत् फेनिलं यच्च तद्रक्तं वातजं स्मृतम् ।
 श्यावञ्च नीलकं वापि ज्ञेयं पित्तेन दूषितम् ॥ ६ ॥
 सान्द्रञ्च पिच्छिलं पाण्डु श्लैष्मिकं परिकीर्तितम् ।
 द्विरूपं हन्वसम्भूतं सङ्कीर्णं सन्निपातजम् ॥ ७ ॥
 शशशोणितसङ्काशं यच्च सिन्दूरसन्निभम् ।
 तद्विशुद्धं भवेद्रक्तं शिरावेधविनिर्गतम् ॥ ८ ॥
 शरावशकलं दत्त्वा शस्त्रवेधमुखे बुधः ।
 कर्पटेन दृढं बद्ध्वा रुधिरं सन्निवारयेत् ॥ ९ ॥
 अतिवेगात् प्रवृत्तन्तु यद्येवं नैव तिष्ठति ।
 शिरावेधं तदा प्रज्ञो माषकल्केन लेपयेत् ॥ १० ॥
 महावेगं यदा रक्तमनेनापि न तिष्ठति ।
 ततः शस्त्रमुखं प्राज्ञो दहेल्लोहशलाकया ॥ ११ ॥

वेधस्थानकथनम् ।

वामे वा दक्षिणे वापि देशे चैवाङ्गुलान्तरे ।
 अग्रे बलित्रयं त्यक्त्वा वेधव्या तालुकी शिरा ॥ १२ ॥
 शङ्खजा चैव विस्त्राव्या अपाङ्गाद् द्वाङ्गुलान्तरे ।
 अशुपातगता चैव त्र्यङ्गुले चक्षुषोरधः ॥ १३ ॥

कण्ठे बद्धा दृढं प्राज्ञः शिरां विस्त्रावयेत्ततः ।
 नासिकाया अधस्ताच्च दृङ्गुले प्रोथजां शिराम् ॥ १४ ॥
 ऊर्ध्वन्तु दृङ्गुले चापि बाहुसन्धेर्विचक्षणः ।
 उरसञ्चाधरे भागे तथा वै चतुरङ्गुले ॥ १५ ॥
 ग्रीवामुत्क्षिप्य दूरन्तु उरो निःसार्थ्य वाजिनः ।
 श्रीरमीं वेधयेद्द्वैद्यः शिरां संलक्ष्य तत्त्वतः ॥ १६ ॥
 किण्णजाभ्यन्तरे विद्वान् पारकीमुपलक्षयेत् ।
 किण्णधो दृङ्गुले तान्तु त्र्यङ्गुले चापि वेधयेत् ॥ १७ ॥
 ऊर्ध्वञ्चैवाक्षिकूटात्तु लालाटीं वेधयेत् शिराम् ।
 स्तुवजा चैव वेध्या स्याद् दृङ्गुले स्तुवसन्धितः ॥ १८ ॥
 दृङ्गुले कर्णमूलात्तु कर्णजान्ताडयेद्भिषक् ।
 वेधव्या चैव मन्या तु ग्रीवामध्यगता शिरा ॥ १९ ॥
 ऊर्ध्वं कूर्चात्तु वेधव्या ईषिका चतुरङ्गुले ।
 अङ्गुलैः षट्प्रमाणैस्तु अधस्ताच्चैव जानुनः ॥ २० ॥
 षडङ्गुलं खुरादूर्ध्वं कूर्चजां वेधयेच्छिराम् ।
 रोमान्त्या चैव वेधव्या दृङ्गुले खुरसन्धितः ॥ २१ ॥
 मण्डूकाग्रञ्च संशोध्य तलजां वेधयेद् बुधः ।
 कक्षजा चैव वेधव्या कक्षातश्चतुरङ्गुले ॥ २२ ॥
 वामदक्षिणभागे तु नाभिजाष्टाङ्गुलान्तरे ।
 कोष्ठजां ताडयेद्द्वैद्यः शिरां शस्त्रेण बुद्धिमान् ॥ २३ ॥
 पृष्ठजामासनाभ्यासे दृङ्गुलेनैव पार्श्वयोः ।
 बद्धा कर्पटकं यत्र शिरां विस्त्रावयेद् बुधः ॥ २४ ॥
 ऊरुसन्धेरधस्तात्तु विसृज्य चतुरङ्गुले ।
 ऊरुकाभ्यन्तरे चैव अपाण्डीं वेधयेच्छिराम् ॥ २५ ॥
 ऊर्ध्वसन्धेरधश्चैव स्थीरिकीं चतुरङ्गुले ।
 दृङ्गुले पुच्छमूलाच्च पुच्छजां ताडयेच्छिराम् ॥ २६ ॥

पश्चात्कायसमुत्थानां शिराणां जानुनोरधः ।
 तलजानाञ्च कर्षण्यं प्राक् प्रयुक्तञ्च वेधयेत् ॥ २७ ॥
 सर्वेषां शोणितप्रस्थं गालयेच्छास्त्रकोविदः ।
 गुरुलाघवदोषेण बहु चैवाल्पमेव च ॥ २८ ॥
 वामाङ्गुष्ठेन संपीड्य सिरां शस्त्रेण ताडयेत् ।
 श्रान्तं भीतं कृशं वृद्धं बालञ्चैव न वेधयेत् ॥ २९ ॥
 प्रदेशे लोमशे नित्यं लोमान्युत्पाद्य वेधयेत् ।
 प्रमाणार्थञ्च पात्रेण रक्तं गृह्णाति बुद्धिमान् ॥ ३० ॥
 तालुशङ्खहनुप्रोथललाटस्तनकर्षजाः ।
 कृत्वा यवसमं शस्त्रं शिरा विस्रावयेद् बुधः ॥ ३१ ॥
 उरोजां पोत्रिकाञ्चैव कूर्चजां कोष्ठजां तथा ।
 अर्द्धाङ्गुलेन शस्त्रेण तलजाञ्चैव ताडयेत् ॥ ३२ ॥
 श्रीपाण्ड्रीं स्थौरिकीं वापि कक्षकोष्ठभवां तथा ।
 पूर्वोक्तेनैव शस्त्रेण पुच्छजामपि ताडयेत् ॥ ३३ ॥
 अङ्गुलं प्रक्षिपेच्छस्त्रं पृष्ठजायां तथैव च ।
 बाहुजायाञ्च मन्यायां वेधकाले विचक्षणः ॥ ३४ ॥
 सूत्रकेण च संवेद्य मुखं शस्त्रस्य बुद्धिमान् ।
 यथा प्रमाणं संस्थाप्य ततो विस्रावयेत् शिराम् ॥ ३५ ॥
 असम्यक् ताडिते भीते वाहे वा विषमस्थिते ।
 क्षीणासृक् शिशिरे तोयादुत्थिते च विशेषतः ॥ ३६ ॥
 न वहन्ति सिरा ह्येवं तस्मात् कार्यां प्रतिक्रिया ।
 ह्यस्य वमनं नास्ति तथा चैव विरेचनम् ।
 वमनं रेचनं नास्ति रक्तस्रावणमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे

शिरावेधे पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथ षोडशोऽध्यायः ।

नेत्रनिर्माणविवरणम् ।

अथानुवासनविधिस्तथैवास्थापनस्य च ।
प्रवक्ष्यामि यथायोगं शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥ १ ॥
काष्ठैर्दण्डैरयोभिश्च शृङ्गवंशनलादिभिः ।
द्वादशाङ्गुलदीर्घन्तु परिणाहे षडङ्गुलम् ॥ २ ॥
कोलास्थिमात्रच्छिद्रन्तु कुर्व्यान्नेत्रं विचक्षणः ।
मूलादनुक्रमश्लक्ष्णमसृणन्तु विशेषतः ॥ ३ ॥
त्यक्त्वाङ्गुलानि चत्वारि कर्णिकान्तस्य कारयेत् ।
पुटकस्य प्रथम्याय मूले हे चापि कर्णिके ॥ ४ ॥
अनेनास्थापनं कुर्व्यादनुवासनमेव च ।
यथायोगं भिषक् प्राज्ञः सर्वरोगोपशान्तये ॥ ५ ॥

अनुवासनविवरणम् ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ।
भोजयित्वा हयं प्राज्ञो रसकस्त्रेहभोजनैः ॥ ६ ॥
भोजितं भोजनोक्तेन दिनान्ते चानुवासयेत् ।
निरूहयेदनाहारमपराह्णं विचक्षणः ॥ ७ ॥
त्रिभिर्वारैः प्रदातव्यो निरूहः शास्त्रकोविदैः ।
ईषत्तीक्ष्णः प्रयोक्तव्यः प्रथमं पुटकोविदैः ॥ ८ ॥
द्वितीयश्च तृतीयश्च तीक्ष्णौ चैव प्रकीर्त्तितौ ।
एवमास्थापिते वाहे निवृत्ते च निरूहणे ॥ ९ ॥
क्षीरस्य पुटकं पञ्चादेकं दद्याद्विचक्षणः ।
ततो विस्त्रावयेद्वैद्यस्त्वेकवारं तुरङ्गमम् ॥ १० ॥
विस्त्रावितं स्त्रापयित्वा पायसैर्भोजयेत्ततः ।
स्त्रेहानुवासनं तस्य विक्काले च प्रदापयेत् ॥ ११ ॥

स्तोका दूर्वा क्षुधार्त्ताय तस्यां रात्री हिता स्मृता ।
 चरहं वापि हितं दृष्टं भोजनं सानुवासनम् ॥ १२ ॥
 यथाकालं यथाव्याधि भोजनं संप्रदापयेत् ।
 एवं रोगाः प्रशाम्यन्ति वाजिनां देहसम्भवाः ॥ १३ ॥

निरूहविवरणम् ।

पञ्चमूलद्वयं दन्ती कुष्ठञ्चैव शतावरौ ।
 अनन्ता त्रिवृता श्यामा बले हे च पुनर्णवा ॥ १४ ॥
 गुडूची गोक्षुरं विम्बो कुक्कुटैरण्डवासकाः ।
 यवाः कुलत्या वदरं तथारग्वर्धशिशुकम् ॥ १५ ॥
 एतान्यादाय सर्वाणि यथालब्धानि वा पुनः ।
 मूलानि सलिले क्षिप्त्वा काथयित्वा विचक्षणः ॥ १६ ॥
 पादशेषं कषायेण निरूहं संप्रदापयेत् ।
 द्विपञ्चमूलीनिःकाथः सः प्रधानो निरूहणे ॥ १७ ॥
 कषायं रसकञ्चैव गोमूत्रं कार्त्तिकं तथा ।
 कल्कञ्चैव प्रदातव्यं भेषजैर्वच्यमाणकैः ॥ १८ ॥
 त्रिफला मधुकं रास्ना मदनं गौरसर्षपाः ।
 एला त्रिकटुकं कुष्ठं शतपुष्पा हरणुकम् ॥ १९ ॥
 हरिद्रे हे समञ्जिष्ठे तथा लवणपञ्चकम् ।
 यथाप्राप्तं समस्तं वा वर्गमेतं प्रदापयेत् ॥ २० ॥
 कफोल्बणेषु रोगेषु तथा वातोल्बणेषु च ।
 निरूहः संप्रदातव्यस्तुरङ्गस्य विपश्चिता ॥ २१ ॥
 कषाये कल्कमालोद्य निरूहं संप्रदापयेत् ।
 नैवात्यन्ततनुं धीमान् नैवात्यन्तघनं तथा ॥ २२ ॥
 पित्ते निरूहः कर्त्तव्यः क्षीरेणैश्चुरसेन वा ।
 सिन्धुसर्पिःसमायुक्तः शर्करा मधुसंयुतः ॥ २३ ॥
 चतुर्वर्षस्य वाहस्य गुदे नेत्रं प्रवेशयेत् ।

चतुरङ्गुलं भिषक् प्राज्ञो वाजिशस्त्रविशारदः ॥ २४ ॥
 हे च द्विवर्षजातस्य त्रिवर्षं चाङ्गुलत्रयम् ।
 षाण्मासिके वर्षजाते एकमेवाङ्गुलं भवेत् ॥ २५ ॥
 उदङ्मुखं प्राङ्मुखं वा कृत्वा वाहं सुयन्त्रितम् ।
 घृताभ्यक्तौ न हस्तेन पुरीषमपकर्षयेत् ॥ २६ ॥
 स्वयं कृत्वा पुरीषे वा दद्याच्चैवानुवासनम् ।
 निरूहश्च प्रदातव्यः पुच्छं नीत्वा प्रदक्षिणम् ॥ २७ ॥
 दद्दुशोफकफश्वासग्रहणीकुष्ठरोगिणाम् ।
 तृषार्त्तस्य च गर्भिण्याः कृशवृद्धस्य वाजिनः ॥ २८ ॥
 क्षुत्तृष्णाश्रमयुक्तानां मद्यं पीतवतामपि ।
 वर्जितो वाजिनां वस्तिस्तथाश्चे व्याधिपीडिते ॥ २९ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 निरूहानुवासने षोडशोऽध्यायः ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

नस्यविधिः ।

जङ्घं वक्त्रस्य दोषोऽस्ति तथा चाधोमुखस्य च ।
 तस्मान्नस्यं तुरङ्गस्य ईषदुन्नाम्य दापयेत् ॥ १ ॥
 वामाङ्गुष्ठेन संपीड्य एकं नासापुटं बुधः ।
 दद्यान्नस्यं तुरङ्गस्य लघुहस्तः सुमात्रया ॥ २ ॥
 नाद्यातिश्लक्ष्णया वैद्यो यथा नोद्दिजते हयः ।
 अन्यथा जायते शीघ्रं नाडीव्यापत् सुदारुणा ॥ ३ ॥
 तीक्ष्णैर्वा पूरयेन्नाद्या देयं नस्यं विजानता ।
 चन्दनोशीरयस्याह्व जीरतोयैः सशर्करैः ॥ ४ ॥

नस्यं दद्याद् भिषक् प्राज्ञो नाष्वा दोषहिताय वै ।
 शरत्कालोचिताः कार्याः स्नानपानादिपूर्विकाः ॥ ५ ॥
 क्रियाः सर्वाः समासेन वाजिनां हितमिच्छता ।
 वाते स्निग्धं कफे चोष्णं पित्ते वै स्वादुशीतलम् ॥ ६ ॥
 कफे रुक्षञ्च तीक्ष्णञ्च नस्यं प्रोक्तं तपोधनेः ।
 त्रिहृच्चूर्णं तथा तैलसर्पिषा वसया तथा ॥ ७ ॥
 स्निग्धमेतत् स्मृतं नस्यं वाते वापि प्रशस्यते ।
 जीवनीयी समधुकी शर्करा क्षीरवारिणा ॥ ८ ॥
 स्वादुशीतं भवेन्नस्यं पित्तरोगविनाशनम् ।
 वार्त्ताकव्योषकल्केन निर्गुण्डी स्वरसेन वा ॥ ९ ॥
 रुक्षं तीक्ष्णं समोमूलं नस्यं प्रोक्तं कफाघ्नम् ।
 सन्निपाते प्रयोक्तव्यं स्निग्धशीतलतीक्ष्णकैः ॥ १० ॥

इति श्रीमहामामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 नस्यविधाने सप्तदशोऽध्यायः ।

अथ अष्टादशोऽध्यायः ।

स्वेदविधानम् ।

यत्र कायेन यः स्वेदो गुरुः स्वेदः स उच्यते ।
 वालुकापुटकैः स्वेदः पुटस्वेद उदाहृतः ॥ १ ॥
 शकृता महिषाश्वानां गोमयेन तथैव च ।
 अग्नितप्तेन यः स्वेदः शङ्करस्वेद उच्यते ॥ २ ॥
 अतसौभिः शणैर्माषैर्वीजैः काश्मर्यसम्भवैः ।
 गोधूमैस्त्रिलयवैश्चैव कुलत्थैर्धान्यासम्भवैः ॥ ३ ॥
 वर्षाभू गोक्षुरैरण्डैर्धान्यान्मृत्तवितैः समैः ।

सर्ववातहराः खेदः पुटाख्यो गात्रसम्भवः ॥ ४ ॥
सुतप्तकाष्ठीकैः खिन्नं बुधं बद्धा पुटं भिषक् ।
तुषखेदं तुरङ्गस्य धान्यैर्वापि प्रदापयेत् ॥ ५ ॥
कफे रूक्षं प्रशंसन्ति खेदं शास्त्रविदो जनाः ।
आभाज्यं वाते तैलेन सर्पिषा वा प्रदापयेत् ॥ ६ ॥
वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा खेद उच्यते ॥ ७ ॥
पित्तरोगातुरः श्रान्तः क्षुधार्त्तश्च पिपासितः ।
अखेद्यः कीर्तितो वाजी बद्ध्वा चैव गर्भिणी ॥ ८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
खेदविधानेऽष्टादशोऽध्यायः ।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।

स्नेहप्रयोगः ।

स्नेहप्रयोगो द्विविधः पिण्डः पेयश्च वाजिनाम् ।
पिण्डो भोजनसंयुक्तः पाने पेयः स उच्यते ॥ १ ॥
शरत्काले प्रधानस्तु प्रयोगः सर्पिषो मतः ।
हेमन्ते शिशिरे चैव तैलस्य समुदाहृतः ॥ २ ॥
पलपञ्चकमारभ्य त्रीणि त्रीणि विवर्षयेत् ।
पूर्णः प्रस्थो भवेद् यावदश्वपाने त्वयं विधिः ॥ ३ ॥
अश्वपानाच्च दातव्यमर्द्धं स्नेहस्य पिण्डतैः ।
प्रभाते वा विकाले वा पिण्डं दद्याद्भिषक् तथा ॥ ४ ॥
एकेनाङ्गा न दातव्यं प्रस्थादूर्ध्वं घृतं बुधैः ।
आढकादपरो नैव प्रयोगस्तस्य शस्यते ॥ ५ ॥
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ।
दशाहं द्वादशाहं वा दद्यात् स्नेहं निरन्तरम् ॥ ६ ॥

क्षुधिते यवसं दूवां तस्मै दद्याद्विचक्षणः ।
 सुखोष्णं सलिलञ्चैव प्रशस्तं परिकीर्तितम् ॥ ७ ॥
 स्निग्धता सर्वगात्राणां वर्चः स्निग्धमसंहतम् ।
 सम्यक् स्निग्धस्य वाहस्य उत्साहश्चैव जायते ॥ ८ ॥
 अरुचिर्दीनता चैव पादानां श्वयथुस्तथा ।
 अतिभिन्नपुरीषञ्च अतिस्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥
 अस्निग्धस्य भवेद्दर्शं रूक्षवर्तितमेव च ।
 तस्मै वातो भिषक् प्राज्ञः पुनः स्नेहं प्रदापयेत् ॥ १० ॥
 सम्यक्स्निग्धं प्रशंसन्ति मुनयः शास्त्रकोविदाः ।
 अतिस्निग्धश्च रूक्षश्च द्वावेती निन्दितौ स्मृतौ ॥ ११ ॥
 अतिस्निग्धस्य वाहस्य कुर्याच्चैव विचक्षणः ।
 भोजनैः प्रतिपानैश्च वक्ष्यमाणैरनन्तरम् ॥ १२ ॥
 सुरालवणसंयुक्तं प्रातर्दद्याद्विचक्षणः ।
 यवागूभोजनञ्चैव विकाले तक्रसंयुतम् ॥ १३ ॥
 मुद्गाश्च भोजने देयास्तक्रेणास्त्रेण मर्दिताः ।
 एतन्नग्रहं प्रकर्तव्यं पञ्चाहं वा भिषग्वरैः ॥ १४ ॥
 एवं विरूक्षितानान्तु शुष्कघासैकवर्तिनाम् ।
 कायाग्नेर्जायते वृद्धिः स्वल्पाम्भश्चापि वाजिनाम् ॥ १५ ॥
 तैलं क्षारेण संयुक्तं प्राहृत्काले प्रदापयेत् ।
 क्षीरयुक्तं शरत्काले हिमन्ते सुरया युतम् ॥ १६ ॥
 शिशिरे लवणैर्युक्तं वसन्ते त्रिफलान्वितम् ।
 वारिणा द्विगुणेनैव ग्रीष्मकाले प्रशस्यते ॥ १७ ॥
 अपक्वं नैव दातव्यं पाने स्वस्थेषु वाजिषु ।
 समीक्ष्य दोषं पक्वं च तैलं दद्याद्विचक्षणः ॥ १८ ॥
 आमं दत्तं गुदे तैलमभिष्यन्दाय जायते ।
 तस्माद्दद्याद्विशेषेण स्नेहं वस्ती विपाचितम् ॥ १९ ॥

मन्दकोष्ठानले वाहे स्थूले चातिक्रशे तथा ।
स्नेहपानं न दातव्यं व्यायामेन च योजिते ॥ २० ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
स्नेहप्रयोगे एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथ विंशोऽध्यायः ।

तैलविधानम् ।

मधुकाटितैलम् ।

मधुकोशीरयष्ट्याह्वरक्तचन्दनपद्मकैः ।
श्रीपुष्पघातकीलोध्रमञ्जिष्ठाचन्दनैः समैः ॥ १ ॥
कल्कीकृतं पचेत्तैलं गोक्षीरेण समन्वितम् ।
पित्तदोषविनाशाय मधुकाट्यभिधानकम् ॥ २ ॥

त्रिवृत्सर्पिः ।

सर्पिंस्तेलं वसां चैव एकीकृत्य विचक्षणः ।
दशमूलकप्रायेण तत्कल्कैः पाचयेद्भिषक् ॥ ३ ॥
मृद्वग्निना दृढतास्थं नस्यपानादिकाभिकम् ।
वातव्याधिविनाशाय कौर्त्तितं यत्तपोधनैः ॥ ४ ॥

प्रसारणीतैलम् ।

शतं शतं पलानान्तु प्रसारण्यश्वगन्धयोः ।
दशमूलशतञ्चैव क्वाथयित्वा विचक्षणः ॥ ५ ॥
माषपर्ण्याः पलं वापि मुद्गपर्ण्याः पलं तथा ।
सैन्धवस्य पले द्वे तु चित्रकस्य तथैव च ॥ ६ ॥
पिप्पलीनां तथामूलं प्रसारण्याश्च बुद्धिमान् ।
यवचारश्च गृह्णीयाद् बुधो द्विपलिकं तथा ॥ ७ ॥

पलैकं चाष्टवर्गन्तु कल्कार्ये संप्रयोजयेत् ।
 पूर्वोक्तेन कषायेण दधिच्चौरतुषोदकैः ॥ ८ ॥
 पचेत् प्रसारणीतैलं भिषग्विद्वान् समाहितः ।
 वातरोगेषु सर्वेषु हितं भेषजमुत्तमम् ॥ ९ ॥
 दशमूलस्य कल्केन तत्कषायास्त्रकाञ्चिकैः ।
 लवणैः संयुतं तैलं पचेद्वातविनाशनम् ॥ १० ॥
 तुल्याभ्यां घृततैलाभ्यां त्रिवृतोक्तैश्च भेषजैः ।
 मिश्रकं साधयेत्तैलं वसातैलेषु मध्यमम् ॥ ११ ॥
 अपक्वं यमकं प्रोक्तं घृतं तैलसमीकृतम् ।
 पाने वस्ती तथाभ्यङ्गे वातरोगेषु शस्यते ॥ १२ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 तैलविधाने विंशोऽध्यायः ।

अथ एकविंशोऽध्यायः ।

घृतविधानम् ।

पञ्चतिक्तघृतम् ।

वासानिम्बकरञ्जानां सप्तपर्णीपटोलयोः ।
 साधयेत् काथकल्काभ्यां पञ्चतिक्तघृतं बुधः ॥ १ ॥
 करञ्जाद्यं घृतम् ।

करञ्जोशीरमधुकैः श्यामाचन्दनपद्मकैः ।
 त्रायमाणा शटी मूर्वा पटोलातिविषैः समैः ॥ २ ॥
 एतैः सर्वैस्तथा साङ्गं त्रिचतुःपञ्चसम्मितैः ।
 कल्कीकृतैः पचेत् सर्पिस्त्रिफलाया रसेन तु ॥ ३ ॥
 पित्तदोषापहं हृद्यं बलतेजो विवर्द्धनम् ।
 करञ्जाद्यभिधानन्तु जीवनं वृंहणं भिषक् ॥ ४ ॥

द्वितीयं पञ्चतिक्तं घृतम् ।

पटोलं वासकं निम्बं गुडूची कण्टकारिका ।
 एषां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५ ॥
 त्रिफलायाः पलान्यष्ट तत्रैव दापयेद्भिषक् ।
 चतुर्भागांशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ६ ॥
 घृतप्रस्थं प्रदातव्यं त्रूषणस्य पलद्वयम् ।
 कासे श्वासे च हिक्कायां गलगण्डार्दिषु च ॥ ७ ॥
 ये चान्ये कफजाः केचित् रोगा वातप्रकोपजाः ।
 पैत्तिका इन्द्रजाश्चापि तथा वै सन्निपातजाः ॥ ८ ॥
 एतानपि निहन्त्याशु पञ्चतिक्तमिदं घृतम् ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 घृतविधाने एकविंशोऽध्यायः ।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

श्रान्तोपचारः ।

अमो भवति रोगाय वाहानामतिवाहनात् ।
 श्वासिनः श्लथदेहाश्च दीनास्तेन भवन्ति वै ॥ १ ॥
 श्रान्तस्य मदिरां दत्त्वा गुड़युक्तां विजानता ।
 पञ्चाह्वासः प्रदातव्यो जलपानं भवेत्ततः ॥ २ ॥
 गोमयं लवणं मूत्रं कथितं मृत्समन्वितम् ।
 सर्वाङ्गलेपनं प्रोक्तं मुनिभिः अमशान्तये ॥ ३ ॥
 मर्दयेत् सर्वगात्राणि गोमयेनाथवा पुनः ।
 क्षीरोदकेन वस्तिश्च दद्यात् सेकश्च मूर्धनि ॥ ४ ॥
 सर्वकायिकमभ्यङ्गं सर्पिषा चैव कारयेत् ।
 श्वोभूतजलकुम्भस्थान् संस्त्रतान् दापयेद् यवान् ॥ ५ ॥

एता एव क्रिया वैद्यः पञ्चरात्रं प्रयोजयेत् ।
 मांसानां रसकैर्युक्तं यवान्नं भोजयेद्भिषक् ॥ ६ ॥
 प्रथमे दिवसे दद्यात् कम्पनाय च वाजिने ।
 मांसानां रसकं पानं मारुतोद्भवशान्तये ॥ ७ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 आन्तोपचारे द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

स्वस्थारिष्टः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि स्वस्थारिष्टस्य लक्षणम् ।
 शालिहोत्रादिभिः पूर्वमृषिभिः कीर्तितं यथा ॥ १ ॥
 दुर्मना हीनवर्णश्च दत्तं नैव च खादति ।
 विना रोगमकस्माद् यो गतायुः स प्रकीर्तितः ॥ २ ॥
 पराङ्मुखी भवेद् यस्य छाया चैव न दृश्यते ।
 द्विगुणा वा सच्छिद्रा वा गतायुः सोऽपि कथ्यते ॥ ३ ॥
 ललाटे पुच्छमूले वा श्वयथुर्यस्य जायते ।
 यस्य रोमाणि स्निग्धानि तैलाक्ता इव केशराः ॥ ४ ॥
 असाध्य इति जानीयात् सप्ताहं तस्य जीवितम् ।
 मेढ्रं निष्क्राम्य यो वाजी शार्दूलवन्निषीदति ॥ ५ ॥
 विवर्णा दशना यस्य सहसा वा पतन्ति च ।
 श्यावीष्ठतालुजिह्वाश्च तेऽपि यातायुषो मताः ॥ ६ ॥
 स्रातस्य यस्य वाहस्य पूर्वं क्रोडं विशुष्यति ।
 मासेन मरणं तस्य निर्दिष्टं शास्त्रकोविदैः ॥ ७ ॥
 नासामेढ्राक्षिपायुभ्योऽकस्माद् यस्य च शीणितम् ।
 सपित्तं जायते यस्य श्वासार्तोऽप्यतिमूर्खवान् ॥ ८ ॥

शूनोदरगुदमेदो यश्चैते विगतायुषः ।
 पूतिगन्धं भवेद् यस्य दुर्गन्धं मूत्रविट् तथा ॥ ८ ॥
 दृष्ट आकम्पते यस्य ग्राममुद्गिरते यदि ।
 मक्षिकैर्भक्षितः पश्चात् निमिषे यस्य लोचने ॥ १० ॥
 न शृणोति च कर्णाभ्यां स्पष्टं दृष्टं न बुध्यते ।
 न चालयति लाङ्गूलं स्तब्धकर्णश्च जायते ॥ ११ ॥
 श्रवणे पाण्डुरा रक्ता शिरा यस्य च वेधिता ।
 मस्तके तालुके कण्ठे हृदि मुष्के च जायते ॥ १२ ॥
 श्वयथुः कठिनोऽत्यर्थं रक्तहीनाश्च वाजिनः ।
 मुखेन स्रवते लाला प्रस्वेदो यस्य लेपवत् ॥ १३ ॥
 तालुकं स्फोटकाकीर्णं नेत्रे कान्तिविवर्जिते ।
 स्नाने पाने विरक्तश्च निद्राहीनोऽवभूर्णते ॥ १४ ॥
 यस्यैकैकं भवेच्चिह्नं मासान्तं तस्य जीवितम् ।
 रोगीभूतस्य वाहस्य क्रियया वर्जितस्य च ॥ १५ ॥
 यस्यैकैकं भवेच्चिह्नं पञ्चाहाभ्यन्तरे मृतिः ।
 जिह्वाग्रे पिडका यस्य दृश्यते च तथाधरे ॥ १६ ॥
 मूत्रं करोति रक्ताढ्यं सप्तमासान् स जीवति ।
 यस्य श्वासो भवेदुष्णः शरीरं पुलकाङ्कितम् ॥ १७ ॥
 जिह्वा हिमसमाकारा स्वल्पायुः परिकीर्तितः ।
 रक्तमशु च नेत्रान्ते पाण्डुरे च गतायुषः ॥ १८ ॥
 स्त्रिन्ने मांसान्विते नेत्रे रक्ताभे रक्तवाजिनः ।
 कृष्णपीतविचित्रैश्च सप्तमे स्वल्पजीविनः ॥ १९ ॥
 नेत्रैश्चैव विवर्णैश्च सप्तरात्रन्तु जीवति ।
 रक्तवर्णं भवेदेकं द्वितीयं नीलवर्णकम् ॥ २० ॥
 पुटान्ते लोचने यस्य मासायुः स प्रकीर्तितः ।
 स्यातां नीले हि नेत्रान्ते लेखे द्विमासजीविनः ॥ २१ ॥

नीलपीते च नेत्रान्ते स्यातां त्रिमासजीविनः ।
 चतुर्मासायुषो लेखा नेत्रान्ते बहुवर्णकाः ॥ २२ ॥
 षण्मासजीविनोऽश्वस्य नेत्रान्ते बहुविन्दवः ।
 सप्तमासायुषो नीले नेत्रे स्यातां हि वाजिनः ॥ २३ ॥
 दशमासायुषोऽश्वस्य नेत्रयोर्वर्णव्यत्ययः ।
 नासानिकटनेत्रान्ते प्रसार्याश्वस्य लक्षयेत् ॥ २४ ॥
 दृष्टी रुद्धा सिता वातात् पित्तात् पीतारुणप्रभा ।
 कफात् श्वेता जलाद्रा च पीताभा च च्वरागमे ॥ २५ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 स्वस्थारिष्टे त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ।

वेधारिष्टः ।

अकस्माद् यदि वाहानामेकरूपा भवेद्दृजा ।
 म्रियते च यदा क्षिप्रमुपसर्गं तदादिशेत् ॥ १ ॥
 निदानञ्चैव चिह्नञ्च वक्ष्ये तस्य यथाक्रमम् ।
 शरत्काले शुची वापि ऋतुसन्धी च जायते ॥ २ ॥
 कदाचित् कस्मिन् देशे सविषो बहति मारुतः ।
 तस्मादपि च वाहानामङ्गेभ्यस्तु प्रजायते ॥ ३ ॥

निदानलक्षणम् ।

निदानेभ्यः समासेन वक्ष्यामस्तानि साम्प्रतम् ।
 शरत्काले तथा ग्रीष्मे वाहानां रवितापतः ॥ ४ ॥
 उपसर्गञ्च वेधाख्यो जायते नात्र संशयः ।
 शालाभावे च वाहानां प्राहृषि जायते मलात् ॥ ५ ॥
 मशदंशकदोषाञ्च चिन्तादेरुपयोगतः ।

उपसर्गस्तु वेधाख्यो जायतेऽखस्य दारुणः ॥ ६ ॥
 उपसर्गे समुत्पन्ने एतद्भवति लक्षणम् ।
 अधोमुखाश्च दीनाश्च सज्वराः श्लासकाग्निः ॥ ७ ॥
 स्तब्धाङ्गा विकृताः क्षामाः पीडातार्ताश्चास्रभूषिणः ।
 आम्राहतपुरीषाश्च तथा शुष्कपुरीषिणः ॥ ८ ॥
 अतिसारं सरक्तञ्च कदाचित् कुरुते ह्ययः ।
 शूनाः पश्चिमपादाश्च शूनाश्च वृषणोदराः ॥ ९ ॥
 सतिग्ममनसो जातु दुर्मनांसी भवन्ति च ।
 धृतिं नैवाधिगच्छन्ति स्थाने वा शयनेऽपि वा ॥ १० ॥
 भोजनं यवसं तोयं नैवाश्रन्ति च खादनम् ।
 कीर्यन्ते मक्षिकाभिश्च साशुनेत्रा भवन्ति च ॥ ११ ॥
 मन्दाग्नयश्च जायन्ते बलतेजो विवर्जिताः ।
 न सहन्त्यातपं सौरं ह्याशुक्रायानिषेविणः ॥ १२ ॥
 चन्द्रे प्रकाशमाने तु हयान् मुक्त्वा तु रक्षयेत् ।
 आतपाशङ्कया क्रायां सवेधो याति निश्चयम् ॥ १३ ॥
 वेधारिष्टचिकित्सा ।
 एतानि लक्षणान्येव सवेधानां भवन्ति वै ।
 उपसर्गे तु सञ्जाते शक्तिकर्मणि कारयेत् ॥ १४ ॥
 नीराजनविधानन्तु कर्त्तव्यं पूर्वनोदितम् ।
 अश्वरक्षाविधानाय ऋचा साम्ना च पाठकः ॥ १५ ॥
 जुहुयाञ्ज्वलनं विप्रस्तुरङ्गाणां हितेच्छया ।
 अथर्वविहितां शान्तिं गान्धर्वीं वा प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
 नदीपारश्च नीत्वाश्वान् स्थापयेच्च पृथक् पृथक् ।
 कदाचिद् देवयोगेन शान्तिकर्म फलेन वा ॥ १७ ॥
 प्रशमं यान्ति वाहानां उपसर्गाः सुदारुणाः ।
 तैलपानं तथाभ्यङ्गं घृतपानं तथैव च ॥ १८ ॥

सप्ताहञ्चाहरेद् यस्तु स जीवेन्नात्र संशयः ।
 शिंशपासारनिर्यासमष्टवर्गांस्तथैव च ॥ १८ ॥
 द्वौ चारौ कटुका चोग्रा लवणं गजपिप्पली ।
 त्रिकटु त्रिफला चैव त्रिजातं हिङ्गुरेव च ॥ २० ॥
 एतानि समभागानि पिष्ट्वा पिण्डं प्रदापयेत् ।
 दौष्यते तस्य कायाग्निर्वंधश्चैवोपशाम्यति ॥ २१ ॥
 उत्क्षिप्तवङ्कणः स्तब्धखासमन्दाग्निरश्रुवान् ।
 दुर्गन्धो मक्षिकाक्रान्तो ध्यायी चाश्वो न जीवति ॥ २२ ॥
 जीवेत् पचन्तु तुरगो बली मासञ्च जीवति ।
 जीवेत् संवत्सरं वापि न तु रोगात् प्रमुच्यते ॥ २३ ॥
 प्रातृषः पूर्वकाले तु सद्यो दद्याद्विचक्षणः ।
 नोचेज्ज्वरातुरो ह्यश्वः कार्तिके मासि जायते ॥ २४ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 वैधरिष्टे चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

कीटारिष्टः

कीटनिदानलक्षणम् ।

कीटवेधं प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रं समासतः ।
 शरन्निदाघयोश्चैव वाहानां घर्मसेवनात् ॥ १ ॥
 वाजिनां कीटवेधस्तु भवेन्निरूपचारतः ।
 घनकाले च तोयानां सेवनाच्छालया विना ॥ २ ॥
 कीटकाण्डास्तदाश्वानां भवन्ति जठरे स्थिराः ।
 ज्येष्ठशुक्लद्वितीयायां तेभ्यः कीटा भवन्ति च ॥ ३ ॥

चिकित्सा ।

तेषाञ्च प्रतिघाताय कुर्याद्द्विहान् प्रतिक्रियाम् ।
महानिम्बपलाशानां वीजैः सक्तमिश्रत्रुभिः ॥ ४ ॥
तस्मिन्नेव दिने पिण्डं दद्याद्बुद्धिमतां वरः ।
अनुपानं^१तदा दद्याद्द्रवं रोहिणिकोद्भवम् ॥ ५ ॥
एवं कीटा न जायन्ते हयानामुदरे ध्रुवम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
कीटारिष्टे षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

मृगरोगः ।

नासासन्धानसंयुक्ता जायन्ते भूर्युपद्रवाः ।
नित्यं घासाभिलाषी च हीयते बलमांसयोः ॥ १ ॥
मृगरोगः स विख्यातो व्याधिः कष्टचिकित्सितः ।
षण्मासाभ्यन्तरे वाथ परलोकं प्रयाति च ॥ २ ॥
बहुदुःखी भवेदश्वो मृगरोगप्रपीडितः ।
यावदुच्छसते जन्तुस्तावत् कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ३ ॥

चिकित्सा ।

कदाचिहैवयोगिन विनष्टश्चापि जीवति ।
पञ्चमूलस्य निःक्वाथे जाङ्गलैः साधितो रसः ॥ ४ ॥
रसः पाने प्रदातव्यः शालिभक्तश्च भोजनम् ।
कदाचिहैवयोगिन भर्तुः पुण्यफलेन वा ॥
प्रशमं याति वाहानां मृगरोगः सुदारुणः ॥ ५ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
मृगरोगे षड्विंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

वातादिकोपः ।

प्रकोपनिदानसूचके ।

तिक्तरूक्षकषायाणां द्रव्याणामुपयोगतः ।
निराहारात् अमाङ्गारात् प्रकोपो मातरिखनः ॥ १ ॥
सन्तापाच्च अमाञ्चापि कटुश्चलवणाशनात् ।
प्रकोपं याति पित्ताख्यो दोषो देहव्यवस्थितः ॥ २ ॥
गुरुभिर्मधुरैः स्निग्धैरभिष्यन्दकरै रसैः ।
सेवितैः श्लेष्मणां वृद्धिर्भवेच्चापि अमं विना ॥ ३ ॥
प्रावृट्काले विकाले च हेमन्ते च विशेषतः ।
वायोर्बृद्धिः समुद्दिष्टा जीर्णं चैवाशने तथा ॥ ४ ॥
शरत्काले निदाघे च जीर्ण्यमाणे च भक्षिते ।
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च पित्तोद्रेकं समादिशेत् ॥ ५ ॥
शिशिरे च वसन्ते च भुक्तवत्सु च तत्क्षणात् ।
वाजिनः श्लेष्मणः कोपः प्रभाते च प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥
विपर्ययं निदाघस्य वातादीनां विचक्षणैः ।
हानिर्वाच्या सदा वैद्यैः शास्त्रमार्गानुसारिभिः ॥ ७ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे

वातादिप्रकोपे सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः ।

व्याधिनिर्देशः ।

मुखरोगोऽक्षिरोगश्च शिरोरोगश्च लिङ्गितः ।
कर्णरोगश्च कासश्च श्वासी हिक्का व्रणस्तथा ॥ १ ॥

सिङ्हाणः कीष्ठरोगश्च पदरोगो ज्वरस्तथा ।
 अजीर्णश्चातिसारश्च शूलोदावर्त्त एव च ॥ २ ॥
 प्रस्कन्नः क्षमिकोष्ठश्च मूत्ररुष्ललरुक् तथा ।
 कुष्ठरोगश्च शोथश्च अण्डीनीतोदरार्शसः ॥ ३ ॥
 उत्कर्णकोऽर्दितश्चैव मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ।
 आक्षेपो मृगजृम्भश्च मन्याचालीमृगस्तथा ॥ ४ ॥
 कपोतको निशादश्च तथाचैकाङ्गसङ्गकः ।
 रोगः पृष्ठग्रहो नाम भ्रामिताक्षस्तथैव च ॥ ५ ॥
 उन्मादो ग्रहदोषश्च शोषो वातबलासकः ।
 व्यापदो लवणैर्धान्यैः सुरया पयसा तथा ॥ ६ ॥
 विषापस्मारदोषौ च षट्पादौ लक्षणं तथा ।
 इत्ययं व्याधिनिर्देशः कृतः शास्त्रार्थतत्त्वतः ॥ ७ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे व्याधिनिर्देशे-
 ऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अथ एकोनविंशोऽध्यायः ।

मुखरोगः ।

उपकुशस्तथा लेशो जिह्वास्तम्भस्तथैव च ।
 अलावूकः प्रसूनश्च दन्तरोगो गलग्रहः ॥ १ ॥
 मुखपाकोऽधिदन्तश्च रोहिणी चोपजिह्विका ।
 गण्डरोगीष्ठरोगी च गलशालूक एव च ॥ २ ॥
 इत्येते वाजिनां रोगा मुखजाः परिकीर्त्तिताः ।
 एषां निदानं वक्ष्यामि चिकित्साश्च यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

मुखरोगनिदानलक्षणे ।

समेभ्यो दन्तमांसेभ्यो यस्य निर्व्याति शोणितम् ।
 चलदन्तस्य वाहस्य विद्यादुपकुशं भिषक् ॥ ४ ॥
 हनुदेशे यदा दन्तो भवत्यभ्यन्तराश्रयः ।
 आलेश इति तं विद्यात् श्लेष्मरक्तसमुद्भवम् ॥ ५ ॥
 तेनाश्वो दुर्मनात्यर्थं मन्दं पिबति खादति ।
 जर्जरं कासते चैव बलाच्च परिहीयते ॥ ६ ॥
 शूना यस्य भवेज्जिह्वा वाजिनः स्फोटकैर्युता ।
 प्रक्लिन्ना वापि यस्यैव जिह्वा स्तम्भीति तं विदुः ॥ ७ ॥
 मुखं दुर्गन्धिकं चैव तालुकः शूनको भवेत् ।
 ग्रासविहेषिणोऽश्वस्य रोगं विद्यादलावुकम् ॥ ८ ॥
 श्यावीष्ठतालुवक्त्रे वा मन्दाहारं तथैव च ।
 संशीर्णं दन्तमांसि च प्रशूनं व्याधिमादिशेत् ॥ ९ ॥
 हन्वोश्चैव तथा गण्डे श्वयथुर्यस्य जायते ।
 जिह्वामूले गले चापि तस्य विन्याद्गलग्रहम् ॥ १० ॥
 सृक्वीष्ठतालुदेशेषु व्रणं यस्योपजायते ।
 विवर्णन्तु मुखं दुष्टं मुखपाकं तमादिशेत् ॥ ११ ॥
 दन्तानामुपरिष्ठात्तु यदा दन्तस्य सन्धवः ।
 अधिदन्तः स विख्यातो मन्दाहारस्य वाजिनः ॥ १२ ॥
 यस्य शूनात्तिकूटस्य गले शोथः प्रलम्बते ।
 यवमहेषिणोऽश्वस्य रोहिणीरोगमादिशेत् ॥ १३ ॥
 अधस्तादथ जिह्वायाः श्वयथुर्यस्य जायते ।
 तं विन्यादुपजिह्वाख्यं मुखरोगन्तु वाजिनाम् ॥ १४ ॥
 अधिजिह्वाभिधानन्तु उपरिष्ठाद् विनिर्दिशेत् ।
 गण्डाभ्यन्तरं गण्डो गण्डराग इति स्मृतः ॥ १५ ॥
 स्रवणः पिङ्काकौर्णं श्रोष्ठ उच्छून एव च ।

स्फुटितः कठिनश्चैव ओष्ठरोगोऽभिधीयते ॥ १६ ॥
 गलाभ्यन्तरशोथेन ग्रासमुद्गिरते हयः ।
 गलशालूकिनं विन्द्यात् कासार्त्तञ्च तुरङ्गमम् ॥ १७ ॥
 सर्वेषां मुखरोगानां सम्भवः श्लेष्मशोणितम् ।
 चिकित्सांतेषु वक्ष्यामि येन शान्म्यन्ति वाजिनाम् ॥ १८ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

विध्यात्तालुशिरां पूर्वं तुरङ्गस्य विचक्षणः ।
 अधिमांसं ततो विध्याद्ग्राह्यत्तास्यस्य शस्त्रकैः ॥ १९ ॥
 जिह्वास्तम्भे तु जिह्वायाः प्रक्षालं कारयेद्भिषक् ।
 प्रतिसार्यांश्चजिह्वान्तु लवणैः कटुचूर्णकैः ॥ २० ॥
 वेधकालात् समारभ्य रात्रिमेकां न दापयेत् ।
 वासयन्तेन वाहस्य निवातस्थस्य बुद्धिमान् ॥ २१ ॥
 प्रतिपानं प्रभाते तु पिप्पलीशृङ्गवेरकैः ।
 पुनर्णवा वचाशिशुकरञ्जान्निम्बपत्रकान् ॥ २२ ॥
 त्रायमाणा विडङ्गैश्च किञ्चिन्नवणसंयुतैः ।
 सुरया दापयेत् सम्यग् घासं शुष्कं तथैव च ॥ २३ ॥
 करञ्जनिम्बपत्राणां कथितञ्च सुसंस्कृतम् ।
 भोजयेत्तिलमुद्गांश्च तैलत्रिकटुकान्वितान् ॥ २४ ॥
 सृदुभिर्दन्तकाष्ठैश्च कटुचूर्णावचूर्णितैः ।
 गवां मूत्रेण तेषान्तु मुखप्रक्षालनं हितम् ॥ २५ ॥
 शृङ्गवेरेण पिप्पल्या वचया सर्वपार्द्रकैः ।
 हितं प्रलेपं कुर्वीत शोथेषु च विचक्षणः ॥ २६ ॥
 त्रिफलाक्वाथयुक्तस्य हितं पानञ्च गुग्गुलोः ।
 यवांश्च खादने दद्यान्माषादींश्च विवर्जयेत् ॥ २७ ॥
 अधिदन्तन्तु सन्दंशैः कर्षयित्वा विचक्षणः ।
 चिकित्सां पूर्वमुद्दिष्टां कुर्वीत तदनन्तरम् ॥ २८ ॥

कृमिभिर्भक्ष्यमाणानां दन्तानामुपकर्षणम् ।

अधिदन्ते च कुर्वीत आलेपञ्च विचक्षणः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे मुखरोगे

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

अक्षिरोगः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि नेत्ररोगविनिश्चयम् ।

पूर्वशास्त्रानुसारेण मुनिभिः कीर्तितं यथा ॥ १ ॥

तोयस्रावः प्रसन्नान्धो नक्तान्धस्तिमिरस्तथा ।

मुञ्जको मुञ्जजालञ्च पटलं वुहुदस्तथा ॥ २ ॥

पूयश्रावश्च काचाक्षो रक्तस्रावस्तथैव च ।

चिपिटो वर्त्मरोगश्च अभिष्यन्दस्तथैव च ॥ ३ ॥

वातपित्तकफैर्दृष्टैर्नेत्ररोगा भवन्त्यमी ।

लिङ्गं चिकित्सितं तेषां प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ ४ ॥

वातिकाक्षिरोगनिदानलक्षणानि ।

अजस्रं पश्यतां व्यशु स्वच्छं स्रवति चक्षुषः ।

तोयस्रावीति तं विन्द्याद्विकारं मारुतात्मकम् ॥ ५ ॥

शुद्धन्तु चक्षुषा रूपं नैव पश्यति यो ह्ययः ।

प्रसन्नान्धः स विज्ञेयो न तु शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ६ ॥

दिवा पश्यति यः स्वच्छं रात्रौ चैव न पश्यति ।

नक्तान्ध इति तं विद्याद्विकारं पवनोद्भवम् ॥ ७ ॥

कदाचिद्दीक्षते रूपं कदाचिञ्च न वीक्षते ।

तिमिरं तं विजानीयास्त्रिङ्गेनानेन बुद्धिमान् ॥ ८ ॥

तश्चिकित्सा ।

घृतं पक्कं प्रदातव्यं देयञ्च त्रिफलान्वितम् ।
 सन्तर्पणञ्च कुर्वीत नेत्रयोस्तदनन्तरम् ॥ ९ ॥
 निपात्य भूमौ तुरगं दृढं बद्ध्वा सुयन्त्रितम् ।
 माषचूर्णस्य कल्केन परिवार्य्याक्षि सर्वतः ॥ १० ॥
 घृतेन पयसा वापि पूरयेत्तं विचक्षणः ।
 विधिरेष समुद्दिष्टो नेत्रसन्तर्पणः सदा ॥ ११ ॥
 अपरञ्च सुखोपायो विधिः सन्तर्पणः स्मृतः ।
 तूलं स्नेहेन सन्भाव्य नयनाभ्यन्तरे क्षिपेत् ॥ १२ ॥
 तस्योपरि श्लथं पट्टं बध्नीयाद्वा दृशोपरि ।
 बद्धपट्टं पुनर्नेत्रं मुहुः स्नेहेन सेचयेत् ॥ १३ ॥
 उत्पलं चन्दनञ्चैव तथा सीवीरकाञ्जनम् ।
 वर्त्तिं कृत्वा ततः प्राञ्जस्तिमिरं नित्यमञ्जयेत् ॥ १४ ॥
 तोयस्त्रावस्य वाहस्य प्रसन्नान्धस्य वा पुनः ।
 एतदेवाञ्जनं श्रेष्ठं तिमिरे यत्प्रकीर्तितम् ॥ १५ ॥
 रसाञ्जनं गुडञ्चैव मधुकं क्षीद्रमेव च ।
 रजन्या सहिता वर्त्तिर्नक्तान्धस्याञ्जनं परम् ॥ १६ ॥
 सप्त कृत्वाष्ट कृत्वा वा शोषयित्वा पुनः पुनः ।
 भावयेत् कर्पटं क्षौमं क्षीरेणाज्येन बुद्धिमान् ॥ १७ ॥
 सुरामण्डेन तद्भूयो भावयित्वा विचक्षणः ।
 वर्त्तिं कृत्वा घृताभ्यक्तां घृतदीपे प्रदापयेत् ॥ १८ ॥
 प्रच्छन्ने ताम्रपात्रेण तं दीपं छादयेन्मनाक् ।
 तस्मात् कज्जलमादाय ताम्रपात्राद्विचक्षणः ॥ १९ ॥
 तोयस्त्रावं प्रसन्नान्धं नक्तान्धं तिमिरं तथा ।
 अञ्जयेन्मतिमान् वैद्यः शीपकस्य शलाकया ॥ २० ॥

पैत्तिकाक्षिरोगलक्षणानि ।

अधोमुखस्तु यो वाजी मिलिताक्षस्तथैव च ।
 शूनाभ्याञ्चैव नेत्राभ्यामुष्णमशु विमुञ्चति ॥ २१ ॥
 लोचनं काचसङ्काशं यस्याकस्मात् प्रजायते ।
 काचं पित्तात्मकं रोगं तस्य विद्वान् समादिशेत् ॥ २२ ॥
 लोहितं पित्तकञ्चैव हरितं नीलकं तथा ।
 पित्तनिष्यन्दिनोऽश्वस्य नेत्रमाशु प्रजायते ॥ २३ ॥

तच्चिकित्सितम् ।

प्रपीण्डरीकं मधुकं चन्दनं लोध्रमेव च ।
 एकीकृत्य जले न्यस्तं नेत्रस्थोत्तानमुत्तमम् ॥ २४ ॥
 यष्टीमधुकयुक्तञ्च परिषेकाय गोपयः ।
 चन्दनोशीरतोयैश्च पानं दद्यात् सयष्टिकैः ॥ २५ ॥
 अशुपाते शिरावेधो हितश्चापि हि कीर्तितः ।
 गैरिकं मधुकं शङ्खं लोध्रमुत्पलमेव च ॥ २६ ॥
 आमलक्या रसेनैतत् समभागं तथैव च ।
 शिलामालिष्य संशोष्य तत्कल्कं चूर्णयेदधः ॥ २७ ॥
 स्रोतोऽञ्जनं समं दद्यात्तत्पित्ताय न मारयेत् ।
 जम्बूककुभशाखानामामलक्या वटस्य च ॥ २८ ॥
 पुष्पाण्युद्धृत्य सर्वेषां यथाप्राप्तानि वा पुनः ।
 फलानि वा समाहृत्य कल्कं कृत्वा विचक्षणः ॥ २९ ॥
 भोजयेद् दृढमध्वाक्तं कटुकाण्डञ्च वर्जयेत् ॥ ३० ॥

प्रचारलक्षणचिकित्सितम् ।

प्रच्छादयति यद् दृष्टिं मांसं पर्यन्तवर्द्धितम् ।
 प्रचारकाख्यं तं विन्द्यान्नेत्ररोगं कफात्मकम् ॥ ३१ ॥
 क्षितौ निपात्य तुरगं ततो नेत्रं प्रसारयेत् ।
 कृतकर्मा भिषग्विद्वान् वडिशेनाश्विवर्त्मनि ॥ ३२ ॥

ततस्तीक्ष्णेन शस्त्रेण छिन्द्यात्पावरकं बुधः ।
 तारकस्य यथा पीडा जायेत न मनागपि ॥ ३३ ॥
 शुद्धं तत् पूरयेत्तेजं मधुना सैन्धवेन वा ।
 प्रक्षाल्य चोत्थाप्य ततः शङ्खजां वेधयेच्छिराम् ॥ ३४ ॥
 कुष्ठेन वक्ष्या चव्या तथा त्रिकटुकेन च ।
 प्रतिपानं प्रदातव्यं सुरया लवणैः सह ॥ ३५ ॥
 निर्वातं विहितं स्थानं ग्रासे दूर्वा च पूजिता ।
 गुरु भक्ष्यं न दातव्यं मधुरञ्च विशेषतः ॥ ३६ ॥

काचलक्षणचिकित्सा ।

श्लेष्माभिष्यन्दिनोऽश्वस्य शूनं साशु विलोचनम् ।
 काचः मञ्जायतेऽश्वस्य पाण्डुता चापि चक्षुषः ॥ ३७ ॥
 पिप्पलीञ्चेव लोभ्रञ्च तथा कटुकरोहिणीम् ।
 त्रिफलां पित्तुमर्दञ्च गवां मूत्रेण साधयेत् ॥ ३८ ॥
 तेन पादावशेषेण क्षौद्रयुक्तेन बुद्धिमान् ।
 गालितेन सुखोष्णेन सेचयेद्वाजिलोचनम् ॥ ३९ ॥
 कटुतैलं कषायेण पाचितं चाम्बुनैव तु ।
 विडङ्गकल्कसंयुक्तं नस्यार्थं च प्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥
 गैरिकं शृङ्गवेरञ्च अञ्जनं वृहतीफलम् ।
 मरिचं पिप्पली चैव विडङ्गं सैन्धवं तथा ॥ ४१ ॥
 एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 संस्थाप्य भाजने ताम्ने गवां मूत्रेण भावयेत् ॥ ४२ ॥
 बहुशो भावयित्वा तु पुनः श्लक्ष्णं प्रपेषयेत् ।
 चूर्णाञ्जनमिदं श्रेष्ठं नेत्ररोगे कफात्मके ॥ ४३ ॥

रक्तजाक्षिरोगलक्षणानि ।

रक्ताभिष्यन्दिनोऽश्वस्य नेत्रं भवति लोहितम् ।
 सर्वं त्रिभागसहं वा स्रावरुग्दाहपीडितम् ॥ ४४ ॥

रक्तस्त्रावोऽथवा यस्य वाजिनो लोचनाङ्गवेत् ।
 रक्तस्त्रावाभिधानन्तु नेत्ररोगं समादिशेत् ॥ ४५ ॥
 अभिघातोऽङ्गवोऽश्वस्य नेत्ररोगः प्रकीर्तितः ।
 शिरःशस्त्राभिघातश्च रक्तसन्धिस्य षण्डकः ॥ ४६ ॥
 तच्चिकित्सा ।

चिकित्साञ्चैव वक्ष्यामि यथादृष्टां समासतः ।
 येन शाम्यन्ति वाहानां रक्तजाश्चक्षुषो रुजः ॥ ४७ ॥
 ऐन्द्रीं तालीशपत्रञ्च मञ्जिष्ठां मधुकं निशाम् ।
 कालानुसारिवां मूर्वां वारिणा सह साधयेत् ॥ ४८ ॥
 तेन शीतेन सिद्धेन नेत्रमाश्रयोतयेद् भिषक् ।
 वर्त्यञ्जनमिदं कुर्याद् यथादृष्टमतन्द्रितः ॥ ४९ ॥
 विभीतकफलं लोभ्रं काश्मर्याश्च फलं तथा ।
 मधुकं शर्करा चैव गैरिकं सरसाञ्जनम् ॥ ५० ॥
 एतानि समभागानि क्षौद्रेण सह योजयेत् ।
 हन्याद्वाहश्च रक्तञ्च वर्त्तिरेषा जलान्विता ॥ ५१ ॥
 मञ्जिष्ठां हरितालञ्च लोभ्रं वालकमेव च ।
 रेणुकञ्च तथा कुष्ठमूशीरञ्च मनःशिलाम् ॥ ५२ ॥
 पेषयित्त्वोदकेनैव क्वायायां परिशीषयेत् ।
 जलदृष्टेयमश्वस्य वर्त्तिर्नेत्ररुजापहा ॥ ५३ ॥
 पटललक्षणम् ।

अधस्तादुपरिष्ठाहा पटलं यस्य जायते ।
 रुणद्धि नयने सद्यः तथा नैव क्रमेण च ॥ ५४ ॥
 हरितं नीलकं पित्ताद् वाताद्वा लोहितं भवेत् ।
 ईषत्पीतं घनं शुक्लं पटलं श्लेष्मसम्भवम् ॥ ५५ ॥
 सङ्कीर्णवर्णं विज्ञेयं सन्निपातसमुद्भवम् ।
 असाध्यं तं विजानीयात् कृच्छ्रसाध्यमथापि वा ॥ ५६ ॥

कृष्णञ्च रक्तजं विद्यात् पटलं शास्त्रकोविदः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यथायोगं चिकित्सितम् ॥ ५७ ॥

तच्चिकित्सा ।

पटलेषु च सर्वेषु शिरोवेधः प्रशस्यते ।

अशुपाते प्रपाणे च ललाटे चैव शङ्खयोः ॥ ५८ ॥

श्लेष्मजस्य हितं दृष्टमञ्जनं मधुसैन्धवम् ।

पटलस्य गवां मूत्रं चौद्रयुक्तञ्च सैन्धवम् ॥ ५९ ॥

तुल्यकं सैन्धवं चैव हरितालं मनःशिलाम् ।

गवां मूत्रेण संपिथ्य मरिचञ्च विचक्षणः ॥ ६० ॥

अञ्जयेत् कफजां प्राज्ञो मधुना पटलं भिषक् ।

पटले मांसकीले च चूर्णमेतत् प्रदापयेत् ॥ ६१ ॥

एष एव प्रदातव्यो वातिके घृतसंयुतः ।

पैत्तिके रक्तजे चैव अत ऊर्ध्वं क्रियां शृणु ॥ ६२ ॥

प्रपौण्डरीकं मधुकं शङ्खं मुक्ता प्रवालकम् ।

एतानि समभागानि जले पिष्ट्वा विचक्षणः ॥ ६३ ॥

वर्त्तिं कृत्वा ततश्चैव शोधयेत्तां विनातपम् ।

ततस्तां सलिलैः पिष्ट्वा अञ्जयेत् पटलं भिषक् ॥ ६४ ॥

त्रिफलां सघृताञ्चैव रक्तपित्तसमुद्भवे ।

पटले पाययेदश्वं विकाले चैव बुद्धिमान् ॥ ६५ ॥

वर्त्मजं मांसकीलञ्च पिण्डकञ्चैव शस्त्रकैः ।

उत्कृत्य लोभ्रचूर्णेन अञ्जयेत् सैन्धवेन च ॥ ६६ ॥

मुञ्जजालचिकित्सा ।

एकेन मुञ्जमाख्यातं बहुभिर्मुञ्जजालकम् ।

कृमिभिः पटलान्तःस्थे विन्ध्याक्षेत्ररुजाहयम् ॥ ६७ ॥

प्रथमं त्रैलवर्णाभं द्वितीयं स्फटिकप्रभम् ।

रक्ताभञ्च तृतीयञ्च चतुर्थं तैलमुच्यते ॥ ६८ ॥

प्रथमं पटलं साध्यं द्वितीयञ्च तथा भवेत् ।
दृतीयं कच्छसाध्यं स्याच्चतुर्थं नैव सिध्यति ॥ ६८ ॥

तच्चिकित्सा ।

पातयित्वा हयं भूमौ कृत्वा चैव सुयन्त्रितम् ।
वर्त्मनी वेधयेत् सूच्या सूत्रे नेत्रं प्रसारयेत् ॥ ७० ॥
कर्पटेनाश्रुवेगन्तु शुष्कं षैवापकर्षयेत् ।
स्थापयेद्वाजिनं तन्तु प्रत्यादित्यं विचक्षणः ॥ ७१ ॥
शस्त्रं सूत्रेण संवेष्ट्य तीक्ष्णमात्रन्तु कारयेत् ।
कृष्णशुक्लाम्बरधरो वेधयेद्वाजिलोचने ॥ ७२ ॥
अङ्गुष्ठेन ततो नेत्रं पीडयित्वा समाहितः ।
मुञ्चकं कर्षयित्वा तु जले क्षिप्रं प्रकाशयेत् ॥ ७३ ॥
मुञ्चमुद्धृत्य नेत्रन्तु गोमूत्रेणाऽवसेचयेत् ।
चौद्रान्यं पूरितं कृत्वा श्लथवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ७४ ॥
वह्निःप्रलेपं कुर्वीत पञ्चवल्कलकेन तु ।
कल्केन घृतयुक्तेन त्र्यहात् पट्टं विमोक्षयेत् ॥ ७५ ॥
मुञ्चकोक्तविधिः सर्वो मुञ्चजाले विशस्यते ।
रुद्धत्रणे ततः कुर्यात् पूर्वोक्तां पटलक्रियाम् ॥ ७६ ॥
प्रपौण्डरीकं मधुकं तथा लोहितचन्दनम् ।
एभिः कल्कीकृतैस्तैलं पाचितं त्रिफलान्धसा ॥ ७७ ॥
नस्यं देयमशुद्धे तु तथाचैवोपतर्पणम् ।
पिप्पली सैन्धवं शण्ठी गैरिकं वरुणत्वचः ॥ ७८ ॥
गवोद्भ्रदशनाद्यैव फेनस्यौदधिकस्तथा ।
क्षौद्रपिष्टैः समैरेभिरञ्जनं मुञ्चनाशनम् ॥ ७९ ॥

वर्त्मकुन्दचिकित्सा ।

विभीतकास्थिसारेण मधुयुक्तेन चाञ्जनम् ।
चक्षुषो यस्य बाहस्य पूयसावो विजायते ॥ ८० ॥

वर्त्मकुन्देति यस्य स्यात्तस्य कुर्यात् क्रियामिमाम् ।
 शङ्खे चैवाश्रुपाते च ललाटे वेधयेच्छिराम् ॥ ८१ ॥
 त्रिफलायाः कषायेण लोभ्रयुक्तेन सेवितम् ।
 सेचयेत् सततं वैद्यः प्रलेपञ्चैव कारयेत् ॥ ८२ ॥
 पञ्चवल्कलकल्केन क्षौद्रयुक्तेन बुद्धिमाम् ॥ ८३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 नेत्ररोगे त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।

वातिकशिरोरोगचिकित्सा ।

घातात् पित्तात् कफाञ्चैव सन्निपाताच्च लोहितात् ।
 अभिघाताच्च निर्दिष्टः शिरोरोगस्य सम्भवः ॥ १ ॥
 अधोमुखस्य दीनस्य मन्दाहारस्य वाजिनः ।
 सततं प्रोथमानस्य हृष्टरोमस्य बुद्धिमाम् ॥ २ ॥
 स्पन्दमानेन शिरसा जानीयाद्घातसम्भवम् ।
 स्पन्दमानं शिरस्तत्र हस्तस्पर्शेन लक्षयेत् ॥ ३ ॥
 शङ्खतालुकयोश्चैव शिरामन्यागतां तथा ।
 वेधयित्वा ततः कुर्यात् पात्रे तैलावसेचनम् ॥ ४ ॥
 अतिविषया पिप्पल्या वचया लवणेन च ।
 सुरसायाश्च पत्रेण प्रतिपानं सुरान्वितम् ॥ ५ ॥
 द्वितं तस्मै प्रदातव्यं भोजनञ्च रसोदकम् ।
 तिलतैलेन संयुक्तं स्वल्पं त्रिकटुकान्वितम् ॥ ६ ॥

पैत्तिकशिरोरोगचिकित्सा ।

श्वासस्तृष्णा तथा स्वेदः शूनभावोऽपि वर्त्मनीः ।
 अत्युष्णता गुरुत्वञ्च शिरसो यस्य जायते ॥ ७ ॥

अधोमुखस्य वाहस्य निद्रालस्य तथा नृणाम् ।
 पित्तोद्भवं शिरोरोगं जानीयान् मतिमान् भिषक् ॥ ८ ॥
 शङ्खादिकं शिरावेधं पूर्वोक्तञ्चैव कारयेत् ।
 शिरोऽभ्यङ्गो हितस्तस्मै शतधीतेन सर्पिषा ॥ ९ ॥
 प्रपौण्डरीकं मधुकं चन्दनोशीरपद्मकैः ।
 एभिः कल्कौक्तैस्तस्य शस्तं मूर्ध्नि प्रलेपनम् ॥ १० ॥
 क्षीरेण साधितं सर्पिर्मधुकोशीरपद्मकैः ।
 एभिः कल्कौक्तैर्देयं तस्य नासावसेचनम् ॥ ११ ॥
 तिक्तमुद्गान् घृतान् भक्तान् भोजनं तस्य दापयेत् ।
 घासे दूर्वाजुनो वापि तथा शालेश्च पल्ववान् ॥ १२ ॥

श्लेष्मिकशिरोरोगचिकित्सा ।

मुखेन नामयोर्वापि यः श्लेष्माणं प्रमुञ्चति ।
 दीनोऽतीव गुरुशिरा मेदसा शूनतालुकः ॥ १३ ॥
 तस्य विद्यात् कफोत्पन्तु शिरोरोगं विचक्षणः ।
 तालुकं वेधयेत्तस्य शिरां शङ्खादिकान्तथा ॥ १४ ॥
 विडङ्गं कटुचूर्णञ्च तिक्तवार्त्ताकुमेव च ।
 पिष्ट्वा क्षीरेण छागेन नस्यं तेनैव दापयेत् ॥ १५ ॥
 नागरं शतपुष्पञ्च तगरञ्च हरेणुकम् ।
 कल्कं कृत्वा गवां मूत्रे पचेत्तैलं विचक्षणः ॥ १६ ॥
 तेन नस्यं प्रदातव्यं निम्बमुद्गस्य भोजनम् ।
 सुखीणं तस्य कर्त्तव्यं क्षीद्रं त्रिकटुकान्वितम् ॥ १७ ॥

सन्निपातिकशिरोरोगचिकित्सा ।

सङ्कीर्णलक्षणं विद्यात् सन्निपातसमुद्भवम् ।
 असार्धं तं विजानीयात् कञ्चसाध्यमथापि वा ॥ १८ ॥
 शिरावेधं प्रकुर्वीत पूर्वोक्तं तत्र पण्डितः ।
 प्रतिपानञ्च दातव्यं सुरया वक्ष्यमाणकम् ॥ १९ ॥

सुरदार हरिद्रे द्वे पिप्पली शृङ्गवेरकम् ।
 प्रपीणुरीकं मधुकं पत्राणि सुरसस्य च ॥ २० ॥
 श्रौवासकं सर्जरसं त्वचं कुष्ठं हरेणुकम् ।
 घृतेन योजयित्वा तु नासाधूमं प्रदापयेत् ॥ २१ ॥
 भोजनं तिक्तमुद्गैश्च पूर्वोक्तैर्मधुसर्पिषा ।
 असाध्योऽयं प्रवक्तव्यो विधिरश्वहितैषिणा ॥ २२ ॥
 रक्ताभिघातशिरोरोगचिकित्सा ।
 कटुकैर्लवणैरम्बु रसैरत्यन्तसेवितैः ।
 रक्तं कुपितमश्वस्य शिरोरोगाय जायते ॥ २३ ॥
 शूननासाचिकूटस्तु रक्तनेत्रः सुदुर्मनाः ।
 कदाचिद् दृश्यते तस्य रक्तं नेत्राद्विनिर्गतम् ॥ २४ ॥
 रक्तजं तस्य जानीयात् शिरोरोगं विचक्षणः ।
 अभिघातसमुत्थस्य लक्षणं प्रवदाम्यहम् ॥ २५ ॥
 काष्ठलोष्टप्रहारैस्तु शिरो यस्याभिहन्यते ।
 स्तब्धकर्णो गुक्षशिरा भवेद्वाजी सुदुर्मनाः ॥ २६ ॥
 पित्तजे या क्रिया प्रोक्ता शिरावेधादिका मया ।
 रक्तजे सा प्रयोक्तव्या तथा चैवाभिघातजे ॥ २७ ॥
 प्रोथतेऽन्तःशिरो यस्य यस्य नासासमुद्भवाः ।
 दृश्यन्ते क्लमयश्चापि क्लमिजं तस्य निर्दिशेत् ॥ २८ ॥
 त्रिकण्डुश्च विडङ्गश्च वार्त्ताकीनां फलानि च ।
 सुरया मर्दयित्वा तु नस्यं तैलेन दापयेत् ॥ २९ ॥
 फलानि वृहतीनाञ्च तिक्तवार्त्ताकुमेव च ।
 पिष्ट्वा च छागचीरेण नस्यं तेनैव दापयेत् ॥ ३० ॥
 नागरं शतपुष्पञ्च तगरञ्च हरेणुकम् ।
 कल्कं कृत्वा गवां मूत्रे तैलं तेनैव पाचयेत् ॥ ३१ ॥
 तेन नस्यं प्रदातव्यं तिक्तमुद्गैश्च भोजनम् ।

सुखीणां तस्य कर्त्तव्यं विडङ्गं घृतयोजितम् ॥ ३२ ॥
 विडङ्गं लसुनं लोभ्रं बृहतीनां फलानि च ।
 कल्कीकृत्य गवां मूत्रैस्तैलं तेनैव पाचयेत् ॥ ३३ ॥
 नस्यं दद्यात् सुखीणेन तेन तैलेन बुद्धिमान् ।
 भोजयेत्तिक्तमुद्गैश्च विडङ्गघृतयोजितैः ॥ ३४ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे शिरोरोगे
 एकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

लङ्घितलक्षणम् ।

लङ्घितं द्विविधं प्रोक्तं मुनिभिः शास्त्रशालिभिः ।
 एकं वातादिभिर्दोषैर्द्वितीयञ्चाभिघातजम् ॥ १ ॥
 चिकित्साञ्चैव वक्ष्यामि संक्षेपेण यथाक्रमम् ।
 पारम्पर्येण शास्त्राणां यथा दृष्टं तपोधनैः ॥ २ ॥
 उरसा बाहुना चाश्वो जानुजङ्घात्रिकेण च ।
 कूर्चेन च खुराग्रेण मण्डूक्या चापि लङ्घति ॥ ३ ॥
 चिकित्सा ।

अभिघातं विना वाजो यदा दोषेण लङ्घति ।
 उपवासैस्तु संशोध्य घृतं वै सुरयान्वितम् ॥ ४ ॥
 शीतकाले प्रदातव्यं प्रतिपानं प्रदापयेत् ।
 हरिद्रातिविषालोभ्रपिप्पल्या च महीषधैः ॥ ५ ॥
 आयमाणा वचाकुष्ठमुस्ताकट्फलसैन्धवैः ।
 प्रतिपानं हितं दृष्टं सुरया सौधुनापि च ॥ ६ ॥
 तीक्ष्णशीतं समालोक्य कालं शास्त्रविशारदः ।
 एवं प्रतिदिनं कुर्यात् त्र्यहं समाहमेव च ॥ ७ ॥

अनन्तां वेधयेद्द्वेद्यः शिरां शस्त्रेण चौरसीम् ।
 शिरासावे कृते चापि यदि नो जायते सुखम् ॥ ८ ॥
 तदा वङ्गिः प्रदातव्यो यथाशास्त्रं विचक्षणैः ।
 शिंशपांपाठमूलैश्च वल्कलैः कथितैर्जले ॥ ९ ॥
 सर्पिस्तैलसमायुक्तो गुग्गुलुर्लङ्गिने हितः ।
 अभिघातसमुद्भूते क्रियां वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १० ॥
 लिङ्गिते मुनिभिः प्रोक्तं वाजिनां हितकाम्यया ।
 उरसोऽभ्यञ्जनं कार्यं शतधौतेन सर्पिषा ॥ ११ ॥
 पञ्चवल्कलकल्केन लेपं दद्यान्मुहुर्मुहुः ।
 एवं प्रतिदिनं कुर्यात् सप्ताहञ्चापि सप्तकम् ॥ १२ ॥
 निश्चलस्य तुरङ्गस्य पञ्चाहं वा चतुर्गणम् ।
 भ्रामयित्वा समं वैद्यस्ततः सम्यक् निरूपयेत् ॥ १३ ॥
 तृतीये सप्तके पूर्णं तुरङ्गं शास्त्रकोविदः ।
 अश्वौ पूर्वमुद्दिष्टं शिरावेधादिकक्रमम् ॥ १४ ॥
 कुर्याद्बृष्टतले वाहे वङ्गिदाहावसानिकम् ।
 अभिघातलङ्गिते वै न हितं क्रमणं भवेत् ॥ १५ ॥
 कपिकच्छुवलाबालपा रिभद्रकसैन्धवैः ।
 कपिकच्छुकवाद्यालं पादशेषव्यवस्थितम् ॥ १६ ॥
 आर्द्रसिन्धुहरिद्राणां चूर्णं दत्त्वा तु बुद्धिमान् ।
 तैलन्तु व्योषचूर्णेन रसवर्जन्तु दापयेत् ॥ १७ ॥
 तस्मिन् दिने भोज्यपानं दापयेत्तु मनागपि ।
 पश्चात्काये लिङ्गिते तु अनुवासस्तु केवलः ॥ १८ ॥
 सर्वाः प्राक्कायिकाश्चापि चिकित्साः परिकीर्त्तिताः ।
 सर्वेषु चैव लङ्गेषु अनुवासस्तु केवलः ॥ १९ ॥
 सर्वेषु चैव लङ्गेषु समीपे वेधयेत् शिराम् ।
 उरो लङ्गो चिताश्चैव क्रियाः सर्वाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥

त्रिकलिङ्गीति यः प्रोक्तो हरिर्वर्तकटिस्तु सः ।
 श्रीपाण्डोर्वेधयित्वा तु शिरास्तस्य विचक्षणः ॥ २१ ॥
 भोजनञ्च निरूहञ्च सम्यगेव प्रदापयेत् ।
 तैलैर्वर्तहरैर्वेद्यस्तथा चाभ्यङ्गमेव च ॥ २२ ॥
 त्रिपाच्च यः स्थितो भूमिं खुराग्रेण स्पृशेद् यदि ।
 ध्यायते निश्चलो यश्च तं हयं शुद्धमादिशेत् ॥ २३ ॥
 अग्रकायेण यो याति स शुद्धः परिकीर्तितः ।
 पश्चात्कायोत्थितश्चाग्रे दृढः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥ २४ ॥
 निद्रायमाणो यो वाजी निम्नोरस्को भवेद् यदि ।
 अङ्गुलं द्व्यङ्गुलं वापि स तु ग्राह्यो विचक्षणेः ॥ २५ ॥
 अत ऊर्ध्वं न गृह्णीयाद् वायोर्बलसमन्वितम् ।
 अथवाप्यमकूटेन द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥ २६ ॥
 वेगेन गतिभिश्चैव तुल्यो भवति यो हयः ।
 स वै वातकटिर्ज्ञेयो न ग्राह्यो बलवानपि ॥ २७ ॥
 पुलिनश्चैव यो वाजी गच्छन्नुद्वहते कटिम् ।
 सोऽपि वाताभिभूतोऽश्वो न योज्यो वाजिकर्मणि ॥ २८ ॥
 उरो रक्षति वाहस्य वर्ज्या दृष्ट्वाभिकुञ्चनम् ।
 कर्णयोर्व्यस्तसंन्यस्तो वाजी वातहतः स्मृतः ॥ २९ ॥
 पश्चात्पादं खुराग्रेण भूमौ भ्रश्य तु गच्छति ।
 तदा किञ्चन वाहो वा न योज्यो वाजिकर्मणि ॥ ३० ॥
 प्रध्यायमानो यः पश्चाद्रज्जुमाकृष्य सर्वदा ।
 वातभुग्मकटिर्वाजी स विज्ञेयो ह्यकिञ्चनः ॥ ३१ ॥
 उत्तिष्ठत्यग्रकायेण यो लुठित्वाग्रतो हयः ।
 पश्चात् पश्चिमकायेन सोऽपि वातहतः स्मृतः ॥ ३२ ॥
 वान्त्रितं सुदृढं वाहं स्नातं पीतोदकं तथा ।
 वारितञ्च सुखासीनं ध्यायन्तश्च निरूहयेत् ॥ ३३ ॥

द्विरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ।

निरूहयेत्तरङ्गन्तु त्रिकलिङ्गिकशङ्कया ॥ ३४ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे

लङ्किते द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

कर्णरोगनिदानचिकित्सिते ।

दोषैः सन्दूषिते रक्ते अथवाप्यभिघाततः ।

वाजिनां कर्णरोगस्तु क्लेशशोथान्वितो भवेत् ॥ १ ॥

पूयस्त्रावेण जानीयात् शोथमभ्यन्तरोद्भवम् ।

पिचुना वेष्टयित्वा तु शलाकाग्रं समाहितः ॥ २ ॥

तेन कर्णान्तरे पूयं कर्षयित्वा विचक्षणः ।

पातितस्य सुवहस्य पूरयेन्मधुसर्पिषा ॥ ३ ॥

कुष्ठं मागधिका लोध्रं मधुकं चन्दनं तथा ।

एभिः सिद्धं घृतं दृष्टं कर्णपूरणमुत्तमम् ॥ ४ ॥

पिष्टा कुटजबीजन्तु यष्टीमधुसमन्वितम् ।

घृतेनालोढ्य मतिमान् कुर्याद्वस्त्रपरिस्तुतम् ॥ ५ ॥

पूरयेत्तेन कर्णन्तु सुखीणैव बुद्धिमान् ।

रसेन च कपित्थस्य युक्तेन मधुसर्पिषा ॥ ६ ॥

त्वक्पत्रे क्षीरवृक्षस्य सर्पनिर्मोकमेव च ।

गोलोम गुग्गुलुं कुष्ठं मेषोर्णां च मनःशिलाम् ॥ ७ ॥

घृतेन मर्दयित्वा तु धूपं कर्णे प्रदापयेत् ।

भोजयेत् पिप्पलीयुक्तान् सुङ्गांश्च क्षौद्रयोजितान् ॥ ८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे कर्णरोगे

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

कासरोगनिदानलक्षणानि ।

त्रयो वातादिभिर्दोषैः सन्निपातेन चापरः ।
क्षतक्षयसमुत्थौ हावेवं कासस्तु षड्विधः ॥ १ ॥
रूक्षो यस्य भवेत् कासः श्लेष्मसावविवर्जितः ।
क्षीणस्य वर्द्धते चापि वातिकं तस्य निर्दिशेत् ॥ २ ॥
दाहस्वेदयुतः कासो नीलपीतकफान्वितः ।
विच्छिन्नश्च तुरङ्गाणां विज्ञेयः पित्तसम्भवः ॥ ३ ॥
अधिकं कासते वस्तु हृष्टरोमाः सुदुर्मनाः ।
गुरुगात्रशिरा वाजी मन्दग्रासविचेष्टितः ॥ ४ ॥
दधिकुन्देन्दुसङ्काशं श्लेष्माणं यो विमुञ्चति ।
ग्रासाभावे सुखौ यस्य तस्य विद्यात् कफात्मकम् ॥ ५ ॥
सर्वेषां लक्षणैर्युक्तं जानीयात् सान्निपातिकम् ।
कषायेण च रक्तेन श्लेष्मा क्षतजसम्भवः ॥ ६ ॥
प्रसारयति यो गात्रं श्रीवाञ्चापि विशेषतः ।
कासमानो ह्यो दीर्घं भिन्नरोमातिदुर्बलः ॥ ७ ॥
दुर्गन्धिपूयसङ्काशं यश्चैव कफमुद्दिरेत् ।
तस्य विद्याद् बुधः कासं ह्यस्य क्षतसम्भवम् ॥ ८ ॥

वातकासचिकित्सा ।

वातकासाभिभूतस्य पानं दद्याद्विचक्षणः ।
पञ्चमूलकषायेण कृत्वा मांसरसं बुधः ॥ ९ ॥
गोक्षीरं शर्करायुक्तं पिप्पली नागरान्वितम् ।
तिलतैलेन संयोज्य भोजयेत्तवणान्वितम् ॥ १० ॥
दुरालभां कण्टकारीं वृहतीं कटुरोहिणीम् ।
पिष्ट्वा वार्त्ताकुयूषेण तैलसिद्धेन पण्डितः ॥ ११ ॥

वंशरोचनयायुक्तं चूर्णं गोधूमजं ततः ।
 तेन कल्केन संनीय क्षीरेण विधिवत्पचेत् ॥ १२ ॥
 ततो गुडेन संयोज्य भोजयेत् सर्पिषा सह ।
 घृतेन मधुना युक्तं पायसञ्च प्रदापयेत् ॥ १३ ॥
 वार्त्ताकानां फलैः क्वाथः शुण्ठीमागधिकान्वितः ।
 मूर्च्छितस्त्रिलतैलेन पाने दत्तः खुखावहः ॥ १४ ॥
 मूलकस्य रसञ्चैव वार्त्ताकक्वाथवद्भिषक् ।
 वातिके दापयेत्पानं काशे तैलेन मिश्रितम् ॥ १५ ॥
 कुलत्पदभ्रमूलन्तु घृतगोमेदसा युतम् ।
 धूपोऽनेन प्रदातव्यो नासिकाविवरेण तु ॥ १६ ॥
 पित्तकासचिकित्सा ।
 गृहीत्वा गोमयरसं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ।
 मधुना सर्पिषा चैव लेहं कासे सपैत्तिके ॥ १७ ॥
 पायसं यवचूर्णनं ह्यागक्षीरेण साधितम् ।
 धात्रीमागधिकाचूर्णं भोजयेन्मधुसर्पिषा ॥ १८ ॥
 पिप्पली मधुकाभ्यान्तु बला रोचनया युतम् ।
 पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं ह्यागक्षीरं सशर्करम् ॥ १९ ॥
 एतत्पानं प्रदातव्यं वातकासप्रशान्तये ।
 पटोलपत्रनिःक्वाथे सुस्त्रिबान् भोजयेत्ततः ॥ २० ॥
 सुद्धान् मागधिकायुक्तान् मधुयुक्तेन सर्पिषा ।
 चूर्णमामलकानान्तु वंशरोचनया युतम् ॥ २१ ॥
 पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं सर्पिषा सह साधयेत् ।
 तं लेहं दापयेद्वाहे पिण्डं वा भोजयेत्ततः ॥ २२ ॥
 फलचूर्णञ्च काश्मर्या एवं दद्याद्द्विचक्षणः ।
 लोभ्रचन्दन्यक्ष्याह्वपद्मकैर्घृतयोजितैः ।
 धूपो नासाग्रतः कार्यः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ २३ ॥

श्लेष्मकासचिकित्सा ।

चित्रकं त्रिफलाचूर्णं मुस्तकं कटुकत्रयम् ।
 मधुना दापयेत्क्षेहं श्लेष्मकासार्दिते ह्ये ॥ २४ ॥
 पञ्चतित्तसुसंसिद्धं तिक्तमुद्गञ्च भोजयेत् ।
 मधुना तिलतैलेन युक्तास्त्रिकटुकेन च ॥ २५ ॥
 गवां मूत्रेण सुखिन्नास्त्रिलतैलेन मर्दिताः ।
 व्योषचूर्णसमायुक्ताः कुलत्या भोजने हिताः ॥ २६ ॥
 दन्तीमूलं हरिद्रा च हिङ्गुं च बृहतीफलम् ।
 एतैस्तु धूपयेत्कासे नासिकायां कफात्मके ॥ २७ ॥
 क्षतजे क्षयकासे च पित्तकासोदितां क्रियाम् ।
 कुर्यान्मतिमतां श्रेष्ठो वाजिनां हितकाम्यया ॥ २८ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे कामरोग-
 चिकित्सिते चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

हिक्काश्वासनिदानलक्षणम् ।

मुखेन नासया चैव यः श्लेष्माणं विमुञ्चति ।
 वातिकं शिशिरे काले तस्य श्वासं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥
 शरन्निदाघयोश्चैव श्वासः पित्तेन जायते ।
 दृष्णादाहपरीतस्य स्त्रिन्मगात्रस्य वाजिनः ॥ २ ॥
 मुखेन नासया चैव कफो यस्य प्रवर्तते ।
 प्रावृट्काले वसन्ते वा श्वासस्तस्य कफात्मकः ॥ ३ ॥
 दृक्षा लक्षणसाङ्ख्यमादिशेत् सन्निपातजम् ।
 हन्धजञ्च तथा दाभ्यां दोषाभ्यां जनितं बुधः ॥ ४ ॥

श्वासचिकित्सा ।

पञ्चमूलकषायेण कृत्वा मांसरसं भिषक् ।
 वातश्वासे प्रदातव्यं शाल्यन्नेन च भोजनम् ॥ ५ ॥
 निस्तुषा जलकुम्भस्थाः खादने विहिता यवाः ।
 पित्तश्वासादिर्दिते वाहे पानलेपौ च शीतली ॥ ६ ॥
 इक्षुः शरस्य काशस्य नलवेतसयोस्तथा ।
 मूलकाशः प्रदातव्यः पाने क्षीद्वसितान्वितः ॥ ७ ॥
 वस्तिश्चैव जलक्षीरेः पित्तश्वासे प्रकीर्तितः ।
 मुहुर्मुहुश्च पङ्केन प्रलेपश्च हितस्तथा ॥ ८ ॥
 राम्ना गोक्षीरपानञ्च शर्करा मधुमूर्च्छितम् ।
 पञ्चतिकेन सिद्धस्य अक्षपानञ्च सर्पिषा ॥ ९ ॥
 उशीरं पद्मकं मूर्धाकाशमर्थ्याश्च फलं सितम् ।
 शीतेन वारिणा दद्यात् पानं क्षीद्वेण योजितम् ॥ १० ॥
 पचनाडीं मयूरस्य जङ्घां वा चर्म वा भिषक् ।
 दग्ध्वा लेहं प्रकूर्वीत घृतेन मधुना सह ॥ ११ ॥
 मयूरनाडीकल्केन शलाकां शल्लकस्य च ।
 दद्यादस्थीनि वा प्राज्ञः पित्तश्वासोपशान्तये ॥ १२ ॥
 वार्त्ताकयूषः पानाय तिलतैलेन योजितः ।
 श्वासे कफात्मके देयस्तिक्तमुद्गांश्च भोजयेत् ॥ १३ ॥
 इन्द्रजे द्विविधो देयः सङ्कीर्णः सान्निपातिके ।
 श्वासोक्ता याः क्रियाः सर्वा लेहपानादिपूर्विकाः ।
 प्रयोक्तव्यास्तु हिक्कायां वाजिनां हितमिच्छता ॥ १४ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे
 हिक्काश्वासे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

व्रणनिदानलक्षणानि ।

आगन्तुकं दोषजञ्च व्रणं विविधमुच्यते ।

लक्षणञ्च चिकित्साञ्च तस्य वक्ष्यामि शास्त्रतः ॥ १ ॥

दोषजं शोथपाकोत्थं व्रणं विद्याद्विचक्षणः ।

शस्त्रघातादिजञ्चैव ज्ञेयमागन्तुकं तथा ॥ २ ॥

चिरपाकं चिरस्पृशं ज्ञेयं वातात्मकं बुधैः ।

पित्तजं शीघ्रपाकञ्च कण्डूदाहसमन्वितम् ॥ ३ ॥

घनञ्चोत्सेधसंयुक्तं श्लैष्मिकं मन्दवेदनम् ।

व्रणं चिरविपाकञ्च श्वेतवर्णं समादिशेत् ॥ ४ ॥

सर्वरूपैस्तु संयुक्तं विज्ञेयं सन्निपातजम् ।

द्विरूपं हृद्दजञ्चापि कीर्तितं मुनिसत्तमैः ॥ ५ ॥

दुष्टं संशोधयेत्प्राज्ञः शुद्धञ्चापि प्ररोहयेत् ।

आनुपूर्व्या यथायोगं व्रणं शास्त्रविशारदः ॥ ६ ॥

उत्सन्नञ्चैव दुर्गन्धि स्फुटितं पिङ्गकान्वितम् ।

अशुद्धं निर्दिशेद्द्वैद्यो व्रणं शुद्धं विपर्यये ॥ ७ ॥

व्रणचिकित्सा ।

दन्तीमूलं हरिद्रे द्वे चित्रकं विश्वभेषजम् ।

रसोनं सैन्धवञ्चापि तक्रकाञ्चिकयोजितम् ॥ ८ ॥

दुष्टव्रणानां सर्वेषां शोधनाय प्रकीर्तितम् ।

तिलशक्तुकपिण्डञ्च दधियुक्तञ्च सैन्धवम् ॥ ९ ॥

निम्बपत्रयुतं पिण्डं तिलकल्कस्य बुद्धिमान् ।

मधुसैन्धवसंयुक्तं दद्याद् व्रणविशुद्धये ॥ १० ॥

मधुसैन्धवहीनोऽयं पिण्डो निम्बतिलोद्भवः ।

प्रवरो रोपणीयानां व्रणे शुद्धिसमन्विते ॥ ११ ॥

दाडिमामलकागस्तिकपित्यानां विचक्षणः ।
 त्वक्चूर्णं दापयेत् शुद्धे व्रणे चोत्तानके भिषक् ॥ १२ ॥
 व्रणे रुद्धे प्रदातव्यं रोमसंजननं परम् ।
 चूर्णं मुनिमुखोद्गीर्णं वक्ष्यमाणमिदं ततः ॥ १३ ॥
 खुरचर्मास्थिबालञ्च दन्तशृङ्गनखं तथा ।
 गवादीनां यथालाभं कटाहं कच्छपस्य च ॥ १४ ॥
 गृहीत्वा कारयेद्भस्म अन्तर्दग्धं विचक्षणः ।
 तद्दद्याद् घृततैलाभ्यां रोम्णां संजननं परम् ॥ १५ ॥
 अश्वमारकदल्यर्कस्रुहीहाटकचित्रकैः ।
 पचेत्तैलं सभस्नातं नाडीव्रणहरं परम् ॥ १६ ॥
 आगारधूमं संपिथ्य गोमूत्रेण विचक्षणः ।
 नाडीं प्रपूरयेद् युक्त्या तदुपद्रवशान्तये ॥ १७ ॥
 नाडीव्रणो यदा शुद्धिं भेषजेन न गच्छति ।
 तदा वङ्गिः प्रदातव्यस्तथाच पित्तजे व्रणे ॥ १८ ॥
 सरक्ते तत्क्षणीञ्जुते व्रणे आगन्तुके भिषक् ।
 मूलकादिभिरम्लस्थैः कुर्यात् खेदं विचक्षणः ॥ १९ ॥
 ततो मधुककल्कन्तु दद्यात् क्षौद्रघृतान्वितम् ।
 बध्नीयाद्दहस्त्रपट्टेन मुहुः सिञ्चेच्च सर्पिषा ॥ २० ॥
 पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपयेत् ।
 शुष्कग्रासं भिषग्दत्त्वा पाने स्तीकं जलं तथा ॥ २१ ॥
 पूयभावे गते तस्मिन् पूर्वीक्ताः शोधनादिकाः ।
 दोषजोक्ताः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः सावसानिकाः ॥ २२ ॥
 अवगाढं चिरोद्भूतं मांसमज्जास्थिसंस्थिरम् ।
 कच्छसाध्यमसाध्यं वा व्रणं विद्यात् समाहितः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे ।

व्रणरोगे षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

वातादिसिद्धानलक्षणानि ।

वातिके पैत्तिके चैव श्लैष्मिके सान्निपातिके ।
सिद्धानके प्रवक्ष्यामि लक्षणं भेषजं तथा ॥ १ ॥
तनुस्रावं सफेनञ्च वातिकं तत् प्रकीर्तितम् ।
रक्तपीतासितैः स्रावैर्विन्द्यात् पित्तसमुद्भवम् ॥ २ ॥
घनेन दधिवर्णेन कफजञ्चैव निर्दिशेत् ।
नानावर्णेन जानीयादसाध्यं सान्निपातिकम् ॥ ३ ॥

तच्चिकित्सा ।

शिरसः स्वेदनं कुर्याद् वातिके श्लैष्मिके तथा ।
प्रियङ्गुचन्दनोशीरेः शिरोलेपस्तु पित्तजे ॥ ४ ॥
सिंघानकेषु सर्वेषु शङ्खयोस्तालुके तथा ।
शिरावेधं प्रशंसन्ति मुनयः शास्त्रकोविदाः ॥ ५ ॥
गोमूत्रेण च संपिथ्य बृहती गौरसर्षपान् ।
तिक्तवार्त्ताकवीजानि तैलेनालोढ्य दापयेत् ॥ ६ ॥
नस्यं सिंघानके प्राञ्चो वातिके श्लैष्मिके तथा ।
घासाद्यं विहिता दूर्वा पाने चाल्पजलं तथा ॥ ७ ॥
नाडिकाग्रे व्योषचूर्णं दद्यात् नासापुटान्तरे ।
पश्चिमे नाडिकाच्छिद्रे मुखवातं प्रपूरयेत् ॥ ८ ॥
एष प्रथमनो नाम विधिः श्लेष्मापकर्षणः ।
सिंघानके प्रयोक्तव्यं शिरसश्च विरेचनम् ॥ ९ ॥
व्योषचूर्णं विधानेन अन्यैर्वा कटुचूर्णकैः ।
दापयेत् श्लेष्मशमनं नस्यं तैलञ्च साधितम् ॥ १० ॥

पुनर्नवा विडङ्गश्च सरलं देवदारु च ।
 रजनी चैव वाराही बलामूलं तथैव च ॥ ११ ॥
 एतानि समभागानि कल्कं कृत्वा विचक्षणः ।
 पञ्चमूलकषायेण पाचयेत्तैलमुत्तमम् ॥ १२ ॥
 तेन नस्यं प्रदातव्यं वातश्लेष्मसमुद्भवम् ।
 सिद्धानके तुरङ्गाणां कटुचूर्णावचूर्णितम् ॥ १३ ॥

मञ्जिष्ठा मधुकं लोध्नं पिप्पली रजनीद्वयम् ।
 नस्यं क्षीरेण दातव्यं पित्तसिद्धानकापहम् ॥ १४ ॥
 लोध्नं प्रपौण्डरीकश्च मधुकञ्चोत्पलं तथा ।
 कल्कं कृत्वा पचेत्तैलं पयसा वारिणा सह ॥ १५ ॥
 पित्तसिद्धानकार्तस्य तैलेनानेन बुद्धिमान् ।
 नस्यं दद्याद् यथायोगं तेन सम्यद्यते सुखम् ॥ १६ ॥
 दत्तनस्यं ततो वाहं बद्ध्वा जङ्घाद्वयेऽग्रिमे ।
 पृष्ठे च ताडयित्वा तु भ्रामयेत् प्रोथयेत्ततः ॥ १७ ॥
 एवं श्लेष्मा विनिर्याति तस्य नासान्तरोद्भवः ।
 प्रतिप्रभातं कुर्वीत क्रियामितां समाहितः ॥ १८ ॥
 तारयेद्वा जलं निम्नं प्रोथयेद्वा विचक्षणः ।
 नासाच्छिद्रे विनिःक्षिप्य सूक्ष्मैलां चूर्णितां मनाक् ॥
 गुडूच्यास्त्रिफलायाश्च निम्बवासकयोस्तथा ।
 काथे मुद्गान् समुत्स्विद्य सुखोष्णान् स्थापयेत्ततः ॥ २
 पञ्चमूलकषायेण रसैर्मांसस्य साधितैः ।
 मर्दयित्वा ततस्तैलं दत्त्वा मधु च भोजयेत् ॥ २१ ॥
 श्लेष्मजे वातजे चैव कटुचूर्णं प्रदापयेत् ।
 तित्तमुद्गा घृताभ्यक्ताः पित्तसिद्धानके हिताः ॥ २२ ॥

न दद्यात् पित्तजे तैलं केवलं विहितं घृतम् ।

इन्द्रजे च भिषग्भिद्धान् कुर्यात् साधारणीं क्रियाम् ॥ २३

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे सिद्धान्त-
चिकित्सिते सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

घृण्णिरोगचिकित्सा ।

नामिकाभ्यन्तरे यस्य पिङ्गकानां समुद्भवः ।

व्रणं वा यदि वा शोथः तस्य विद्याद् घृणी रुजम् ॥ १ ॥

प्रोथजां वेधयेत्तस्य शिरां शोथे विचक्षणः ।

अथवा शोणितं दुष्टं कर्षयेच्च जलौकसा ॥ २ ॥

धरण्यां पातयित्वा तु दृढं बद्ध्वा तुरङ्गमम् ।

नासापुटं ततः शस्त्रैः पाटयित्वा विचक्षणः ॥ ३ ॥

उत्कृत्य पिङ्गाग्रन्थिं दहेत्सोहशलाकया ।

उत्थिते तु ततो वाहे घृताभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ ४ ॥

शीतेनाश्वरोतयंद्वेद्यः पञ्चवल्कलवारिणा ।

सुहुर्महुर्व्रणं प्राज्ञो घृतयुक्तेन वाजिनः ॥ ५ ॥

गुग्गुलं पाययेत्तच्च त्रिफलाक्वाथयोजितम् ।

दूर्वाञ्च यवसं दद्यात्तप्तशीतं जलं तथा ॥ ६ ॥

निम्बपत्रं जलोत्स्निग्धं भोजयेन्मधुसर्षपा ।

अन्यैर्वा तित्तकैः सिद्धान् मुद्धान् हरितपीतकान् ॥ ७ ॥

लोहितं चन्दनं लोध्रं मधुकं हरितालकम् ।

कालेयं लवणं लाक्षामजाक्षीरेण साधयेत् ॥ ८ ॥

कल्केनानेन सिद्धञ्च तिलतैलेन मिश्रितम् ।
 नस्यार्थञ्च कृतं तैलं घृणिरोगेषु चोत्तमम् ॥ ८ ॥
 नावनं कृतमश्वानां नासात्रणविशोधनम् ॥ १० ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे घृणिरोग-
 चिकित्सिते अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पादरोगसंख्या ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पादरोगविनिश्चयम् ।
 लक्षणञ्च चिकित्साञ्च यथाशास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥
 मण्डूकतापः पांशुखुरस्तथा चैव पुनः खुरः ।
 आम्रावौ चूर्णिकोऽध्यस्थि ऊर्मिकश्चक्रवालिकः ॥ २ ॥
 उलूकपादः संस्थानः तदा पादविरालिका ।
 आमण्डक उपजङ्घी च दर्भकश्च प्रप्रोटकः ॥ ३ ॥
 कदम्बको घृष्टतलस्तथा भिन्नखुरोऽपरः ।
 मृदुमांसखुरौ द्वौ तु पिच्छपादसकेशिनौ ॥ ४ ॥
 एते पादगता रोगास्तुरङ्गाणां प्रकीर्तिताः ।
 एषां चिकित्सां वक्ष्यामि शालिहोत्रादिसम्प्रताम् ॥ ५ ॥
 मण्डूकतापो मण्डूक्यां व्रणेनाश्वस्य जायते ।
 अभिघातसमुत्थेन दुष्टकर्दमकेन च ॥ ६ ॥
 पांशुभिः शर्कराभिश्च पूर्यते यस्य कोटरम् ।
 तले तस्य विजानीयाद्गोमं पांशुखुरं भिषक् ॥ ७ ॥
 घृष्टं भूमि तलं यस्य ताम्नी भवति वाजिनः ।
 तस्य घृष्टतलो नाम पादरोगः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

आस्राविणं विजानीयात् क्लेदस्रवतलं हयम् ।
 सूक्ष्मचूर्णतलस्रैव चूर्णकीलः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥
 केशाकाराणि मांसानि यस्य स्युस्तलजानि च ।
 मांसकेशीति तं विद्यात्तलं वाहस्य बुद्धिमान् ॥ १० ॥
 मण्डूक्या विवरं यस्य दर्भमुञ्जकरं भवेत् ।
 तस्य दर्भक इत्युक्तो व्याधिः कष्टचिकित्सितः ॥ ११ ॥
 पार्णिजाः पिण्डिका यस्य दृश्यन्ते तीव्रवेदनाः ।
 तस्य विन्द्याङ्घ्रिषग्व्याधिं घोरं पादविरालिकम् ॥ १२ ॥
 प्रसरन्ति खुरा यस्य अथवा पादुकोपमाः ।
 पुनःखुरीति तं विद्यादश्वं विह्वलगामिनम् ॥ १३ ॥
 ऊर्मिकञ्चोर्मिसंस्थानैर्बलिभिः खुरसम्भवैः ।
 विन्द्याङ्घ्रिखुरं चैव यस्यान्यो जायते खुरः ॥ १४ ॥
 बहुमांसखुरस्रैव ज्ञेयो मांसखुरो हयः ।
 मृदुखुरश्च विख्यातो मृदुर्यस्य खुरो भवेत् ॥ १५ ॥
 क्लिद्यन्ते बलयो यस्य खुरसन्धिसमुद्भवाः ।
 अक्लिन्ना वाथ सरुजस्तं विन्द्याच्चक्रवालिकम् ॥ १६ ॥
 कूर्चमाहृत्य यः शोथो जङ्घायामुपजायते ।
 उलूकपादो विज्ञेयो न च शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ १७ ॥
 रोमान्तः श्रूयते यस्य समन्तान्नैव पच्यते ।
 क्लेदस्र पिच्छलो यस्य पिच्छपादीति तं विदुः ॥ १८ ॥
 प्रावृट्काले व्रणं यस्य जङ्घायामुपजायते ।
 स्थाणुरोगः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ १९ ॥
 ऊर्ध्वभागे च कूर्चस्य मृद्वी या गुटिका भवेत् ।
 आमण्डकाभिधो नाम्ना जङ्घापार्श्वसमुद्भवः ॥ २० ॥
 प्रपोटकं विजानीयाद् ग्रन्थिभिः कूर्चसम्भवैः ।
 आमलक्यस्थिसङ्घाशैः ग्रन्थिभिश्चातिकण्टकैः ॥ २१ ॥

कदम्बफलमात्रस्तु मण्डूकीमध्यसंस्थितः ।

मांसाङ्गुरः कदम्बाख्यः श्लेष्मशोणितसम्भवः ॥ २२ ॥

अथ चिकित्सा ।

सर्वेषां पादरोगाणां शिरावेधः प्रशस्यते ।

तलजायाश्च रोमान्थाः कूर्चजायास्तथैव च ॥ २३ ॥

अभिघातात् खुरतले व्रणं यस्योपजायते ।

दुष्टकर्दमसङ्गाढा तस्य कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ २४ ॥

कृच्छ्रादनकपात्रेण मण्डूक्यां तस्य शोधयेत् ।

अतितीक्ष्णेन शस्त्रेण क्लिन्नमांसञ्च कर्त्तयेत् ॥ २५ ॥

तलजाञ्च शिरां विद्ध्वा रोमान्ताञ्च विचक्षणः ।

मोचयेच्छोणितं दुष्टं कषायैश्चोपनाहयेत् ॥ २६ ॥

गुग्गुलुं पाययेदश्वं त्रिफलाक्वाथयोजितम् ।

एवं यदि न सिध्येत तदा वज्रिं प्रदापयेत् ॥ २७ ॥

दग्ध्वा तमेव पानाय गुग्गुलुं पाययेद्भिषक् ।

सप्ताहं षोडशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ २८ ॥

खादनं नैव दातव्यं दूर्वा च यवसे हिता ।

शृतशीतञ्च पानाय उदकं तस्य कीर्त्तितम् ॥ २९ ॥

तत्र रोगेषु सर्वेषु अयमेव क्रियाक्रमः ।

कर्त्तव्यः सर्वदा वैद्यैः शास्त्रमार्गानुसारिभिः ॥ ३० ॥

छिन्द्याद्ब्रणं ग्रन्थिपुरं रोमान्तादिव्यवस्थितम् ।

प्रयच्छेदविशुद्धन्तु औषधैर्वा विदारयेत् ॥ ३१ ॥

स्रुह्यर्ककरवीराणां चित्रकस्य तथैव च ।

मूलान्युद्धृत्य सर्वेषां गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥ ३२ ॥

एतेन लेपयेदुष्णं व्रणं वाहस्य बुद्धिमान् ।

परिशुद्धन्तु विज्ञाय रोपणीयैरुपक्रमेत् ॥ ३३ ॥

दन्तीचित्रकमूलन्तु स्रुह्यर्कपयसा सह ।

भङ्गातकास्थिकाशीषं स्लेपच्छिघ्रोच्छलिलामपि ॥ ३४ ॥
 एवं यदि सुखी न स्यादग््निकर्म ततःपरम् ।
 दग्ध्वा तं पूर्ववद्वाहं गुग्गुलुं पाययेद्भिषक् ॥ ३५ ॥
 त्रिफलाक्वाथयुक्तस्तु सर्वेषां पादरोगिणाम् ।
 प्रधानो गुग्गुलुर्दृष्टस्तथा दाहश्च वाजिनाम् ॥ ३६ ॥
 आमर्दकं पाटयित्वा दग्ध्वा तत्क्षणमेव च ।
 गुग्गुलुं पाययेत्तावद् यावद्द्रुढं व्रणं भवेत् ॥ ३७ ॥
 माषपर्णीर्यिवांश्चैव न दद्यात्तस्य वत्सरम् ।
 खादनाय समुद्दिष्टा शुष्का दूर्वा मनीषिभिः ॥ ३८ ॥
 आमर्दकविधिः सर्वः कर्त्तव्यः पाटनं विना ।
 प्रपोटकेऽपि वाहस्य छित्वा चैव कदम्बकैः ॥ ३९ ॥
 शिलासदृशकाठिन्यः शोथो जङ्घव्यवस्थितः ।
 अर्धस्थिसङ्गितं विन्द्यान्मृदुश्चैवौपजङ्घिकम् ॥ ४० ॥
 अग्निं दत्त्वा ततो वैद्यः कुर्यादामर्दकक्रियाम् ।
 शिरावेधो विशेषेण उपजङ्घेषु कीर्त्तितः ॥ ४१ ॥
 एतेन यदि चारेण क्रियमाणो न ग्राम्यति ।
 पादरोगे तदा वैद्यः कुर्यात् कर्म पुनः पुनः ॥ ४२ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे पादरोगी
 एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः ।

वातज्वरनिदानलक्षणानि ।

कारणैः पूर्वमुद्दिष्टैः कुपिते मातरिश्चनि ।
 ज्वरो वातात्मिकोऽश्वस्य तदा भवति दुःसहः ॥ १ ॥
 गुरुत्वञ्चीर्णता चैव मस्तकस्योपजायते ।

शीतता पर्वसन्धीनां चलनञ्चैव शङ्कयोः ॥ २ ॥
स्तब्धाङ्गस्य तुरङ्गस्य ग्रासद्वेषेण बुद्धिमान् ।
वातज्वरं विदित्वा तु ततः कुर्यात् प्रतिक्रियाम् ॥ ३ ॥

चिकित्सा ।

त्रिवृतेन प्रसारिण्या अन्यैर्वातविनाशनैः ।
तैलैरभ्यङ्गिभाङ्गस्य कर्त्तव्ये स्वेदमर्दने ॥ ४ ॥
लङ्घनं कारयेत्तावद् यावन्मुक्तज्वरो भवेत् ।
अप्राप्तौ त्रिवृतादीनां तैलयुक्तेन सर्पिषा ॥ ५ ॥
वसायुक्तेन चाभ्यङ्गं तिलतैलेन कारयेत् ।
कषायः पञ्चमूलस्य सुरा गोमूत्रसंयुतः ॥ ६ ॥
निरूहः पिप्पलीकल्कयुक्तोऽतीव प्रशस्यते ।
तैलैर्वातहरैः सम्यक् हितं तस्यानुवासनम् ॥ ७ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

भोजनं विहितं तस्य स्निग्धैर्मांसरसौदनैः ।
निदानैः पित्तजननैः सेवितैः पित्तजो ज्वरः ॥ ८ ॥
स्वेददाहौ वपुःशोषो रक्तनेत्रश्च जायते ॥ ९ ॥
वदरौपत्रफेनेन तस्य गात्रं प्रलेपयेत् ।
वीजयेत्तोयसिक्तैश्च तालहस्तैर्भिषग्वरः ॥ १० ॥
अवगाहे जले चैव स्नापयित्वा च तं हयम् ।
मस्तके दापयेत् प्राङ्गः शीतं धारजलं तथा ॥ ११ ॥
तस्याङ्गं सेचयेद्दध्ना काञ्चिकेन च बुद्धिमान् ।
क्षीरपानञ्च दातव्यं शर्करेक्षुसमन्वितम् ॥ १२ ॥
सकाशदूर्वेक्षुकुशैः क्षीरपिष्टैः सितोत्पलैः ।
घृतयुक्तः प्रलेपश्च तस्य गात्रे प्रशस्यते ॥ १३ ॥
कुशकाञ्चिमुस्तानां कल्कयुक्तः सपञ्चकैः ।
क्षीरवस्तिः क्षृतस्तस्य मञ्जिष्ठा शर्करान्वितः ॥ १४ ॥

सर्पिषा सहितं तस्मै यवान्नं भोजने हितम् ।
 शीतलञ्च जलं पाने ग्रासे दूर्वा च शस्यते ॥ १५ ॥
 पित्तज्वरसमाकारौ रोगशेषौ निरामकौ ।
 रोगे पित्तज्वरे प्रोक्ता तयोस्तां कारयेत् क्रियाम् ॥ १६ ॥
 क्रोधादिभिः अमासैव कटुम्ललवणाशनात् ।
 अनयोः सम्भवः प्रोक्तो ग्रीष्मवातोपसेवनात् ॥ १७ ॥
 श्लेष्मज्वरनिदानम् ।

हेतुभिः श्लेष्मजननैः सेवितैः श्लेष्मसम्भवः ।
 तेन तन्द्रा भवत्यस्य अरुचिर्गात्रसादनम् ॥ १८ ॥
 उष्माभिलाषो वाहानां नासास्त्रावश्च जायते ॥ १९ ॥
 तच्चिकित्सा ।

मरिचञ्चैव पाठाञ्च मुस्तकं कटुरोहिणीम् ।
 पिप्पलीं चैव शुण्ठीं च गुडूचीं चव्यकं वचाम् ॥ २० ॥
 वारिणा क्वाथयित्वा तु पादशेषं समाहरेत् ।
 कषाय एष दातव्यः पाने क्षौद्रेण योजितः ॥ २१ ॥
 पञ्चतिक्तकसिद्धांश्च मुद्गांस्त्रिकटुकान्वितान् ।
 भोजयेन्मधुसंयुक्तान् सुखोष्णांश्चैव बुद्धिमान् ॥ २२ ॥
 वालुकापुटकैः स्वेदो गात्रे मूर्ध्नि च दापयेत् ।
 शङ्खजाञ्च शिरां तस्य मन्याजाञ्चैव वेधयेत् ॥ २३ ॥
 सन्निपातज्वरलक्षणचिकित्साः ।

सर्वेषां चैव रूपाणि कुरुते सान्निपातिकः ।
 असाध्यः स तु विख्यातस्तस्य साधारण्यो क्रिया ॥ २४ ॥
 अभिघातज्वरलक्षणचिकित्सा ।

कासः स्तम्भश्च मूर्च्छा च सशोणितकफोद्गमः ।
 अभिघातसमुत्थे तु ज्वरे जृम्भा च जायते ॥ २५ ॥
 पञ्चवल्कलकल्केन घृतयुक्तेन वाजिनः ।

लेपयेत्तस्य गात्राणि सशिरस्कानि बुद्धिमान् ॥ २६ ॥

चन्दनोशीरमञ्जिष्ठावलामधुकपञ्चकैः ।

पयसा साधितं सर्पिस्तस्य पाने प्रशस्यते ॥ २७ ॥

अनुवासनं निरूहञ्च भोजनञ्चैव पण्डितः ।

पित्तज्वरसमुद्दिष्टं कुर्याद् बुद्धिमतांवरः ॥ २८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे ज्वररोगे
चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अजीर्णलक्षणम् ।

अजीर्णेन भवेद्वाजी मन्दग्रासश्च दुर्मनाः ।

खञ्जपाणिश्च जङ्घाभ्यां कृच्छ्रमूत्रपुरीषकृत् ॥ १ ॥

यदि शोथो न जङ्घाभ्यामातुरस्य न वा व्रणम् ।

अभिघातश्च नो कश्चित् तदाजीर्णेन खञ्जति ॥ २ ॥

तच्चिकित्सा ।

उपवासो हितस्तस्मै तावद्यावत्तु लङ्गति ।

अतिलङ्गं द्रवहादूर्द्ध्वमस्तब्धमपि वारयेत् ॥ ३ ॥

कृतोपवासे वाहे तु यथा तु प्रतिपानकैः ।

प्रतिपानं वारणीयं द्रवञ्च पञ्चाहमेव च ॥ ४ ॥

अशुद्धे चारिते वाहे तथा जातबले भिषक् ।

सप्तरात्रात्परं विद्वान् शिरावेधं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

उरसा खञ्जतोऽश्वस्य औरसीं वेधयेत् शिराम् ।

जङ्घायां जाङ्घिकीञ्चैव कूर्चजाः कूर्चलङ्गिते ॥ ६ ॥

पिण्डं वृद्धतुरङ्गस्य सायं मध्ये न दापयेत् ।

कटुका पिप्पली शुण्ठी वचारामठसैन्धवैः ॥ ७ ॥

अशुद्धे गुग्गुलुर्देयः पूर्वोक्तेनैव कर्मणा ॥ ८ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रेऽजीर्ण-
चिकित्सिते एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

वाताद्यतीसारलक्षणचिकित्सितम् ।

अनिलेनाथ पित्तेन श्लेष्मणा चापि वाजिनः ।

अतीसारस्तथाचान्यः सन्निपातेन जायते ॥ १ ॥

सङ्गोचिताङ्गः स्वानेन सकफं योऽतिसार्थ्यते ।

अल्पं तनु सशब्दञ्च पुरीषं बहु वा हयः ॥ २ ॥

तस्य वातात्मकं विन्द्यादतीसारं विचक्षणः ।

पित्तजञ्चैव वक्ष्यामि श्लेष्मजञ्च समासतः ॥ ३ ॥

स्वेददाहपरीतानां लक्ष्येन्मतिमान् भिषक् ।

स्नावेण नीलरक्तेन विस्रगन्धेन पित्तजम् ॥ ४ ॥

मन्दाहारस्तथा वाहो हृष्टरोमातिपीडितः ।

श्यामैः सपिच्छिलैर्भिन्नैर्विद्व्यात् श्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ५ ॥

सन्निपातात्मकञ्चैव सर्वेषां लक्षणैर्युतम् ।

द्विरूपं इन्द्रजं ज्ञेयमतीसारं विचक्षणैः ॥ ६ ॥

अतीसाराः समुद्दिष्टाः शालिहोत्रादिभिः पुरा ।

एषां चिकित्सां वक्ष्यामि यथाशास्त्रानुसारतः ॥ ७ ॥

येन शाम्यन्ति वाहानामतीसाराः सुदारुणाः ।

वृहतीं शालिपर्णीञ्च पृश्निपर्णीं निदिग्धिकाम् ॥ ८ ॥

विल्बं शुण्ठीं कपित्थञ्च क्वाथयेत्सत्रिकण्टकम् ।

एतेन साधयेत् प्राज्ञो यवागूं शालितण्डुलैः ॥ ९ ॥

दध्नास्त्रेण तु संयुक्तां दद्यात्तां भोजने भिषक् ।
यवागूं साधयेद् यान्तु बृहत्यादिबृहता ॥ १० ॥
काथः पाने प्रदातव्यो वातातीसारशान्तये ॥ ११ ॥

पित्तातिसारचिकित्सा ।

जम्बूाम्रदाडिमानान्तु काथयित्वा त्वचं बुधः ।
मधुना प्रतिपानाय दद्यात् पित्तातिसारिणे ॥ १२ ॥
चूर्णं वा मधुसंयुक्तं तैलयोगेन दापयेत् ।
जम्बूादीनां प्रयोगेण पाठा वा कुटजाम्बिता ॥ १३ ॥
अनेनैव कषायेण साधितां मधुसंयुताम् ।
यवागूं भोजयेद्वाहं रक्तशालेस्तु तण्डुलैः ॥ १४ ॥

श्लेष्मातिसारचिकित्सा ।

बीजं कुटजवृक्षस्य त्वक्चूर्णं दाडिमाश्रयोः ।
मातुलुङ्गरसोपेतं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ १५ ॥
लेहयेन्मधुसंयुक्तं श्लेष्मातीसारशान्तये ।
एतेषां वा कषायन्तु मधुना प्रतिपाययेत् ॥ १६ ॥
अनेनैव कषायेण साधितं यवतण्डुलैः ।
मधुसैन्धवसंयुक्तां यवागूं भोजयेत्ततः ॥ १७ ॥

आमसन्निपातद्वन्द्वजातिसारचिकित्साः ।

पिप्पल्या लवणं शुण्ठी मरिचं चित्रकं वचा ।
आमातीसारिणे देयं सुरया पानमुत्तमम् ॥ १८ ॥
सन्निपातसमुत्थे तु कार्थ्या साधारणी क्रिया ।
द्विरूपे द्विविधा चैव चिकित्सा परिकीर्त्तिता ॥ १९ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रेऽतीसार-
चिकित्सिते द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पञ्चविधशूलनिदानलक्षणानि ।

सौभिक्ष्वोर्द्ध्ववर्त्तिश्च भिन्नवर्त्तिस्तथैव च ।
विवन्धस्नेहवर्त्तिश्च कुक्षौ शूलञ्च पञ्चधा ॥ १ ॥
गुरुभिः खादितैर्नित्यं तथा स्नेहातियोगतः ।
सौभिक्षो जायतेऽश्वस्य आमविद्धे गलक्षितः ॥ २ ॥
यवसं खादनञ्चैव यो वाजी खादितं पुनः ।
मुखेन प्रोद्गिरत्याशु तं विद्यादूर्द्ध्ववर्त्तिनम् ॥ ३ ॥
अतीसारेण संयुक्तं शूलं यस्योपजायते ।
भिन्नवर्त्तीति तं विद्यात्तुरङ्गं दीनचेष्टितम् ॥ ४ ॥
नोत्सृजेद् यः पुरीषं तु सानाहः शूलपीडितः ।
विवन्धवर्त्तिः मास्याहुस्तं विद्यात् कष्टजीवितम् ॥ ५ ॥
भिन्नं स्निग्धं पुरीषञ्च जायते यस्य वाजिनः ।
स्नेहातियोगात्तस्याशु स्नेहवर्त्तिं समादिशेत् ॥ ६ ॥

सौभिक्ष्विविबन्धचिकित्साः ।

सौभिक्ष्वे च विबन्धे च कृत्वा खेदं विचक्षणः ।
वक्ष्यमाणां ततः प्राज्ञः कुर्याद्दर्त्तिक्रियामिमाम् ॥ ७ ॥
आगारधूमं सुरसं पिप्पलीं सर्षपं वचाम् ।
सिन्धुवारीञ्च शुण्ठीञ्च तथा लवणपञ्चकम् ॥ ८ ॥
सुचूर्णं च ततो वर्त्तिं कुर्यात्तप्तगुडेन तु ।
दैर्घ्यं मष्टाङ्गुलं तस्याः स्थौल्यञ्चाङ्गुष्ठसम्पितम् ॥ ९ ॥
प्रक्षिप्रेत्तां गुदेऽश्वस्य व्योषचूर्णावचूर्णितम् ।
सैन्धवक्षीद्रलिप्तान्तु मलप्रच्युतिकारिणीम् ॥ १० ॥
वर्च्यापहृतदोषस्य वर्च्युत्तैर्भेषजैस्ततः ।

सुराकाञ्चिकगोमूत्रैः प्रयुञ्जीतानुवासनम् ॥ ११ ॥
आमं विना यदा शूलो वाताद्भवति दारुणः ।
अनुवासने ततस्त्रैलं दातव्यं पूर्वनोदितम् ॥ १२ ॥
दुर्गन्धं पिच्छिलं भिन्नं पुरीषं श्लेष्मणाहतम् ।
आमं भवति वाहस्य पक्कञ्चैव विवर्जयेत् ॥ १३ ॥
आमं नैव प्रशंसन्ति वाजिशस्त्रविशारदाः ।
दौर्मनस्यारुचिग्लानिविण्मूत्रग्रहकारकम् ॥ १४ ॥
दत्तानुवासने वाहे शुद्धकोष्ठे विचक्षणः ।
अपरेऽह्नि भुञ्जीत प्रतिपानमिदं ततः ॥ १५ ॥
हरेणुकाञ्च कुष्ठञ्च भार्गीं दन्तीञ्च चित्रकम् ।
लवणं व्योषञ्चूर्णञ्च सुरया पाययेद्भिषक् ॥ १६ ॥
घासार्थं दापयेच्चूर्णं पानं कोष्णं जलं तथा ।
एवं यदि सुखी न स्याद्वाहः कुक्षी तदा भवेत् ॥ १७ ॥
सङ्कुलं प्रेक्षते वाजी उत्थानपतनैर्मुहुः ।
कुञ्चितेन च गात्रस्य शूलं स्पष्टं करोत्यलम् ॥ १८ ॥
श्यामजिह्वा समाधाती ध्यायेन्निश्चलबालधिः ।
रक्तमूत्रा ततः शूलो न च शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ १९ ॥
इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे शूलचिकित्सिते
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

उदावर्त्तलक्षणचिकित्सितम् ।

पुरीषं वर्त्तितं यस्य कृच्छ्रं निर्याति वा पुनः ।
वेदनार्त्तस्य वाहस्य तस्योदावर्त्तमादिशेत् ॥ १ ॥

आरग्वधकषायेण मूर्च्छितं घृतयोजितम् ।

यावत्कं भोजने तस्मै स्नेहवस्तिञ्च दापयेत् ॥ २ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे उदावर्त्तचिकित्सिते
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

प्रस्कन्नरोगलक्षणचिकित्सितम् ।

गुरुर्यस्य भवेद्वक्षः स्तब्धगात्रपरिक्रमः ।

कुब्जोभूतेन पृष्ठेन यो वाजी याति बद्धवत् ॥ १ ॥

प्रस्कन्नरोगसन्तप्तं विद्याद् बुद्ध्या च तं भिषक् ।

चिकित्सां तस्य वक्ष्यामि भाषितां मुनिसत्तमैः ॥ २ ॥

आज्यं त्रिकटुकोपेतं पाययेत्तं विचक्षणः ।

ततः स्निग्धस्य कर्त्तव्यः शिरावेधो यद्योदितः ॥ ३ ॥

श्रीरसीं पादिकीं तस्य तलजां कूर्चजामपि ।

पूर्वकाये शिराशस्त्रे भेषजं तद्विचक्षणः ॥ ४ ॥

श्रीपाण्डुं पश्चिमे काये स्थौरिकीं कूर्चजां तथा ।

विध्यात् शिराशस्त्रमुखे देयं कर्दमलेपनम् ॥ ५ ॥

विद्धं न चारयेद्वाहमेकरात्रं विचक्षणः ।

वक्ष्यमाणं ततः पानमपरेऽङ्घ्रिं प्रदापयेत् ॥ ६ ॥

त्रिफलाक्वाथसंयुक्तस्तथा क्षौद्रसमन्वितः ।

गुग्गुलुः प्रतिपानाय देयः प्रस्कन्ननाशनः ॥ ७ ॥

आसार्थं दापयेद्दूर्वाः पाने चैव मधूदकम् ।

अथवा पिप्पलीतीयं प्रशस्तं तस्य वाजिनः ॥ ८ ॥

पञ्चमूलकषायस्तु तिलतैलेन योजितः ।

द्विमन्ते चारसंयुक्तो देयः प्रस्कन्नपीडिते ॥ ९ ॥

यदि सिद्धिर्भवेन्नैव भेषजानामुपक्रमैः ।

तयो वङ्गिः प्रदातव्यो बाह्वोर्वक्षसि कूर्चके ॥ १० ॥

दग्धान्नेर्गुग्गुलुः शस्तो वाहस्य त्रिफलायुतः ।

भ्रामणश्चैव वाहानां प्रस्कन्नव्याधिशान्तये ॥ ११ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे प्रस्कन्नचिकित्स्विते

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

कृमिकोष्ठनिदानचिकित्सितम् ।

कृशस्य यस्य वाहस्य जन्तुभिः परिवेष्टितम् ।

पुरीषं जायते भिन्नं तं विन्द्यात् कृमिकोष्ठकम् ॥ १ ॥

श्लेष्मकोष्ठी समुद्दिष्टो मन्दाहारस्तुरङ्गमः ।

दुर्बलो भिन्नरोमा च गुरुगात्रस्तथैव च ॥ २ ॥

पुरीषं श्लेष्मणा मिश्रं पिच्छिलं तस्य सर्वदा ।

निद्रा च जायतेऽत्यर्थं तन्द्रा चैव समन्विता ॥ ३ ॥

तत्रादौ कृमिकोष्ठस्य क्रियां वक्ष्यामि तत्त्वतः ।

आज्यमस्त्रे प्रदातव्यं मांसक्षीरेण साधितम् ॥ ४ ॥

षष्टिकान्नं तिलाः क्षीरं गुडञ्च दधिमिश्रितम् ।

कृमिकोष्ठाय दातव्यं भोजनं तावदग्रतः ॥ ५ ॥

विडङ्गं चित्रकं पाक्यो दन्ती च निचुलं तथा ।

कम्पिलकञ्च तुल्यांशं कषायं कारयेद् बुधः ॥ ६ ॥

कम्पिलकस्य कल्केन कषायेणामुनैव तु ।

विडङ्गचूर्णसंयुक्तं सिद्धं सर्पिः प्रदापयेत् ॥ ७ ॥

घृतं विडङ्गसंयुक्तं सिद्धसर्पिः प्रदापयेत् ।

दन्तीकषायकल्केन साधितञ्च प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

घृतं विडङ्गसंयुक्तं दृष्टकर्मा विचक्षणः ।
 द्वे हरिद्रे विडङ्गानि तथा लवणपञ्चकम् ॥ ९ ॥
 पटोलं निम्बपत्रञ्च वचां चित्रकमेव च ।
 पिप्पली शृङ्गवेरञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १० ॥
 एतत्पानं प्रदातव्यं सुरया कृमिनाशनम् ।
 चूर्णपानप्रयोगोऽयं श्लेष्मकोष्ठे प्रशस्यते ॥ ११ ॥
 मन्दाग्निदीपनोऽत्यन्तं शालिहोत्रेण कीर्तितः ॥ १२ ॥

श्लेष्मकोष्ठनिदानचिकित्सिते ।

श्लेष्मकोष्ठी समुद्दिष्टो मन्दाहारस्तुरङ्गमः ।
 कृमिकोष्ठोदितां कुर्यात् श्लेष्मकोष्ठेऽपि च क्रियाम् ॥ १७ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे कृमिकोष्ठश्लेष्म-
 कोष्ठचिकित्सिते षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

वातादिमूत्रग्रहणलक्षणानि ।

स्तोकं स्तोकं सफेनञ्च कृच्छ्रान्मूत्रं करोति यः ।
 तस्य वातसमुत्पन्तु विद्यान्मूत्रग्रहं बुधः ॥ १ ॥
 दाहोच्छ्वासयुतः पित्तान्मूत्ररोगः प्रजायते ।
 वाजिनः पीतमूत्रस्य मूत्ररोगः प्रजायते ॥ २ ॥
 वाजिनः पीतमूत्रस्य अथवा रक्तमूत्रिणः ।
 कफजे मूत्ररोगे तु सान्द्रमूत्रं सपिच्छिलम् ॥ ३ ॥
 स्तोकं स्तोकञ्च कुरुते वेदनार्त्तस्तुरङ्गमः ।
 एकधा नोदयस्तेषां जायते सन्निपातजः ॥ ४ ॥
 अत्र साधारणीं कुर्याच्चिकित्सां वक्ष्यमाणकीम् ।

मेढ्राभ्यासे तथा वस्तिं घृतेनाभ्यज्य वातिके ।
 मर्दयेत्तदनुस्रोतो लघुहस्तैः शनैः शनैः ॥ ५ ॥
 पाषाणभेदकं शुण्ठी गोक्षुरं वृहतीद्वयम् ।
 एरण्डमूलं वर्षाभूरनन्ता च शतावरी ॥ ६ ॥
 कषायं वारिणा कृत्वा यवानां तण्डुलैर्भिषक् ।
 साधयित्वा ततो मण्डं पाययेद्वातमूत्रिणम् ॥ ७ ॥
 एतेनैव कषायेण मिश्रितं वा सुखावहम् ।
 भवेद् ग्रासश्च पानं वा वातिके मधुमूर्च्छितम् ॥ ८ ॥

पित्तमूत्रग्रहचिकित्सा ।

एर्वाकस्य वीजानि त्रपुषस्य तु पित्तजे ।
 पिष्ट्वा शर्करया सार्द्धं दद्यात्तण्डुलवारिणा ॥ ९ ॥
 शृतं कशेरुशालुकैस्तथा शृङ्गाटकेन च ।
 पाने शस्तं स्मृतं क्षीरं शर्करेक्षुरसान्वितम् ॥ १० ॥
 नलकाशिक्षुदर्भाणां क्वाथं पाने प्रदापयेत् ।
 पित्तमूत्रग्रहे वैद्यः क्षीरवस्तिश्च बुद्धिमान् ॥ ११ ॥
 त्रिके धाराजलं देयं कर्दमालेपनं तथा ।
 शीतं स्थानं हितं प्रोक्तं प्रवातं व्यजनानिलम् ॥ १२ ॥

श्लेष्ममूत्रग्रहचिकित्सा ।

श्वदंष्ट्रां शृङ्गवेरश्च पूतिकं पिप्पलीं तथा ।
 श्लेष्मजे मूत्ररोगे तु लाजमण्डेन दापयेत् ॥ १३ ॥
 कौलत्यं पाययेद् यूषं तिक्तमुद्गैश्च भोजनम् ।
 तैलाभ्यङ्गो भवेद्दस्तौ माषस्वेदः कफात्मके ॥ १४ ॥
 श्वदंष्ट्रा शृङ्गवेरश्च पूतीकं पिप्पली तथा ।
 पित्तमूत्रग्रहप्रोक्तां क्रियां सर्वां प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥
 वस्ती प्रक्षालिते वैद्यस्तुरङ्गाणां विचक्षणः ।
 हितं बलितवस्तिभ्यो लाक्षापत्राङ्गचूर्णकम् ॥ १६ ॥

मधुना सह संयुक्तं पाने गोपयसा युतम् ।
 मूत्रेण सह यस्य स्याद्देदनार्त्तस्य वाजिनः ॥ १७ ॥
 शर्कराणां प्रपातस्तु स ज्ञेयो मूत्रशर्करौ ।
 कुष्ठशिशुविडङ्गानि हिङ्गुतुम्बुरुकं तथा ॥ १८ ॥
 सैन्धवञ्चाशमभेदञ्च कल्कं कृत्वा विचक्षणः ।
 तत्कल्कं यवभक्तञ्च सुरया सह मर्दयेत् ॥ १९ ॥
 मूत्रशर्करिणो दद्याद् भोजने सततं बुधः ।
 रजनीक्षारवङ्गस्म गालयित्वा पलाशजम् ॥ २० ॥
 गृहीत्वा तज्जलं प्राञ्जः पुनः कृत्वा पयःस्रुतम् ।
 ब्राह्मणपामार्गसूक्ष्मैलाकुलत्याष्टकवर्गकैः ॥ २१ ॥
 सुपिष्टं तेन तोयेन पानं शर्करिणो हितम् ।
 शुक्रं मेहति यो वाजी शुक्रमेहीति तं विदुः ॥ २२ ॥
 अयमेव विधिः कार्यः शुक्रमेहेऽपि वाजिनः ।
 षड्वां वाहयेद्वापि दृष्टकर्मा भिषग्वरः ॥ २३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे मूत्रग्रह-
 चिकित्सिते सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

कुष्ठरोगलक्षणचिकित्सितम् ।

अलोमिकां ग्रन्थिमतीं तथा वै व्रणसंयुताम् ।
 त्वचं कुष्ठमहारोगः करोत्यश्वस्य दारुणाम् ॥ १ ॥
 गवां मूत्रपुरीषाभ्यां स्वेदस्तु व्रणिनो हितः ।
 कुष्ठरोगेषु सर्वेषु समीपे वेधयेच्छिराम् ॥ २ ॥
 निम्बपत्रं पटोलञ्च त्रिफला खदिरं तथा ।
 तत्क्वाथं पाययेद्वाहं स्रुतरक्तं विचक्षणः ॥ ३ ॥

ब्राह्मेतत् प्रदातव्यं पानं कुष्ठप्रशान्तये ।
 ततः परं प्रयोक्तव्यं पानं यद्वक्ष्यमाणकम् ॥ ४ ॥
 त्रिवृताञ्च हरिद्राञ्च मदनं कटुरोहिणीम् ।
 पाटलां त्रिफलां दन्तीं निम्बं मूर्वां तथा वचाम् ॥ ५ ॥
 क्त्वा कषायं मतिमान् कुष्ठरोगेषु दापयेत् ।
 पानाय मधुना सार्द्धं सिद्धं भोजनमुत्तमम् ॥ ६ ॥
 लोहितं चन्दनं दूर्वामुशीरं कटुरोहिणीम् ।
 पिष्ट्वा निम्बपटोलञ्च ब्रणे कुष्ठे प्रलेपयेत् ॥ ७ ॥
 अर्काश्वमारयोः पत्रं सर्षपं पिप्पलीं वचाम् ।
 मरिचं शृङ्गवेरञ्च दन्तीमूलं सचित्रकम् ॥ ८ ॥
 गवां मूत्रेण संपिथ्य लवणैः सह योजयेत् ।
 संलिप्य तेन कुष्ठानि ब्रणहीनानि मर्दयेत् ॥ ९ ॥
 ब्रणेषु चैव सर्वेषु तैलं सर्षपजं हितम् ।
 कल्केनानेन संयुक्तमभ्यङ्गे मर्दने सदा ॥ १० ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे कुष्ठचिकित्सिते
 अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथ एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वातादिशोथलक्षणचिकित्साः ।

शोथे चिकित्सां वक्ष्यामि वातपित्तकफान्विते ।
 सन्निपातसमुत्थे च रूपं पञ्चैव कीर्तितम् ॥ १ ॥
 वेदनास्थौल्यसंयुक्तं मृदुस्पर्शञ्च शीतलम् ।
 शोथं वातात्मकं विद्याद्वाजिदेहसमुद्भवम् ॥ २ ॥
 रक्तपित्तेन शोथः स्यात् कृष्णपाकेन संयुतः ।
 वेदनोष्णसमायुक्तो नात्यन्तोच्छूनकस्तथा ॥ ३ ॥

कठिनत्वमहत्वाभ्यां युक्तं रुग्दाहवर्जितम् ।
 श्लेष्मशोथं विजानीयाद्द्रक्तजं पित्तलक्षणम् ॥ ४ ॥
 सर्वलिङ्गं विदुर्वेद्याः सन्निपातसमुद्भवम् ।
 द्विचिह्नं द्वन्द्वजं प्राहुर्मुनयः शास्त्रकोविदाः ॥ ५ ॥
 शोथानां भारतादीनां सर्वदोषापकर्षणम् ।
 एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ॥ ६ ॥
 अनुलेपसहस्राणि अनुलेपशतानि च ।
 रक्तविन्दुविमोक्षस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ७ ॥
 प्रच्छन्नेन जलौकाभिः शिरावेधेन वा भिषक् ।
 सर्वेषामेव शोथानां रक्तमाकृष्य बुद्धिमान् ॥ ८ ॥
 पूर्वशास्त्रममुद्दिष्टां ततः कुर्यात् क्रियामिमाम् ।
 भेषजैः सद्यैः सम्यक् शोथरोगोपशान्तये ॥ ९ ॥
 शोथे वातसमुद्भूते तैलाभ्यङ्गः प्रशस्यते ।
 स्वेदो गोमयपिण्डेन पुटैश्चैरण्डपत्रकैः ॥ १० ॥
 पिप्पलीशुण्ठिवर्षाभूदेवदार्वर्कशिशुभिः ।
 तुरङ्गाणां स्मृतो लेपः शोथे वातसमुद्भवे ॥ ११ ॥
 गोधावती महाकाली वरुणालम्बूषोद्भवैः ।
 मूलैर्गोमूत्रमंपिष्टैः प्रलेपस्तस्य शस्तते ॥ १२ ॥
 पञ्चमूलकषायस्तु तिलतैलेन योजितः ।
 प्रातः पाने प्रयोक्तव्यो भोजने च रसोदनः ॥ १३ ॥

पित्तशोथचिकित्सा ।

मञ्जिष्ठा धातकीलोध्रसारिवानन्तपद्मकैः ।
 प्रलेपाः पित्तशोथेषु क्षीरवस्तिश्च कौर्त्तितः ॥ १४ ॥
 कुशकाशनलेक्ष्णां मूलकाथः सशर्करः ।
 शस्तः पाने प्रभाते तु मधुमात्रासमन्वितः ॥ १५ ॥
 पञ्चतिक्तकसंसिद्धैर्गव्यसर्पिःसमन्वितैः ।

भोजनं विहितं मुद्गैः शालिभिर्वा पयोऽन्वितैः ॥ १६ ॥

श्लेष्मशोथचिकित्सा ।

रूक्षः खेदः प्रदातव्यः दृष्टकासिकतापुटैः ।

श्लेष्मशोथे प्रलीपश्च कर्त्तव्यो यस्तु वातजे ॥ १७ ॥

वचाव्योषविडङ्गैलाकुष्ठजीरकसैन्धवैः ।

गोमूत्रपिष्टैः सुरया प्रतिपानश्च कीर्त्तितम् ॥ १८ ॥

शुण्ठीमरिचसंयुक्ताः पिप्पली चौरुमिश्रिताः ।

सुखिन्ना भोजने शस्ताः कुलत्यास्तैलयोजिताः ॥ १९ ॥

क्रिया साधारणी कार्थ्या सन्निपातसमुद्भवे ।

दन्धजा द्विविधाः प्रोक्ताः शालिहोत्रादिभिः पुरा ॥ २० ॥

रक्तजे पित्तजोद्दिष्टा चिकित्सा परिकीर्त्तिता ।

अभिघातोद्भवे शोथे हितं यत्तद्विवर्त्तते ॥ २१ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन सद्यतेन मुहुर्मुहुः ।

श्रौदुम्बरेण वा विद्वांस्तद्विलेपं प्रदापयेत् ॥ २२ ॥

पूर्वोद्दिष्टेन विधिना मोचयेत्तस्य शोणितम् ।

एवमागन्तुना वाहः शोथेनाशु प्रमुच्यते ॥ २३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे शोथचिकित्सिते

एकीनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

मुष्करोगे

जातास्त्रलक्षणचिकित्सितम् ।

प्रकोपान् मारुतादीनां कारणेः पूर्वचोदितैः ।

अण्डस्कन्दुस्तरङ्गाणां जायते बहुसंज्ञकः ॥ १ ॥

तस्य रूपं चिकित्साश्च भेदश्चैव समासतः ।

प्रवक्ष्यामि यथायोगं वाजिनां हितकाम्यया ॥ २ ॥
 वृषणौ दूषयेद्वायुः श्लेष्मणा यस्य संयुतः ।
 तस्य मुष्कश्चलत्येको रोगो वाताण्डसंज्ञकः ॥ ३ ॥
 यदण्डं कम्पतेऽश्वस्य तेन पादेन खञ्जति ।
 स्तब्धपृष्ठस्य तस्याशु वेदना मुष्कयोर्भवेत् ॥ ४ ॥
 औपाण्डीं वेधयेत्तस्य शिरां पूर्वं विचक्षणः ।
 अभ्यङ्गञ्च भिषक् कुर्यान्मुष्कयोः सर्पिषा ततः ॥ ५ ॥
 सुखोष्णौ रोदनं शस्तं क्षीरैर्गव्यादिभिस्तथा ।
 अनुवासनञ्च कर्त्तव्यं तैलेस्त्रिवृतपूर्वकैः ॥ ६ ॥
 हृद्यगन्धस्य वृक्षस्य मूलमुत्कृत्य पेषयेत् ।
 सघृतं दापयेद्वाहे वातार्त्तस्तेन सिध्यति ॥ ७ ॥
 सौवर्चलं रसोनञ्च हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ।
 सघृतं कुष्ठसंयुक्तं दापयेत्तद्बुधो भिषक् ।
 निहन्त्यामयमण्डानां सप्तकं वा द्विसप्तकम् ॥ ८ ॥
 कुलत्थयवकोलानां पञ्चमूल्यास्तथैव च
 काथेन तैलयुक्तेन निरूहं संप्रयोजयेत् ॥ ९ ॥
 मांसानां रसकैः स्निग्धैर्भोजनं तत्र शस्यते ।
 ग्रासे दूर्वाजुनौ वापि जलं कूपात् समुद्धृतम् ॥ १० ॥
 ग्रासप्रतिहतो यस्तु कृच्छ्रमूत्रपुरीषयोः ।
 तच्च पृष्ठे समाधातो न स शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ११ ॥
 पित्ताण्डलक्षणचिकित्सितम् ।
 शूनता मुष्कयोश्चैव रक्तता कृष्णतापि वा ।
 भवेत् पित्तेन दुष्टेन पिडकानाञ्च सम्भवः ॥ १२ ॥
 शिरावेधस्तथाभ्यङ्गो वाताण्डे यः प्रकीर्तितः ।
 कर्त्तव्यः स तु पित्ताण्डे यदन्यच्च प्रचक्षते ॥ १३ ॥
 कृद्धोलमुस्तकाश्मर्यवाजिगन्धेक्षुसाधितः ।

क्वाथः पाने हितस्तस्मै शर्करामधुमूर्च्छितः ॥ १४ ॥

पञ्चवल्कस्य कल्कश्च सर्पिषा सह योजितः ।

प्रदातव्यः प्रलेपाय गोक्षुरश्च निरूहणे ॥ १५ ॥

मुस्तबालकधन्याकं कथितं शीतलीकृतम् ।

तोयं पाने प्रदातव्यं ग्रासे दूर्वा च शस्यते ॥ १६ ॥

श्लेष्माण्डलक्षणचिकित्सितम् ।

शूनौ तु कटिनी रूक्षी वृषणी मन्दवेदनी ।

कृच्छ्रमूत्रस्य वाहस्य मूत्रकोशश्च शूयते ॥ १७ ॥

श्लेष्माण्डः स तु विज्ञेय श्रीपाण्डीं वेधयेच्छिराम् ।

गिरूहं कटुतैलेन चाङ्गे खेदं च कारयेत् ॥ १८ ॥

कुष्ठैलातिविषा लोभ्रवचाव्योषहरेणुभिः ।

पानं कल्कीकृतैः शस्तं सुरामध्वासवान्वितम् ॥ १९ ॥

पञ्चतिक्तकसंसिद्धैः कुर्यान्मन्त्रैश्च भोजनम् ।

पिप्पलीचीद्रसंयुक्तैस्तैलशुण्ठीसमन्वितैः ।

व्योषक्षौद्रसतैलैश्च कुलत्थैर्वापि भोजयेत् ॥ २० ॥

भ्रामणश्च तुरङ्गस्य सायं प्रातः शनैर्हितम् ।

शुष्को घासः प्रदातव्यः शृतशीतं जलं तथा ॥ २१ ॥

किराततिक्तकच्छूनामार्द्रकाणां समायुतम् ।

पिण्डं वा देयमश्वस्य श्वयथुव्याधिशान्तये ॥ २२ ॥

पीताण्डलक्षणचिकित्सितम् ।

शूनौ पक्वी तुरङ्गस्य मुष्की यस्य सवेदनी ।

त्रिकस्तम्भेन युक्तस्य तस्य पूताण्डमादिशेत् ॥ २३ ॥

वाताण्डविहितस्तत्र शिरावेधः प्रशस्यते ।

घृताभ्यङ्गश्च कर्तव्यो मुष्कयोस्तस्य वाजिनः ॥ २४ ॥

पिप्पली लोभ्रयष्ट्याङ्गैरेलवालुकसंयुतैः ।

पानं तस्मै हितं दृष्टं सिन्धुमध्वा समन्वितम् ॥ २५ ॥

वर्षाभूसरला श्यामा लोभ्रचन्दनपञ्चकैः ।
 तोयपिटैः प्रलेपस्तु मुष्कयोः परिकीर्तितः ॥ २६ ॥
 अनया वाजिनो रोगः क्षपया शान्तिमृच्छति ।
 विपाद्य मुष्कौ शस्त्रेण तदाण्डमपकर्षयेत् ॥ २७ ॥
 हस्तेनाकथ्य मुष्काण्डं नाडीं बद्धा दृढं भिषक् ।
 सुवर्तितेन सूत्रेण तच्छिन्द्याच्च विचक्षणः ॥ २८ ॥
 वङ्कितमेन शस्त्रेण तद्व्रणेन सुनिश्चितम् ।
 रक्तमेवं तुरङ्गस्य प्रशमं नैव गच्छति ॥ २९ ॥
 अग्निवर्णेन येनैव क्षिन्द्याच्छस्त्रेण दुर्बुधः ।
 अबद्धा सुदृढं नाडीं तस्य कर्म न सिध्यति ॥ ३० ॥
 आकथ्याण्डं भिषङ् मुष्कं पूरितं मधुसर्पिषा ।
 क्षौरहृत्क्षकषायेण व्रणवत् समुपाचरेत् ॥ ३१ ॥
 प्रशस्तं गुग्गुलोः पानं त्रिफलाकाथयोजितम् ।
 तच्चङ्क्रमणशीलस्य घृताभ्यक्तस्य वाजिनः ॥ ३२ ॥
 निपात्य भूमौ तुरगं बद्धा चैव दृढं बुधः ।
 उत्तानस्य विनिःक्षिप्य पृष्ठं गर्त्तिस्तथैव च ॥ ३३ ॥
 पातनादि ततः कर्म कुर्यात्तुच्छाण्डरोगिणः ।
 दृढकर्मा प्रगल्भस्य शास्त्रविश्व भिषम्बरः ॥ ३४ ॥

रक्ताण्डलक्षणचिकित्सितम् ।

स्पर्शतः कठिनी रूक्षौ रूपतथैव यौ मृदू ।
 वृषणौ यस्य वाहस्य स रक्ताण्डः प्रकीर्तितः ॥ ३५ ॥
 तस्मिन् सर्वाः प्रयोक्तव्याः क्रियाः पोताण्डबोधिताः ।
 क्षिप्रं सिद्धिर्भवत्येव वैद्यानां शास्त्रशालिनाम् ॥ ३६ ॥
 भिषम्बरः प्रयुञ्जीत दुष्टानां मुष्ककालनम् ।
 भ्रमणञ्च विशेषेण तेषां कुर्याद् द्विसप्तकम् ॥ ३७ ॥
 भ्रमतामिव दातव्यं जलं शासास्तथैव च ।

घृताभ्यङ्गं च सततं ब्रूणे गात्रे च वाजिनाम् ॥ ३८ ॥
 दातव्यो गुग्गुलुस्त्रावत् त्रिफलाक्वाथयोजितः ।
 रूढं यावद् ब्रूणं तेषां जायते निरुपद्रवम् ॥ ३९ ॥
 खादकः खादकश्चैव विरोधी च विशेषतः ।
 मुष्कयोर्लागनं वाजी प्रतिहन्ता च सिध्यति ॥ ४० ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे मुष्करीग-
 चिकित्सिते पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

श्रीनीतरोगलक्षणम् ।

गुरुभिर्भोजनैर्ग्रासैरभिष्यन्दकरैस्तथा ।
 अष्टस्याकर्मिणोऽश्वस्य ह्ययीमनभिगच्छतः ॥ १ ॥
 स्वस्थानात् प्रच्युतं शुक्रं मेहने प्रतिहन्यते ।
 तेन शुक्राभिघातेन मूत्रकच्छं प्रजायते ॥ २ ॥
 ततो रक्तप्रकोपेण शूलं भवति मेहने ।
 प्रक्लिन्नं प्रबलं पक्वं कण्डूमत्पिडकान्वितम् ॥ ३ ॥
 स्वस्थाने प्रविशेन्नैव मत्तिकाभिः समावृतम् ।
 श्रीनीताख्यं तमातङ्गं निर्दिशेत्तस्य वाजिनः ॥ ४ ॥
 चिकित्सा ।

उपाण्डुश्चैव कोष्ठञ्च मात्रायान्तु विरेचयेत् ।
 शान्तयेन्मूत्रकोपञ्च स्नानं वाज्येन सेवयेत् ॥ ५ ॥
 क्षारतैलं जलं कोष्णं पानार्थञ्च प्रदापयेत् ।
 खदिरक्षीरिणां क्वाथः सुखोष्णो ब्रूणधावनः ॥ ६ ॥
 तिलक्षारैः पयःस्त्रिभैः ससर्पिष्कैः प्रलेपनम्-
 धूपनं कटुमध्वाज्यैररालापीलुदारुभिः ॥ ७ ॥

ससप्तपत्रसल्लक्या धवस्यारग्वधस्य च ।

कुटजस्य त्वचश्चैव चूर्णिता व्रणरोपणाः ॥ ८ ॥

लवङ्गानि हरिद्रे च सूर्यवल्ली सरोचना ।

अरुष्करोऽग्निकदरः त्रिफलानिकुटत्वचः ॥ ९ ॥

एभिस्तैलं सगोमूत्रं साधितं व्रणरोपणम् ।

भोजयेत्तिलमुद्गांश्च मधुतैलकणान्वितान् ॥ १० ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तविरचितेऽश्वशास्त्रे श्रीनीतरोग-
चिकित्सिते एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अष्टविधोदरनामलक्षणानि ।

अष्टभेदस्य वक्ष्यामि उदरस्य यथाक्रमम् ।

चिक्लं चिकित्सितञ्चैव यथा शास्त्रे व्यवस्थितम् ॥ १ ॥

दातजं पित्तजञ्चैव कफजं सन्निपातजम् ।

प्लीहोदरं बद्धगुदं परिम्लाव्युदकोदरम् ॥ २ ॥

आध्मातमुदरं यस्य वाजिनो वेदनान्वितम् ।

वर्चसो रूक्षता चैव सशब्दञ्चैव मारुतः ॥ ३ ॥

पुरीषे च कृते यस्य गुदं निर्याति सर्वदा ।

क्षीणस्याल्पाशनस्यैव तस्य वातोदरं वदेत् ॥ ४ ॥

हारिद्रविण्महाकुक्षिः कृशः खेदी महाशनः ।

उष्णनिःश्वाससंयुक्तो भवेत् पित्तोदरी हयः ॥ ५ ॥

उदरं वर्धते यस्य मन्दाग्नेः शोथसंयुतम् ।

अलसस्य कृशस्यैव विन्द्यात् श्लेष्मोदरं भिषक् ॥ ६ ॥

वातपित्तकफानान्तु रूपं यस्य च दृश्यते ।

सन्निपातसमुत्थानं तद् विन्द्यादुदरं महत् ॥ ७ ॥

वर्णान्यत्वं महत्वञ्च काठिन्यञ्च विशेषतः ।

प्लीहोदरे विजानीयाद्देहे च क्लृप्तां तथा ॥ ८ ॥

अल्पमल्पं पुरीषन्तु कच्छाद्वातं प्रमुञ्चति ।

आध्मातकुक्षिर्यो वाजी तस्य बद्धगुदं वदेत् ॥ ९ ॥

आध्मातकोष्ठः कुरुते फेनिलं रक्तमेव च ।

परिस्रावोदरौ मूत्रं दाहरुग्वर्जितं सदा ॥ १० ॥

अत्यन्ताध्मानकञ्चैव जलपूर्णमिवोदरम् ।

क्लृप्तस्य यस्य वाहस्य भवेत्तस्योदकोदरम् ॥ ११ ॥

वातोदरचिकित्सा ।

पञ्चमूलकषायेण सहितां तैलसंयुताम् ।

यवागूं भोजयित्वा तु ततः स्नेहैर्निरूहयेत् ॥ १२ ॥

पिप्पलीलवणक्षारपाठाचित्रकहिङ्गुभिः ।

कल्कीकृतैः पचेत्तैलं मूत्रैर्गोमाहिषादिभिः ॥ १३ ॥

तस्मिन्नेव त्रिवृच्चूर्णं स्रुहीदुग्धेन भावितम् ।

पलाङ्गमात्रया क्षिप्त्वा पचेत्तैलं विचक्षणः ॥ १४ ॥

बलं वीच्य तुरङ्गस्य तैलपानं प्रदापयेत् ।

अतिपानप्रयोगेण मृत्योर्गोचरमृच्छति ॥ १५ ॥

पीततैलं विरिक्तञ्च दूर्वाघासेन पोषयेत् ।

आध्मानादुदरस्यैव पुनः कुर्यात् क्रियामिमाम् ॥ १६ ॥

त्रिवृद्दन्ती वचा चैव कषायेण च साधितम् ।

वातोदारे घृतं शस्तं पाने युक्त्या प्रयोजितम् ॥ १७ ॥

पित्तोदरचिकित्सा ।

पिप्पली शृङ्गवेरञ्च दन्त्यारग्वधचित्रकम् ।

दध्ना मूत्रं ततस्तैलं पचेन्मृद्गिना बुधः ॥ १८ ॥

पित्तोदराभिभूतस्य पानमेतत् प्रदापयेत् ।

हिङ्गुयुक्तं तुरङ्गस्य यथाग्निं च यथाबलम् ॥ १९ ॥

श्लेष्मोदरचिकित्सा ।

वातोदरे समुद्दिष्टां श्लेष्मजे कारयेत् क्रियाम् ।
 सन्निपातसमुत्पे तु कुर्यात् साधारणीं क्रियाम् ॥ २० ॥
 पिण्डीकृतं त्रिकटुकं चारसैन्धवयोजितम् ।
 दत्त्वानुपाययेत् मूत्रं माहिषं वाथ सौरभम् ॥ २१ ॥
 प्रति प्रभाते कर्त्तव्यं तुरङ्गस्य यथाबलम् ।
 प्लीहोदरविनाशाय विधिरेष विजानता ॥ २२ ॥
 या क्रिया विहिता पूर्वं वातोदरचिकित्सिते ।
 सैव बद्धगुदे कार्या सस्त्रावे पित्तजेऽपि वा ॥ २३ ॥
 बद्धा वाहं दृढं विद्वान् धरण्यां विनिपातयेत् ।
 उदकोदरे ततः कर्म कुर्याद्भिषगतन्द्रितः ॥ २४ ॥
 हृदयस्थाधरे भागे ऊर्ध्वभागे च नाभितः ।
 अधो वा नाभितः कुर्याच्छेदनं चतुरङ्गुले ॥ २५ ॥
 शस्त्रेणोत्पलपत्रेण वामभागे विचक्षणः ।
 एकमेवाङ्गुलं शस्त्रं कुक्षौ चापि प्रवेशयेत् ॥ २६ ॥
 वेधव्रणे ततस्तस्मिन् नालिकां वस्त्रवेष्टिताम् ।
 प्रक्षिप्य गालयेद्द्वारि यावहै कोष्ठलाघवम् ॥ २७ ॥
 स्वच्छतोयपरिस्रावे तदसाध्यं समादिशेत् ।
 आलोहिते सरक्ते वा साध्यं विद्वान् समादिशेत् ॥ २८ ॥
 आकृष्य नालिकां प्राज्ञः पट्टकेन तथा व्रणम् ।
 घृतप्लुतेन बध्नीयाद्दत्त्वा कर्पटचौरकम् ॥ २९ ॥
 मुक्त्वा चोत्थाप्य वाहन्तु वाग्भिः प्रसारयेद्भिषक् ।
 कषायैः क्षीरवृक्षाणां व्रणश्चाश्चरोतयेत्ततः ॥ ३० ॥
 विद्धोदरस्य वाहस्य निर्वाहणमयीक्तिकम् ।
 उदकञ्चैव घासञ्च नो दद्याद्दिवसत्रयम् ॥ ३१ ॥
 ततो दूर्वा प्रदातव्या उदकञ्चापि संस्कृतम् ।

क्वथितं क्षीरहृक्षाणां वल्कलैर्मधुयोजितम् ॥ ३२ ॥

ततो रूढव्रणं बुद्ध्वा सञ्जातबलमेव च ।

एतान् वै खादने दद्याद् युक्त्या चैव सुसंस्कृतान् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे उदर-
चिकित्सिते द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अर्शालक्षणम् ।

कृशो रूक्षश्च मन्दाशी बलहीनशिरान्वितः ।

अर्शसा क्रियते वाजी गुदमार्गगतेन च ॥ १ ॥

जम्बूवदरखर्जूरफलरूपञ्च तद्भवेत् ।

गुदाभ्यन्तरजं मांसमेकद्विबहुसंख्यकम् ॥ २ ॥

तच्चिकित्सा ।

क्रियां तस्य प्रवक्ष्यामि यथशास्त्रं समासतः ।

येन शाम्यति वाहानां भृशमर्शो विवर्द्धितम् ॥ ३ ॥

यन्त्रं षडङ्गुलं विहान् छिद्रं पञ्चाङ्गुलं भिषक् ।

अधोऽर्द्धाङ्गुलविस्तीर्णं दैर्घ्येणाप्यङ्गुलत्रयम् ॥ ४ ॥

उभयोः पार्श्वयोस्तस्य कुर्याच्छिद्रद्वयं बुधः ।

अर्शस्तेन तु वाहस्य द्विच्छिद्रेण विलोकयेत् ॥ ५ ॥

एकच्छिद्रेण वै कर्म कुर्याच्छेदादि पूर्वकम् ।

पातितस्य सुबद्धस्य तुरगस्य विचक्षणः ॥ ६ ॥

घृताभ्यक्ते गुदे क्षिप्त्वा युक्त्या यन्त्रं द्विच्छिद्रकम् ।

ततः सम्यक् समासेन अर्शस्तद्द्विमान् भिषक् ॥ ७ ॥

यन्त्रं द्विच्छिद्रमाकृष्य प्रक्षिपेदेकरन्ध्रकम् ।

यन्त्रं छिद्रान्तरस्थन्तु अर्शः कृत्वा विचक्षणः ॥ ८ ॥
 छित्त्वा तीक्ष्णेन शस्त्रेण दहेत्सौहृशलाकया ।
 सम्यग्दग्धं भिषग्बुद्ध्या मधुयुक्तेन सर्पिषा ॥ ९ ॥
 लेपयेद् व्रणदेशन्तु यन्त्रञ्चैवापकर्षयेत् ।
 मुक्त्वा वाहं समुत्थाप्य वाजिं वातेषु चारयेत् ॥ १० ॥
 अतिशीतं जलं मूर्ध्नि त्रिके चापि प्रदापयेत् ।
 तस्यां रात्रौ प्रदातव्यो घासो वाहस्य यत्नतः ॥ ११ ॥
 त्रिफलाक्वाथसंयुक्तं प्रातर्दद्याच्च गुग्गुलुम् ।
 शृतशीतं जलं पाने घासे दूर्वा च शस्यते ॥ १२ ॥
 सप्त पञ्च प्रदातव्यः त्रिफलाक्वाथयोजितः ।
 ततो जातबलं बुद्ध्या तुरगं भिषजां वरः ॥ १३ ॥
 यथेष्टाहारचेष्टन्तु कारयेत् क्रमशः पुनः ।
 वातजं श्लेष्मजं बुद्ध्या साधयेदग्निना भिषक् ॥
 पित्तजं सम्यगालोक्य दहेत् क्षारेण बुद्धिमान् ॥ १४ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे अर्शश्चिकित्सिते
 त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

उत्कर्णलक्षणचिकित्सितम् ।

कर्णो स्तब्धी तथा पुच्छं स्तब्धं गात्रमकिञ्चन ।
 वातात्मकेन वाहस्य भवेदुत्कर्णकेन हि ॥ १ ॥
 वसया घृततैलेन तस्याभ्यङ्गः प्रशस्यते ।
 ऽसारण्यादिभिस्तैलैः कुर्याच्चैवानुवासनम् ॥ २ ॥
 अतसीभिः शणैर्माषैस्त्रिलधान्यैर्यवैस्तथा ।
 वस्त्रबद्धपुटः स्वेदः शस्तः काञ्चिकसाधितैः ॥ ३ ॥

जङ्घा भासस्य सपस्य जाङ्गलैः सांधता रसः ।
तस्मै पाने हितो दृष्टः शाल्यवने च भोजनम् ॥ ४ ॥
शौकरैर्माहिषैश्चागैरसैर्वा तदभावतः ।
पञ्चमूलकषायेण सिद्धस्त्रैलेन भावितः ॥ ५ ॥
गुड़तैलयुता वापि सुरा पाने प्रशस्यते ।
शुनः क्लिप्त्वा शिरो रक्तं गृहीत्वा दापयेत् ततः ॥ ६ ॥
क्वागमार्जारमेषाणां रक्तं सद्यः स्तुतं भिषक् ।
दापयेत् पञ्चमूलस्य कषायेण समन्वितम् ॥ ७ ॥
पञ्चमूलकषायेण कृत्वा मांसरसं बुधः ।
यवागूं साधयेत्तेन तिलमिश्रैश्च तण्डुलैः ॥ ८ ॥
वसया तिलतैलेन सर्पिषा चापि संस्कृतम् ।
भोजने तां भिषग्दद्यादुत्कर्णकनिवारणीम् ॥ ९ ॥
ग्रासार्थं दापयेद्दूर्वां पाने वोष्णजलं पिवेत् ।
त्रिहृताद्यैस्तथा तैलैः कर्णयोस्तस्य पूरणम् ॥ १० ॥
उत्कर्णको यदाश्वस्य क्रियया नोपशाम्यति ।
वङ्गिं प्रदापयेत् कुक्षौ ललाटे कर्णयोस्तथा ॥ ११ ॥
ग्रासहेषी सदाध्यातः कृच्छ्रमूत्रपुरीषकृत् ।
लालाव्रणयुतः श्वासी उत्कर्णी नैव जीवति ॥ १२ ॥
स्वेदस्निग्धो निवातश्च स्थानं प्रावरणानि च ।
पयांसि भोजने स्वादुकटुम्ललवणानि च ।
हंहरणं सर्वथा वैद्यः कुर्यादुत्कर्णपौडिते ॥ १३ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे उत्कर्णचिकित्से ते
चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वातव्याधी

मन्यास्तम्भादिलक्षणाणि ।

नमत्युन्नमति ग्रीवा स्तब्धा च यस्य वाजिनः ।
मन्यास्तम्भं विजानीयाद्रोगं तस्य सुदारुणम् ॥ १ ॥
एवंविधायं ग्रीवायां स्फुरणं यस्य विद्यते ।
मन्याचालीति तं विद्यान्मन्दाहारं तुरङ्गमम् ॥ २ ॥
संगृहीतो हनू यस्य निश्चली यस्य वाजिनः ।
लाला स्रवति चात्यन्तं विन्द्यात्तस्य हनुग्रहम् ॥ ३ ॥
स्तब्धं पृष्ठोन्नतञ्चैव रन्ध्री चित्तस्य यस्य च ।
तस्य पृष्ठग्रहं रोगमूर्द्धं ग्रीवस्य निर्दिशेत् ॥ ४ ॥
एकः प्रलम्बते कर्णः शरीरादृञ्च शुष्यति ।
शूनो भवति चाश्लश्च रोगे चैकाङ्गसंज्ञके ॥ ५ ॥
संत्रासी चैव यः पूर्वं पुनः स्वस्थो भृशं भवेत् ।
प्रस्विन्नाङ्गस्य तस्याशु मृगरोगं समादिशेत् ॥ ६ ॥
मृगरोगो यदा वाजी जृम्भावान् जायते मुहुः ।
मृगजृम्भं तदा तस्य व्याधिं समुपलक्षयेत् ॥ ७ ॥
गत्वा यः पूर्वकायेण पुनः पश्चाच्च गच्छति ।
स्तब्धाङ्गो वेदनात्तश्च तस्यान्नेपकमादिशेत् ॥ ८ ॥
वक्रः पश्चिमकायेन मण्डलैर्यो विचेष्टते ।
मन्दग्रासश्च दीनश्च भ्रामिताक्षो रजोवृतः ॥ ९ ॥
पश्चात् कायेन यो वाजी भूमिं गत्वा निषीदति ।
खेदञ्चाग्रिमकायेण स्वस्थश्च परिवर्तते ॥ १० ॥
कच्छादुत्यापितश्चापि पुनर्यो याति मेदिनीम् ।
कपोतकनिषादीति स ज्ञेयः कच्छुजीवनः ॥ ११ ॥

हनुद्वयस्य विचेपाह्वोणाभेदाच्च बुद्धिमान् ।
नासापुटविकाराच्च रोगमर्दितमादिशेत् ॥ १२ ॥

एषां चिकित्साः ।

एते वातात्मका रोगा मन्यास्तम्भादयः स्मृताः ।
उत्कर्णकक्रियाः सर्वा वाहानां तेषु कारयेत् ॥ १३ ॥
उत्कर्णकचिकित्सा च पानमेतद् विशिष्यते ।
कपोतकनिषादस्य तद्विन्याद्वच्यमाणकम् ॥ १४ ॥
हरितान् यावशूकांश्च पिष्ट्वालम्बुषया सह ।
आलोच्य तिलतैलेन ततः पानं प्रदापयेत् ॥ १५ ॥
इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे वातव्याधि-
चिकित्स्विते षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

उन्मादनिदानलक्षणम् ।

यद्युन्मादः समुद्दिष्टः श्लेष्मपित्तसमुद्भवः ।
तथापि न विना वातमुन्मादो जायते ध्रुवम् ॥ १ ॥
प्रकोपकारणैः प्रोक्तैः कुपिते मातरिश्चनि ।
उन्मादो जायतेऽश्वस्य तस्य रूपञ्च वक्ष्यते ॥ २ ॥
यातुमिच्छति यः स्थित्वा रज्जुं दन्तैश्च खादति ।
खादत्यकस्माद् यवसं पुनश्चैव न खादति ॥ ३ ॥
कदाचिद् बुध्यते संज्ञां कदाचिच्च न बुध्यते ।
स्वभावान्यत्वसंयुक्तं तद्बुद्ध्वा कारयेत् क्रियाम् ॥ ४ ॥
हिङ्गुयुक्तं पुराणस्य सर्पिषः पानमुत्तमम् ।
उन्मादिनस्तुरङ्गस्य घृताभ्यङ्गस्तु सर्वदा ॥ ५ ॥

उत्कर्णकादिरोगेषु साम्निकर्माणि यानि तु ।
 भोजनाभ्यङ्गपानानि निरूहास्थापनानि च ॥ ६ ॥
 तानि चास्य प्रयोज्यानि बद्धा चैव दृढं ह्ययम् ।
 अबद्धेषु क्रियां कर्तुं नैवोन्मादिषु शक्यते ॥ ७ ॥
 निम्बपत्रवचाकुष्ठलाक्षालवणहृद्गुभिः ।
 गोलोमखुरशृङ्गैश्च पीतसिद्धार्थकैर्यवैः ॥ ८ ॥
 उलूककाकपक्षैश्च भूतकेशैश्च पाण्डुभिः ।
 सर्पनिर्मोकसंयुक्तैः कुर्याच्चूर्णं विचक्षणः ॥ ९ ॥
 अर्ककाष्ठाग्निना धूमं तेन चूर्णेन दापयेत् ।
 घृतयुक्तेन वाहानामुन्मादव्याधिशान्तये ॥ १० ॥
 गोकुरङ्गकगोधानां शिखिनः शशकस्य च ।
 पित्तानि दापयेत् प्राज्ञो यथालब्धानि वा पुनः ॥ ११ ॥
 रसोनहिङ्गुतगरान् कुष्ठसर्षपसैन्धवान् ।
 मनःशिलाञ्च संयुक्तां पित्तेः साङ्घं प्रदापयेत् ॥ १२ ॥
 महिषच्छागमूत्रेण वर्त्तिं कृत्वा ततः पुनः ।
 उन्मादितेषु सर्वेषु तथा कुर्यात्तथाञ्जनम् ॥ १३ ॥
 तथा ह्यायां विनिष्कास्य जायते सुखमुत्तमम् ।
 अश्वगन्धावचाकुष्ठरोचनामधुसर्षपैः ।
 रसार्थं पुटिका कार्या कण्ठे कर्पटवेष्टिता ॥ १४ ॥
 गोमूत्रघृतदुग्धैश्च दध्ना च गोमयेन च ।
 पञ्चगव्यं पचेत् सर्पिस्तस्य पानार्थमुत्तमम् ॥ १५ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे उन्मादचिकित्सिते
 षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

ग्रहनामलक्षणानि ।

दृश्यन्ते यानि लिङ्गानि ग्रहदोषिण वाजिनाम् ।
तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि ग्रहनामानि यानि तु ॥ १ ॥
लोहिताक्षो विरूपाक्षो हरिर्वलिस्तथैव च ।
स काशी चैव विख्यातः संकाशी च परः स्मृतः ॥ २ ॥
सुसंस्थितश्च कौवेरो वैशाखश्च मृदुग्रहः ।
जङ्घुश्च दारुणश्चैव षड्विधो वरुणग्रहः ॥ ३ ॥
बृहस्पतिश्च सोमश्च तथा सूर्यग्रहोऽपरः ।
एते प्रोक्ता ग्रहाः सर्वे दारुणा मुनिसत्तमैः ॥ ४ ॥
एतैर्दृष्टाः स्फुटं वाहा नैव जीवन्ति सर्वदा ।
चिह्नं सर्वं प्रवक्ष्यामि यथा शास्त्रे व्यवस्थितम् ॥ ५ ॥
भवन्ति विन्दवो रक्ता अकस्माद् यस्य चक्षुषः ।
लोहिताक्षगृहीतोऽश्वो ग्रासहेषी च जायते ॥ ६ ॥
प्रस्विन्नगुरुगात्रश्च लुब्धचंक्रमणक्रियः ।
कम्पते पूर्वकायस्तु निश्चलो यस्य पश्चिमः ।
पश्चात्तङ्गी सकम्पश्च खिद्यते हरिपीडितः ॥ ८ ॥
मीलतोन्मीलता चाक्ष्णा स्वभावान्नित्यमेव च ॥ ७ ॥
विरूपाक्षगृहीते तु कम्पः स्वेदश्च जायते ।
उत्थितः सहसा यस्तु मूर्ध्ना पतति भूतले ॥ ९ ॥
स्तब्धाक्षो मुच्यते केशैस्तथा बालैः खुरैरपि ।
वलिग्रहगृहीतोऽसौ स्तब्धकर्णशिरोधरः ॥ १० ॥
अकस्माद् यस्य लोमानि शीर्यन्ते यश्च लङ्गति ।
शूनपश्चिमपादश्च तस्य काशिशृङ्गं वदेत् ॥ ११ ॥

सहसा कुपितो वाजी स्वानि गात्राणि खादति ।
 प्रोथते सततञ्चैव संकाशग्रहपीडितः ॥ १२ ॥
 ह्येषते सततं यस्तु पश्चादात्मानमीक्षते ।
 सुसंस्थितग्रहाविष्टः स विज्ञेयो मनौषिभिः ॥ १३ ॥
 खिन्नाङ्गो वेपमानश्च जानुभ्यां यश्च तिष्ठति ।
 कौवेरग्रहसंदुष्टं तं विन्द्यात् कष्टजीवितम् ॥ १४ ॥
 स्तब्धेन गुरुणा चैव वेपमानेन पण्डितः ।
 गात्रेण विद्याद् वाहं तु वैशाखग्रहसेवितम् ॥ १५ ॥
 ग्रीवां चैव तथा जिह्वां परिवर्त्य मुहुर्मुहुः ।
 जृम्भते पूर्वकायेण शीतोच्छ्वासी विशोचनः ॥ १६ ॥
 नोद्दिजेत्त्वाहतः पृष्ठे कशया पाणिनापि वा ।
 तं वै मृदुग्रहग्रस्तं दृष्ट्वैव परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥
 श्यामं जिह्वामुखं यस्य नष्टदृष्टिस्मृतिर्भवेत् ।
 ऊर्ध्वग्रहकृतं दोषं तस्य दीनस्य निर्दिशेत् ॥ १८ ॥
 तालुजिह्वे च नेत्रे च हृषणी मेढ्रमेव च ।
 श्यावं रूपं च यस्य स्याद् गात्रगौरवमेव च ॥ १९ ॥
 तस्य स्वेदपरीतस्य बुद्धिमान् वरुणग्रहैः ।
 कृतं दोषं महाघोरं स्तब्धाङ्गस्य विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥
 ह्येषते सततं यस्तु हृष्टरोमा तुरङ्गमः ।
 स्तब्धाक्षो जृम्भतेऽत्यर्थं तस्यापि सलिलग्रहः ॥ २१ ॥
 सुविस्फुरितसर्वाङ्गः सलिले निश्चलस्थितः ।
 ह्येषते विस्तरं वाजी वरुणग्रहपीडितः ॥ २२ ॥
 मुहूर्त्तावस्थितस्तोये जानुभ्यां योऽवगच्छति ।
 मुखपाकश्च यस्यान्ते तं विन्द्यादुदकग्रहम् ॥ २३ ॥
 उद्वर्त्तिताक्षः खिन्नश्च संगृहीतहनुश्च यः ।
 कम्पमानश्च यो वाजी स रविग्रहपीडितः ॥ २४ ॥

स्तब्धश्रीवो न जानाति कशाघातं सुदुर्मनाः ।
 जलग्रहगृहीतोऽश्वो वामपार्श्वेन निखलः ॥ २५ ॥
 शूनाक्षिकूटो रक्ताक्षः क्लृप्तः खलति यो मुहुः ।
 वृहस्पतिगृहीतोऽसौ नैव जीवति तादृशः ॥ २६ ॥
 कम्पते पूर्वकायेण खल्पपानाशनश्च यः ।
 शीते प्रसार्य गात्राणि शीताङ्गः सोमपीडितः ॥ २७ ॥
 रक्ताक्षः शूनकरुहश्च कम्पमानश्च श्वासयुक् ।
 फेनतीव्राङ्गखेदश्च ग्रस्तः सूर्यग्रहेण सः ॥ २८ ॥
 उदके तप्तमीपे वा प्रायो गृह्णाति दारुणः ।
 तुरङ्गं सत्वहीनन्तु षड्विधो वारुणग्रहः ॥ २९ ॥
 यज्ञभूमिचिताचैत्यशून्यवेश्मसुरालये ।
 लोहिताक्षादयो रोषाद् ग्रहा गृह्णन्ति वाजिनः ॥ ३० ॥
 एवंविधैर्निदानैस्तु ग्रहदोषं विनिर्दिशेत् ।
 वातपित्तकफानान्तु निदानैर्व्याधिमादिशेत् ॥ ३१ ॥
 एकाकारेण रोगेण म्रियते वा हयो यदा ।
 तुरङ्गाणां तदा ज्ञेया उपसर्गाः सुदारुणाः ॥ ३२ ॥
 ग्रहदोषेषु सर्वेषु उपसर्गास्तथैव च ।
 अथोक्ताश्च महाशान्तिं गान्धर्वाश्च प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥
 अश्वरक्षाविधानाय ऋत्तं सम्मान्य पावकम् ।
 जुहुयाद् घृतसंयुक्तं शुचिः स्नात्वा सुपूजितः ॥ ३४ ॥
 शान्तिकं कारयेत् कर्म बलिञ्चापि प्रयोजयेत् ।
 ग्रहदोषेषु सर्वेषु शान्तिकर्माणि कारयेत् ॥ ३५ ॥
 देवाद्भिजप्रव्रजितगुरुवृद्धान् यतीनपि ।
 तोषयेद्भोजनैर्दानैर्वस्त्रगोकाञ्चनादिभिः ॥ ३६ ॥
 रात्रौ शालासमीपे तु बलिं दद्यात् चतुर्दिशम् ।
 मध्यमांसैश्च पक्वान्नैः क्लृप्तैः पायसादिभिः ॥ ३७ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ।
 नीराजनविधिं कृत्वा नयेदखान् पृथक् पृथक् ॥ ३८ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे ग्रहगृहीत-
 चिकित्सिते सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

वातादिशोषलक्षणानि ।

वातादिदोषजातानां शोषाणामनुपूर्वशः ।
 लक्षणञ्च चिकित्सां च प्रवक्ष्यामि समासतः ॥ १ ॥
 आघातकुक्षेर्यस्य स्याद् रुक्षः काशः कृशस्य च ।
 मूत्रकृच्छ्रं ततश्चैव भिन्नफेनिलविह्वलम् ॥ २ ॥
 प्रत्यहं हीयमानस्य मन्दग्रासस्य तस्य वै ।
 भिषग् वातात्मकं शोषं चित्ररोमूणः समादिशेत् ॥ ३ ॥
 काशदीर्बल्यसंयुक्तस्तृष्णादाहसमन्वितः ।
 सङ्कीर्णं रोमकेशे च पित्तशोषं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥
 भिन्नदीर्घाङ्गबालस्य मन्दग्रासस्य बुद्धिमान् ।
 सततं हीयमानस्य भृशं कासार्दितस्य च ॥ ५ ॥
 नित्यं शीतशरीरस्य निद्रातन्द्रान्वितस्य च ।
 भिन्नचिह्नस्य वाहस्य शोषं श्लेष्मात्मकं वदेत् ॥ ६ ॥
 सर्वलिङ्गान्वितश्चैव जानीयात् सान्निपातिकम् ।
 असाध्यं वाजिनां शोषं कृच्छ्रसाध्यमथापि वा ॥ ७ ॥
 गात्रं भवति दुर्गन्धि सर्वेषामेव शोषिणाम् ।
 अहन्यहनि चाङ्गानि हीयन्ते च विशेषतः ॥ ८ ॥

एतच्चिकित्साः ।

एषां चिकित्सां वक्ष्यामि मुनिभिः पूर्वनोदिताम् ।

वातादिदोषजातानां शोषाणामनुपूर्वशः ॥ ९ ॥
 पञ्चमूलकषायेण कृत्वा मांसरसं बुधः ।
 शाल्यन्नं भोजयेत्तेन सतैललवणान्वितम् ॥ १० ॥
 युक्त्या सम्भोजितं पश्चात् सञ्जाताग्निबलं सुधीः ।
 प्रसारिण्यादिभिस्तैलैस्तश्चास्थापयेद् भिषक् ॥ ११ ॥
 कदाचिद्वातशोषार्त्तः सिद्धिं याति न वा ह्ययः ।
 विद्वद्भिः क्रियया वैद्यैः सम्यगेवं प्रयुक्तया ॥ १२ ॥
 दर्भमोरटशालीनां तथाच नलकाशयोः ।
 मूलान्यादाय सर्वेषां क्वाथयेन्मृदुनाग्निना ॥ १३ ॥
 मांसैस्तेन कषायेण रसं कृत्वा विचक्षणः ।
 यवान्नं भोजने दद्यात् सष्टतं पित्तशोषिणम् ॥ १४ ॥
 वासानिम्बकषायेण रसं कृत्वा विचक्षणः ।
 जाङ्गलानां तथा मांसैर्मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥ १५ ॥
 कुलत्थं सुकृतं तेन रसकेन समन्वितम् ।
 भोजयेन्मधुना युक्तं तैलत्रिकटुकान्वितम् ॥ १६ ॥
 श्लेष्मशोषातुरं वाहं वीच्य चाग्निबलं बुधः ।
 सन्निपातोद्भवे चापि कुर्याद् भेषजसङ्करम् ॥ १७ ॥
 चितायां दह्यमानायां तद्भूमेन विचक्षणः ।
 धूषयेत् सर्वशोषे तु तुरङ्गं शास्त्रकीविदः ॥ १८ ॥
 जलौकसाञ्च रक्तेन कुर्यान्नेत्राञ्जनं भिषक् ।
 पिष्टाभिः सकलाभिर्वा ताभिः शस्तमथाञ्जनम् ॥ १९ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे शोषे-

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

वातबलासकलक्षणचिकित्सितम् ।

कफमारुतसम्भूतः स्थूरासन्धिसमाश्रितः ।

शोथो वातबलासाख्यो मृदुश्चैव सवेदनः ॥ १ ॥

तेनातिखञ्जतोऽश्वस्य स्तब्धं पर्वं च जायते ।

स्थौरकां वेधयेत् सम्यग् वसातैलञ्च सर्पिषा ॥ २ ॥

पञ्चभिर्लवणैः साङ्घं पाने दद्याद्भिषग्वरः ।

प्राञ्जः शोथं ततस्तैश्च मर्दयेद्भिषजां वरः ॥ ३ ॥

भग्नैः शङ्खकपालाद्यैः स्वेदैस्तं स्वेदयेद्भिषक् ।

तैलयुक्तं जलं पाने ग्रासे दूर्वाञ्च दापयेत् ॥ ४ ॥

पञ्चमूलकषायेण क्षीरयुक्तेन वस्तयः ।

सुखाय विहितास्तस्य पिप्पली कल्कयोजिताः ॥ ५ ॥

त्रैवृतेन च तैलेन कुर्यात्तैलानुवासनम् ।

अशान्तौ वङ्गिना कर्म ततः सम्पद्यते सुखम् ॥ ६ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे वातबलासक-
चिकित्सिते एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ षष्टितमोऽध्यायः ।

व्यापन्नक्षणचिकित्सितम् ।

प्रभूतं लवणं यस्य भोजने वाजिनो भवेत् ।

केवलं वा ततश्चास्य व्यापत् सुमहती भवेत् ॥ १ ॥

लवणव्यापदार्त्तस्य स्वेदः श्वासश्च जायते ।

जलावगाहनं श स्तं तस्य कर्दमलेपनम् ॥ २ ॥

शर्करोदकपानञ्च हितं तस्मै प्रकीर्तितम् ।

पयोऽनुवासनं वापि विशेषेणैव जायते ॥ ३ ॥
 लवणव्यापदार्त्तस्य पिष्टालम्बुषया सह ।
 आलोच्य तिलतैलेन ततः पानं प्रदापयेत् ।
 हरीतकी कुष्ठकृतं दापयेत् पानमुत्तमम् ॥ ४ ॥
 बहुभिः खादितैर्धान्यैर्धान्यव्यापदमादिशेत् ।
 शूलचिह्नं ततस्तस्य विह्वलत्वञ्च जायते ॥ ५ ॥
 सौभिक्षवर्त्तिर्विहितां कुर्यात्तस्य भिषक् क्रियाम् ।
 अनयापि सुखी न स्यात् कुक्षौ दाहस्ततः स्मृतः ॥ ६ ॥
 लवणव्यापदुक्तस्तु विधिः सर्वः प्रकीर्तितः ।
 सुराव्यापत्परोतस्य मुनिभिः शास्त्रकोविदैः ॥ ७ ॥
 क्षीरव्यापदृष्टहीतोऽश्वो मन्दं पिबति खादति ।
 निद्रालुर्वेदनार्त्तञ्च ध्यायी गुरुशिरा भवेत् ॥ ८ ॥
 पिप्पल्या हस्तिपिप्पल्या तेजोवत्या तथैव च ।
 अतिविषेण शुण्ठ्या च युक्ता पाने सुरा हिता ॥ ९ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे व्यापञ्चि-
 किक्षिते षष्टितमोऽध्यायः ।

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः ।

विषलक्षणचिकित्सितम् ।

स्यावरं जङ्गमञ्चैव विषं द्विविधमुच्यते ।
 जङ्गमं प्राणिसम्भूतं स्यावरञ्चापि मूलजम् ॥ १ ॥
 प्रस्वेदो रोमहर्षश्च अरुचिर्गात्रसादनम् ।
 विवर्णमूत्रं लाला च भिन्नविह्वलमेव च ॥ २ ॥
 लिङ्गान्येतानि वाहस्य सर्पदष्टस्य लक्षयेत् ।
 स्यावरेऽप्येवमेवन्तु नो दंशस्तत्र केवलम् ॥ ३ ॥

कौटादिविषसंयुक्ते लालास्रावोऽपि जायते ।
 शोथो बाधप्रदेशे तु अन्यच्च सर्पदष्टवत् ॥ ४ ॥
 दत्त्वाद्दी घृतपानन्तु जीवरक्षाविचक्षणः ।
 ततः कुर्यात् क्रियां वैद्यः प्रच्छन्नोदत्तनादिकम् ॥ ५ ॥
 तण्डुलीयकमूलन्तु मूलं विष्वकपित्तयोः ।
 गोघृतेन समालोच्य सर्पदष्टे तु पाययेत् ॥ ६ ॥
 सर्पदष्टस्य वाहस्य क्षिप्रं वस्त्रेण बुद्धिमान् ।
 प्रच्छायेद्दंशदेशन्तु शिरां तस्य च वेधयेत् ॥ ७ ॥
 एवं कृत्वा मिषक् चूर्णेः शीघ्रमुदत्तयेत्ततः ।
 शालिहोत्रादिभिः प्रोक्तेर्विषघ्नैर्वर्च्यमाणकैः ॥ ८ ॥
 कुष्ठजीरकदन्तीभिर्नैपाली भद्रमुस्तकैः ।
 कट्फलेन्द्रयवागारधूमास्फोटकसैन्धवैः ॥ ९ ॥
 विडङ्गपिप्पलीक्षारशतपुष्पावचाजलैः ।
 निशातेजोवतीपाठामरिचागारधूमकैः ॥ १० ॥
 यथाप्राप्तः समस्तैर्वा एतैश्चूर्णीकृतैर्बुधः ।
 दष्टस्योदत्तयेद्देशं प्रस्थितश्चैव वाजिनः ॥ ११ ॥
 प्रलेपो वा प्रदातव्य एतैर्गोमूत्रपेषितैः ।
 ततः शान्तिं प्रयच्छन्ति तुरङ्गे विषदूषिते ॥ १२ ॥
 चन्दनागुरुकुष्ठैश्च लोध्रभार्गी फली नखैः ।
 शिरीषदन्तीमूलैश्च दंशलेपो विषापहः ॥ १३ ॥
 दंशनार्त्तस्य वाहस्य दंशस्थानं विचक्षणः ।
 छिन्द्यात्तीक्ष्णेण शस्त्रेण मन्त्रैश्चैव विषं हरत् ॥ १४ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे विष-
 चिकित्सेते एकषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

अपस्मारलक्षणचिकित्सितम् ।

पतत्यकस्माद् यो भूमौ स्तब्धाक्षो गतचेतनः ।

स्वस्थाशयोऽपि यः शीघ्रं सोऽपस्मारीति कीर्तितः ॥ १ ॥

उन्मादोक्तक्रियां सर्वां ततः कुर्याद्द्विचक्षणः ।

घृतस्यातिपुराणस्य तस्य पानञ्च शस्यते ॥ २ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे अपस्मारचिकित्सिते
द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

षट्पदीभक्षलक्षणचिकित्सितम् ।

आपाण्डुवर्णा कपिला हरिता च प्रजायते ।

महोदरा च षट्पादौ सूक्ष्मवक्तोत्तमाङ्गिका ॥ १ ॥

षट्पदी नाम विख्याता तथा चाञ्जलिकारिका ।

गङ्गापतङ्गसंज्ञा च भाषिता सा दुरासदा ॥ २ ॥

ग्रासमध्यगतं वाहा ये भक्षन्ति सुदारुणम् ।

तेषां शोषश्च मूर्च्छा च भ्रमः श्वासश्च जायते ॥ ३ ॥

तेषु गव्यं घृतं पाने अभ्यङ्गश्च प्रशस्यते ।

सर्पदष्टचिकित्सायां कीर्तितं यच्च भेषजम् ॥ ४ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे षट्पदीभक्ष-
चिकित्सिते त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

साध्यासाध्यविवेकः ।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि साध्यासाध्यविनिश्चयम् ।
एकः प्रशास्यते व्याधिः पुनरन्यः प्रकुप्यति ।
पुनरन्यः पुनश्चान्यो यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १ ॥
व्याधिनाढ्यस्य वाहस्य प्रकृतिं याति स उच्यते ॥ २ ॥
किञ्चित्साध्यं तथासाध्यं लक्षणं च प्रकाशते ।
कच्छ्रमाध्यः स विज्ञेयो याप्यो वाथ हयो भवेत् ॥ ३ ॥
शुष्यते नेष्टगन्धश्च सोऽप्यसाध्यः प्रकौर्त्तितः ॥ ४ ॥
सप्ताहात् क्रियमाणेऽपि भेषजे यस्य वाजिनः ।
विशेषो न भवेत्तस्य चिकित्सां न प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥
दौषाम्नेस्तु प्रयोक्तव्या क्रिया हीनाग्नये तु न ।
निश्चेष्टोऽनिमिषाक्षश्च बालैर्वा यो न वीज्यते ॥ ६ ॥
लभते ताडनं दाहं रूपैश्च परिवर्जयेत् ।
तनुः स्तब्धा श्लथा वापि जिह्वा चैव तथाविधा ॥ ७ ॥
स्थूलो वा यो निराहार आहारैर्वा न पुष्यति ।
पूर्वाङ्गं शूयते वामं दक्षिणं यस्य पश्चिमम् ॥ ८ ॥
सदाहगुरु एकाङ्गं शूयते यस्य वा हरेः ।
शीतं गुदञ्च नासास्यं शीतोच्छ्वासी च यो ह्ययः ॥ ९ ॥
शूलाध्माना निमेष्राक्षः कच्छ्रगामी च जायते ।
कच्छ्रश्च कम्पते श्वासाध्मातश्च शूनमेहनः ॥ १० ॥
श्लेष्मा न पिच्छिलः सान्द्रः फेनिलः पाण्डुरस्तथा ।
गलगण्डा गले यस्य शोफो वा कठिनो भृशम् ॥ ११ ॥
रुद्धो गलग्रहो वापि मन्या वापि सुदूषिता ।
श्लेष्मा विविधवर्णश्च सान्द्रोऽतिपूतिगन्धवान् ॥ १२ ॥

क्षयजः काशतो वापि हरैर्यस्य प्रवर्त्तते ।
 असिसारेण क्षीणस्य यस्य शोथः प्रजायते ॥ १३ ॥
 पश्चात्तु मूत्ररोगश्च जायतेऽश्वस्य दारुणः ।
 न संवृणोति यो मेढ्रं वक्षःशोभाविवर्जितः ॥ १४ ॥
 गुर्वङ्गोऽतिशयं भूय आत्मानमभिवीक्षते ।
 भग्नग्रीवश्च यो वाहो व्रणैर्यश्च विशुष्यते ॥ १५ ॥
 विस्तीर्णा श्रोणिका यस्य श्वासः स्वेदश्च मूत्ररुक् ।
 बाह्वोरभ्यन्तरे यस्य द्रोणिका भिद्यतेऽपि च ॥ १६ ॥
 मण्डूकायाञ्च कीर्णायां नित्यस्रावी तलो भवेत् ।
 खुरश्च यस्य वाहस्य खिन्नश्चैव प्रजायते ॥ १७ ॥
 सर्वं पूर्वादिता ह्येते नैव साध्याः प्रकीर्त्तिताः ।
 तथापि जीवमानस्य कुर्याद्द्वैद्यः प्रतिक्रियाम् ॥ १८ ॥
 प्रदोसाग्निर्भवेद् यस्तु प्रसन्नं रूपमीक्षते ।
 बहुपानरतो वाजी साध्यरोगः स उच्यते ॥ १९ ॥
 कायेन धनुते यस्तु लोडतेऽतिशयं हरिः ।
 वडवायां रतश्चैव सोऽपि साध्यः प्रकीर्त्तितः ॥ २० ॥
 चक्षुषोः सुदीप्तिर्यस्य स्वेददोषी च यो हयः ।
 अर्दितेनैव ग्रस्तस्य शिरा यस्य च वेधिता ॥ २१ ॥
 यस्त्वसाध्यः स्मृतो वाहः स कश्चिन्नैव साध्यते ।
 कालेनोपेक्षिताः साध्या दुश्चिकित्स्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ २२ ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतोऽश्वशास्त्रे साध्यासाध्यविवेके

चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

वातादिप्रकृतिलक्षणानि ।

धूमवर्णः कृशो रूक्षः शिरालो वेगवान् हयः ।
जङ्घ्वत्तितजिह्वश्च वातप्रकृतिरुच्यते ॥ १ ॥
पित्तप्रकृतिकश्चापि कृशतौक्ष्णतनुत्वचः ।
नित्यं शीताभिलाषी च बद्धाशो पीतवर्णकः ॥ २ ॥
पित्तप्रकृतिकश्चापि भवेत् स्वेदश्च जायते ।
श्लेष्मसुसंहताङ्गश्च क्षुत्तृट्संहरणे क्षमः ॥ ३ ॥
सङ्कीर्णप्रकृतिश्चापि विद्यात् सङ्कीर्णलक्षणम् ।
प्रकृतिं सम्यगालोक्य भिषग्वातादिकामिमाम् ॥ ४ ॥
यथादोषं ततः कुर्याच्चिकित्सां शास्त्रसम्प्रताम् ।
वातश्लेष्म तथा पित्तं ज्ञात्वा कर्म प्रचक्रमेत् ॥ ५ ॥
इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे प्रकृतिज्ञाने
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

रसोनकल्पः ।

रसोनस्य प्रवक्ष्यामि कल्पं शास्त्रानुसारतः ।
सम्पूर्णरसवीर्योऽसौ मासे संगृह्य फाल्गुने ॥ १ ॥
गृहीत्वा स्थापयेत्तत्र यत्रस्थो नैव नश्यति ।
ततस्तस्य प्रयोगन्तु कुर्यान्मात्राप्रमाणतः ॥ २ ॥
मातुलुङ्गरसोपेतं मांसानां रसकेन च ।
रसं दद्याद्रसोनस्य अन्यैर्वान्धैः समायुतम् ॥ ३ ॥

प्रथमे दिवसे देयं रसोनस्य पलद्वयम् ।
 एकैकपलद्वयं तु दद्याद् यावच्च विंशति ॥ ४ ॥
 उत्तमाश्वस्य मात्रैषा मध्यमस्य चतुर्दश ।
 जघन्यस्य पलान्यष्टौ मात्रैषा न विरोधिनी ॥ ५ ॥
 हीनन्तु रसमात्रातो भागेनैकेन बुद्धिमान् ।
 यवकर्त्तन संपुष्टं मांसयुक्तं प्रदापयेत् ॥ ६ ॥
 प्रत्यहं दापयेत्तावद् यावन्मात्रा विवर्द्धते ।
 मात्रावृष्टिं भिषग्युक्त्या दद्यादेकान्तरं ततः ॥ ७ ॥
 रसोनस्य प्रथोमस्य हेमन्ते शिशिरे तथा ।
 प्राहृत्काले वसन्ते च मध्यमः परिकीर्तितः ॥ ८ ॥
 शरन्निदाघयोश्चापि नैव देयः कदाचन ।
 प्राहृत्काले प्रदातव्यो जलपूर्णं महीतले ॥ ९ ॥
 वातिकेषु विकारेषु तिलतैलेन योजितः ।
 क्षीरसर्पिःसमायुक्तः पित्ते वै शर्करान्वितः ॥ १० ॥
 कफे कटुकतैलेन कटुकैरवचूर्णितः ।
 रसः प्रभाते दातव्यः सायं कल्कस्तु भोजने ॥ ११ ॥
 पिण्डेनैव प्रदातव्यो रसोनस्तु विजानता ।
 वायौ प्रधानः पित्ते तु विषमस्तु कफे समः ॥ १२ ॥
 वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा पानमिथ्यते ।
 रसं दद्यात् प्रभाते तु स्तोकं वातं निवारयेत् ॥ १३ ॥
 औदकं मधुरं वापि दद्याद् घासं ततो बुधः ।
 शीतलं विमलं तोयं स्थानं वापि सुखानिलम् ॥ १४ ॥
 कल्कप्रयोगे विहितो विधिरेष शरद्वितः ।
 महागुणं स्मृतं पानं सकल्कञ्च मनीषिभिः ॥ १५ ॥
 कल्कप्रयोगेऽल्पगुणं तथा चात्ययवर्जितम् ।
 क्रियावसाने दातव्यं शालिषष्टिकपायसम् ॥ १६ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा शर्करासर्पिषान्वितम् ।
 पुराणः स तु विज्ञेयो नैव देयस्तु वाजिनाम् ॥ १७ ॥
 विधिरिष समुद्दिष्टः पूर्वशास्त्रविशारदैः ।
 द्विगुणञ्चापि सप्ताहं तुरङ्गं नैव वाहयेत् ॥ १८ ॥
 स्वाद्दुशीतोपचारश्च तत्र यावत् प्रकीर्तितः ।
 रसोने तु यदा स्वेदी श्वासवान् जायते ह्यः ॥ १९ ॥
 व्यापद्युक्तः स विज्ञेयस्तस्य कुर्याद्भिषक् क्रियाम् ।
 पित्तज्वरसमुद्दिष्टां क्रियां सर्वां प्रयोजयेत् ॥ २० ॥
 रसोनव्यापदाघाते तुरङ्गं मतिमान् भिषक् ।
 वातभुग्नास्थिगात्रेषु मारुताहतमूर्तिषु ॥ २१ ॥
 ब्रह्मेषु च विशेषेण रसोनञ्च प्रदापयेत् ।
 समाहमेकं द्विगुणं त्रिगुणं वा यथाविधि ।
 प्रयोगोऽस्य स्मृतः सम्यग् यथाशास्त्रं तपोधनैः ॥ २२ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे रसोनकल्पे
 षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

गुग्गुलुकल्पः ।

सिग्धः काञ्चनसङ्काशः पक्कजम्बूलोपमः ।
 शोभनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यश्च पिच्छिलः ॥ १ ॥
 सुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वसमन्वितः ।
 पुराणः स तु विज्ञेयो नैव देयस्तु वाजिनः ॥ २ ॥
 विधिरस्य द्विधा प्रोक्तः पूर्वशास्त्रविशारदैः ।
 एकः पाने प्रयोगेण द्वितीयो भोजनेन तु ॥ ३ ॥
 अर्द्धप्रहरगे सूर्ये गुग्गुलुं दापयेद्भिषक् ।

अष्टभागावशिष्टेऽङ्गि भोजने संप्रदापयेत् ॥ ४ ॥
 दत्त्वा तु गुग्गुलुं पाने अनुपानं ततो बुधः ।
 न द्वितीये चतुर्थे वा गोक्षीरञ्च प्रदापयेत् ॥ ५ ॥
 गुग्गुलुं पाययित्वा तु भोजयेत्तुरगं भिषक् ।
 विकाले भोजयेद् भक्त्या भोजनैरक्षमात्रकैः ॥ ६ ॥
 शाल्यन्नं वातले दद्यात् मांसानां रसकैर्युतम् ।
 पित्ते मुद्गं ससर्पिञ्च भोजयेन्मधुना ततः ॥ ७ ॥
 पञ्चतिक्तजले स्विन्नान् कटुकैरवचूर्णितान् ।
 तथा मुद्गान् कुलत्यांश्च कफे विहान् प्रदापयेत् ॥ ८ ॥
 पीतगुग्गुलुके वाह्ने क्षुधार्त्ते दापयेत्ततः ।
 प्रहरं प्रहराङ्गं वा नैव घासं प्रदापयेत् ॥ ९ ॥
 शृतं शीतं जलं पाने घासे दूर्वा प्रकीर्त्तिता ।
 मुनिभिः शालिहोत्राद्यैः शास्त्रमार्गानुसारतः ॥ १० ॥
 व्याधितेषु तुरङ्गेषु पाने देयस्तु गुग्गुलुः ।
 स्वस्थानां वापि पुष्ट्यर्थं भोजने संप्रदापयेत् ॥ ११ ॥
 त्रिषु दोषेषु दुष्टेषु रक्ते रिक्ते तथा व्रणे ।
 खञ्जे च दुर्बले वापि एकस्मिन्नेव वासरे ॥ १२ ॥
 प्रथमेऽङ्गि पलं दद्यात् प्रतिकर्षं प्रवर्द्धते ।
 पलानां पञ्चकं देयमेकस्मिन्नेव वासरे ॥ १३ ॥
 उत्तमस्य तुरङ्गस्य मध्यमस्य चतुष्टयम् ।
 पलानि त्रीणि देयानि जघन्यस्य तथा विधिः ॥ १४ ॥
 अस्मात् प्रमाणादधिको नैव देयः कदाचन ।
 पानाद्दूर्ध्वं न दातव्यो भोजने वापि गुग्गुलुः ॥ १५ ॥
 पलान्यशीतिः प्रवरः प्रायोऽश्वस्य प्रकीर्त्तितः ।
 षष्टिर्मध्यः समुद्दिष्टश्चत्वारिंशतिरन्यतः ॥ १६ ॥
 व्रणे कुष्ठिषु खञ्जेषु त्रिफलाक्वाथसंयुतः ।

मन्दाग्नी शोथरोगे च गवां मूत्रेण योजितः ॥ १७ ॥
 वातपित्तोल्बणे व्याधी गोक्षीरघृतसंयुतः ।
 देयः कृशानां पुष्ट्यर्थं मांसैर्युक्तश्च भोजने ॥ १८ ॥
 इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतेऽश्वशास्त्रे गुग्गुलुकल्प
 सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ।

अथ अष्टषष्ठितमोऽध्यायः ।

रसायनकल्पः ।

प्रकृष्टाय प्रदातव्यं गुडूच्याः पलपञ्चकम् ।
 प्रभाते घृतसंयुक्तं शरद्ग्रौष्मेषु वाजिनम् ॥ १ ॥
 गोगघ्नं पुष्टिदं वापि बलतजो विवर्द्धनम् ।
 तमेव सतिमान् दद्यात् क्षीरयुक्तमथापि वा ॥ २ ॥
 गुडूची कल्कयोगेन शतावर्थ्यश्वगन्धयोः ।
 मूलकल्कः प्रदातव्यः कुक्कुट्याश्च विशेषतः ॥ ३ ॥
 पलानि पञ्च वाहस्य उत्तमस्य प्रदापयेत् ।
 मध्यमं पलचत्वारि अधमस्य पलत्रयम् ॥ ४ ॥
 औषधी न च दातव्या एषां श्लेष्मान्विते ह्ये ।
 वातिके पैत्तिके वापि विहिता शास्त्रवेदिभिः ॥ ५ ॥
 हरीतक्यामलाकल्कः प्रावृट्काले विधौ स्मृतः ।
 तं नात्र नो विनिर्दिष्टः पुनरुक्ताभिश्च यथा ॥ ६ ॥
 एवं विरिक्तं शुद्धाङ्गं कृत्वा यत्नेन वाजिनम् ।
 दद्याद् गोमूत्रसंयुक्तां सतैलाञ्च हरीतकीम् ।
 नित्यं त्रिसप्तकं यावत् पलपञ्चप्रमाणतः ॥ ७ ॥
 मौवर्चलं तथा हिङ्गु पुष्करं विडदाडिमम् ।
 ग्रन्थिकं मेथिकाक्षैषां भिषक् पिण्डञ्च कारयेत् ॥ ८ ॥

रक्तपित्तं ज्वरं हन्ति कासं श्वासं तथा घृणिम् ।

विद्रधिं क्षयरोगञ्च नाशयेद्वाजिनां भ्रुवम् ॥ ८ ॥

श्रीशालिहोत्रादिमुनिप्रणीतं दृष्ट्वाश्वशास्त्रं बहुविस्तरञ्च ।

स्वल्पप्रबोधं सफलं यथार्थं कृतञ्च तद्वै जयदत्तकेन ॥ १० ॥

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृतंऽश्वशास्त्रे रसायनकल्पे

अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

इति श्रीमहासामन्तजयदत्तकृताश्ववैद्यकशास्त्रं

समाप्तम् ।

अश्वचिकित्सितम् ।



प्रथमोऽध्यायः ।

येन ज्ञानवता हिमालयतरुच्छायासु विक्रीडितम् ।
यः स्नातो हिमपुष्पवातशिशिरे गङ्गाजले पावने ॥
रेमे यस्तु तुरङ्गयुथजनितैर्नानाविधैर्हेषितैः ।
पायाहः स तुरङ्गघोषतनयः श्रौशालिहोत्रो मुनिः ॥ १ ॥
जयति च पाण्डवनाथो धर्मसनाथो युधिष्ठिरो नृपतिः ।
भीमार्जुनसहदेवास्तदनु च ये वाजिशस्त्रतत्त्वज्ञाः ॥ २ ॥
दृष्ट्वा सम्यङ्गनकुलः शास्त्रं कृतस्त्रं च शालिहोत्रीयम् ।
ब्रूते शास्त्रार्थमन्यच्छास्त्रं कृत्वा समासेन ॥ ३ ॥
प्रश्नो जातिवर्णमावर्त्तदन्ता लक्षं वेगा वाहनं धातुरस्रम् ।
कालो नस्यं पिण्डमाज्यं कषायं शालां चेष्टां वाजिनामत्र वच्चे ॥ ४ ॥
सपत्ता वाजिनः सर्वे सञ्जाता व्योमचारिणः ।
गन्धर्वेभ्यो यथाकामं गच्छन्ति च समन्ततः ॥ ५ ॥
तान् दृष्ट्वा जवसम्पन्नानसह्यान् वाहनोचितान् ।
शक्रः प्रोवाच पार्श्वस्थं शालिहोत्रं मुनीश्वरम् ॥ ६ ॥
नास्त्यसाध्यं मुने ! किञ्चिद्भवतो भुवनत्रये ।
तस्मादाशु कुरुष्व त्वं वाहनार्हान् हयोत्तमान् ॥ ७ ॥
ये च मे युद्धकालेषु प्रवहन्ति रथं सदा ।
अशक्यं वारणेन्द्रेषु दानवैर्बलवत्तरैः ॥ ८ ॥
द्वेषिकास्त्रं समुत्सृज्य पन्नच्छेदं व्यधात्तदा ।
वाजिनां शक्रवाक्येन शालिहोत्री महामुनिः ॥ ९ ॥

छिन्नपक्षास्तु ते सर्वे गत्वा तमृषिमब्रुवन् ।

द्रीनाः सुदुःखसम्पन्ना रुधिरेण परिप्लुताः ॥ १० ॥

भगवन् ! किं निमित्तं नः पक्षच्छेदः कृतस्त्वया ।

अपराधविहीनानां नेदृगिच्छन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥

तस्माद्गतिर्भव प्राज्ञ ! सर्वेषामिह वाजिनाम् ।

यथा स्यात् सर्वदा सौख्यं पुष्टिश्च मुनिपुङ्गव ! ॥ १२ ॥

अथासौ कृपयाविष्टस्तानुवाच सुदुःखितान् ।

इन्द्रादेशात् कृतं सर्वं भवतां पक्षपातनम् ॥ १३ ॥

तस्माद्दः प्रकरिष्यमि भविष्यति यथा सुखम् ।

पुष्टीरम्या यथा देहे गौरवं च जगत्तये ॥ १४ ॥

ययं शक्रादिदेवानां वाहनत्वं करिष्यथ ।

तथा भूमिपतीनाञ्च गौरवेण समन्विताः ॥ १५ ॥

यो राजा भवतां पुष्टिं खन्नपानादिभिः सदा ।

करिष्यति न सन्देहो भविष्यति स दुर्जयः ॥ १६ ॥

न च त्यक्ष्यति तं लक्ष्मीः कदाचिज्जयलक्षणा ।

अपि सर्वैर्गुणैर्हीनं बहुशत्रुभिरावृतम् ॥ १७ ॥

तथाचैव विधास्यामि परमञ्च चिकित्सितम् ।

पुष्ट्यै च रोगनाशार्थं नराणां विहितं यथा ॥ १८ ॥

तस्माद्गच्छत भूलोकं पातालञ्च तथापरि ।

स्वर्गं चान्ये मदादेशाद्येन शान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ १९ ॥

एवं विष्टज्य तान् सर्वान् शालिहोत्रस्तुरङ्गमान् ।

चक्रे द्वादशसाहस्रीं तदर्थं संहितां सुधीः ॥ २० ॥

ततःप्रभृति लोकेऽस्मिन् वाह्या जातास्तुरङ्गमाः ।

ततश्चिकित्सितं तेषां शालिहोत्रप्रभाषितम् ॥ २१ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते प्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

जाति ।

उत्तमा मध्यमा नीचाः कनीयांसस्तथापरि ।
चतुर्धा वाजिनो भूमौ जायन्ते देशसंश्रयात् ॥ १ ॥
ताजिकाः खुरशणाश्च उत्तराश्चोत्तमा हयाः ।
गोजिकाणाश्च केकाणाः प्रौढाहाराश्च मध्यमाः ॥ २ ॥
भाण्डजाश्चोत्तमांसाश्च राजशूलाश्च मध्यमाः ।
गोह्वराः शावराश्चैव सिन्धुपाराः कनीयसः ॥ ३ ॥
अन्यदेशोद्भवा ये च नीचनीचाश्च ते स्मृताः ।
वाजिनो जलजाः केचिद्वह्निजातास्तथापरि ॥ ४ ॥
समीरप्रभवाश्चान्ये उलूकमृगजास्तथा ।
जलोद्भवा द्विजातीयाः क्षत्रिया वृद्धिसम्भवाः ॥ ५ ॥
समीरप्रभवा वैश्या एणिलूकाश्च शूद्रजाः ।
विवेकी सष्टृणो विप्रस्तेजस्वी क्षत्रियो बली ॥ ६ ॥
दुष्टभावस्तथा वैश्यः शूद्रो निःसत्वकातरः ।
ब्राह्मणः सामवाही च भेदवाही च क्षत्रियः ॥ ७ ॥
उपादानेन वैश्यः स्याच्छूद्रो दण्डेन ताडितः ।
पुष्पगन्धः सदा विप्रः क्षत्रियोऽगुरुगन्धकः ॥ ८ ॥
घृतगन्धः सदा वैश्यो मीनामोदी च शूद्रकः ।
विप्रार्हा वाजिनः सर्वे क्षत्रियो भूपतेः सदा ॥ ९ ॥
द्वौ वैश्यस्याथ शूद्रस्य शूद्र एव सुखावहः ।
केचिदिच्छन्ति भूपानां सर्वेऽश्वा वाहनोचिताः ॥ १० ॥
तदर्थं भूतले यस्माच्छालिहोत्रेण निर्मिताः ।
ब्राह्मणाः क्षेमकृत्येषु सिद्धिं गच्छन्ति वाजिनः ॥ ११ ॥

क्षत्रिया युद्धकार्येषु वैश्या वित्तार्जने सदा ।
 शूद्राश्चान्येषु कृत्येषु ज्ञात्वैवं वाजिनः सदा ॥ १२ ॥
 आरोहेत् सर्वकार्येषु यदीच्छेच्छाश्वतीं त्रियम् ।
 सदा शुभा भवन्त्येते वाजिनो यस्य भूतले ॥ १३ ॥
 सदैव निद्रावशगा निद्राच्छेदस्य सम्भवः ।
 जायते सङ्गरे प्राप्ते कर्करस्य च भक्षणे ॥ १४ ॥
 प्रबुद्धाः कथयन्त्यश्वाः शुभं वा यदि वाशुभम् ।
 स्वस्वामिनो निजैश्चिह्नैस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥ १५ ॥
 यः सन्नद्धो हयो रात्रिमूर्ध्वमूर्ध्वं करोति च ।
 खुराग्रेण लिखन् भूमिं स शंसति रणे जयम् ॥ १६ ॥
 यः करोत्यसक्तन् मूर्ध्वं पुरीषश्चाशुमोक्षणम् ।
 स शंसति पराभूतिं यश्चैवं वर्त्तते हयः ॥ १७ ॥
 निरामिषं निशीथे यो जागर्त्ति नृपतेर्हयः ।
 स शंसति द्रुतन्तस्य स्थिरस्यापि प्रयाणकम् ॥ १८ ॥
 यदा व्याधिं विना वाजी यासन्त्यजति दुर्मनाः ।
 अशुपातञ्च कुरुते तदा भर्तुरशोभनम् ॥ १९ ॥
 पुलकाङ्कितपुच्छा ये जायन्ते भूपतेर्हयाः ।
 निरौक्षन्तः प्रभोर्नाशं ते वदन्ति निशागमे ॥ २० ॥
 शरटं रक्षयेद्यत्नात् प्रविशन्तं हयालये ।
 यदीच्छेच्छाश्वतीं वृद्धिं तेषाञ्चैव तथात्मनः ॥ २१ ॥
 स्फुलिङ्गा यस्य दृश्यन्ते पुच्छदेशे च वङ्गिजाः ।
 परचक्रागमाशंसी विज्ञेयो हयपण्डितैः ॥ २२ ॥
 अश्वशालां समासाद्य यदान्तर्मधुमक्षिकाः ।
 मधुजालं प्रकुर्वन्ति तदाश्वान् घ्नन्ति कृत्स्नशः ॥ २३ ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वाजिशालां प्ररक्षयेत् ।
 उपायेभ्यश्च सर्वेभ्यो य इच्छेद्भ्रतिमात्मनः ॥ २४ ॥

ब्राह्मणान् वाचयेत् स्वस्ति नित्यं वेदविचक्षणान् ।
 तिलहोमस्तथा कार्थ्यां जपञ्च शतरुद्रियः ॥ २५ ॥
 मन्दुरान्ते सदा धार्यो रक्तवक्त्रो महाकपिः ।
 सर्वपापविनाशाय वाजिनाञ्च विवृद्धये ॥ २६ ॥
 शरघां रक्षयेद् यन्नात् प्रविशन्तीं हयालये ।
 यदौच्छेच्छाश्वतीमृद्धिं तेषाञ्चैव तथात्मनः ॥ २७ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते जात्यधिकारे
 द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

वर्णवर्णनम् ।

वर्णाः सप्त भवन्तीह सर्वेषां वाजिनां ध्रुवम् ।
 तानहं कीर्त्तयिष्यामि भेदैर्जाताननेकधा ॥ १ ॥
 सितो रक्तस्तथा पीतः सारङ्गः पिङ्ग एव च ।
 नीलः कृष्णोऽथ सर्वेषां श्वेतः श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ २ ॥
 पट्टार्ही भूपतेर्वाजी सर्वश्वेतः प्रशस्यते ।
 तदभावे यथा प्रोक्तास्तथा श्रेष्ठाः क्रमेण च ॥ ३ ॥
 श्वेतः प्रालेयसङ्काशो रक्तः कुङ्कुमसन्निभः ।
 हरिद्रासदृशः पीतः सारङ्गः कर्पूरः स्मृतः ॥ ४ ॥
 पिङ्गः कपिलकाकारो नीलो दूर्वाग्रसन्निभः ।
 कृष्णो जम्बूफलाकारः शास्त्रज्ञैः समुदाहृतः ॥ ५ ॥
 पीताभः श्वेतपादो यस्तथा स्यात्सितलोचनः ।
 चक्रवाकः स विज्ञेयो राजार्ही वाजिसत्तमः ॥ ६ ॥

सर्वश्वेतो ह्यो यस्तु भवेन्नैत्रककर्णकः ।
 स वाजी वाजिमैधार्हः श्यामकर्णः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
 मुखे चन्द्रकसंवीतो जम्बूफलसमाकृतिः ।
 श्वेतपादः स विज्ञेयो मल्लिकाख्यः स पूजितः ॥ ८ ॥
 चत्वारोऽप्यसिताः पादाः सर्वश्वेतस्य वाजिनः ।
 भवन्ति यस्य स त्वाज्यो यमदूतः सुदूरतः ॥ ९ ॥
 यस्य पादाः सिताः सर्वे पुच्छं वक्षो मुखं तथा ।
 मूर्द्धजाश्च सिता यस्य तं विद्यादष्टमङ्गलम् ॥ १० ॥
 भस्माभं वाजिनं जह्यात् सुदूरेण नराधिपः ।
 यदि वाञ्छति कल्याणं वाञ्छेच्च श्रीसमुद्भवम् ॥ ११ ॥
 यस्य रोमविभेदेन जायन्ते रोमविन्दवः ।
 पुष्पाख्यः स परित्वाज्यः सर्ववाजिभयावहः ॥ १२ ॥
 यस्य पादाः सिता सर्वे तथा वक्त्रञ्च मध्यतः ।
 कल्याणपञ्चकः प्रोक्तः सर्वकल्याणकञ्च सः ॥ १३ ॥
 विमिश्रवर्णकाः सर्वे प्रशस्ता वाजिनः स्मृताः ।
 कृष्णनीलस्य मिश्रत्वमेकं मुक्त्वा सुदूरतः ॥ १४ ॥
 यस्योत्कृष्टतरो वर्णो वृद्धिं याति शनैः शनैः ।
 नाशयति तथा नीचान् स करोति बहून् हयान् ॥ १५ ॥
 यस्याधमेन वर्णेन ह्याद्यते च प्रधानजः ।
 विवृद्धिं गच्छता सोऽथ करोति हयसंक्षयम् ॥ १६ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते वर्णो नाम

तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थोऽध्यायः ।

आवर्त्ताः ।

आवर्त्ता विंशतिः प्रोक्ताः शालिहोत्रमहात्मना ।
गात्रस्थानविभागेन तेषां व्यक्तिर्मयोच्यते ॥ १ ॥
ललाटे मस्तके चैव ग्रीवायां हृदये तथा ।
पादे पृष्ठे मण्डीबन्धे नाभिदेशे विशेषतः ॥ २ ॥
स्कन्धे पार्श्वे गले वक्त्रे कुक्षौ रन्ध्रे त्रिके तथा ।
आद्यास्त्रयोदशवर्त्ता विज्ञेया वाजिपण्डितैः ॥ ३ ॥
नासिकाग्रे ललाटाग्रे शङ्खे कण्ठे च मस्तके ।
आवर्त्ता जायते येषां ते धन्यास्तुरगोत्तमाः ॥ ४ ॥
हृदि स्कन्धे गले चैव कटिदेशे तथैव च ।
नाभौ कुक्षौ च पार्श्वार्द्धे मध्यमास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥
ललाटे यस्य चावर्त्ता द्वितीयस्य स लिङ्गकः ।
मस्तके च तृतीयश्च पूर्णकुक्षिः स उत्तमः ॥ ६ ॥
पृष्ठवंशे तथावर्त्ता यस्यैकः संप्रजायते ।
स करोत्यश्वसङ्घातान् स्वामिनः सूर्यसंज्ञकः ॥ ७ ॥
कक्षायां जानुमेद्रे च त्रिबलौ पुच्छसन्निधौ ।
पुच्छे गुह्ये बलावष्टावावर्त्ता अधमा ह्ये ॥ ८ ॥
त्रयो यस्य ललाटस्था आवर्त्ता अधरोत्तराः ।
त्रिकूटः स परिज्ञेयो वाजिद्विकरः परः ॥ ९ ॥
एवमेव प्रकारेण त्रयो ग्रीवां समाश्रिताः ।
त्रयावर्त्तः स वाजीशो जायते भूपमन्दिरे ॥ १० ॥
ललाटे युगलावर्त्तौ चन्द्राकौ संप्रकीर्त्तिता ।
वाजिनो यदि तौ स्यातां राष्ट्रद्विकरौ परौ ॥ ११ ॥
उपर्यपरि यस्य स्युरावर्त्ता अलिके त्रयः ।

निःश्रेणिः स तु विज्ञेयो राष्ट्रवृद्धिकरः परः ॥ १२ ॥
 एकोऽथवा कपोलस्थो यस्यावर्त्तः प्रदृश्यते ।
 वर्त्तमानः स विज्ञेयः स इच्छेत् स्वामिनाशनम् ॥ १३ ॥
 कपोलाभ्यां तथावर्त्तो विद्येते वाजिनो यदि ।
 तावश्चिनाविति प्रोक्तौ युद्धकाले जयप्रदौ ॥ १४ ॥
 गण्डावर्त्तो भवेद्यस्य वाजिनो दक्षिणाश्रयः ।
 स करोति महासौख्यं स्वामिनः शिवसंज्ञकः ॥ १५ ॥
 तद्वदामाश्रयः क्रूरः प्रकरोति धनक्षयम् ।
 इन्द्रकाख्यावुभौ शस्तौ नृपराज्यविद्वद्धिदौ ॥ १६ ॥
 कर्णमूले यदावर्त्तस्तन्मध्ये च तथापरः ।
 विजयाख्यावुभौ ज्ञेयो युद्धकाले जयप्रदौ ॥ १७ ॥
 नासामध्ये यदावर्त्त एको वा यदि वा त्रयः ।
 चक्रवर्त्तो स विज्ञेयो वाजी भूपालपूजितः ॥ १८ ॥
 कण्ठे यस्य महावर्त्त एकोऽश्वस्य प्रजायते ।
 चिन्तामणिः स विज्ञेयश्चिन्तितार्थविद्वद्धिदः ॥ १९ ॥
 स्कन्धे पार्श्वे यदावर्त्तः स भवेत् पद्मलक्षणः ।
 करोति विधिवत् पद्मे स्वामिनः सततं सुखम् ॥ २० ॥
 शुक्याख्यौ तालुकाम्नास्थावावर्त्तो कीर्त्तिवृद्धिदौ ।
 हयस्य स्वामियुक्तस्य सदैव सुसुखावहौ ॥ २१ ॥
 एकावर्त्तो भवेद्यस्य कक्षान्ते वाजिनो यदा ।
 स रणे मृत्युमाप्नोति द्वौ च स्वामिविनाशनौ ॥ २२ ॥
 जानुदेशे यदावर्त्तो वाजिनः संप्रदृश्यते ।
 प्रवासं सततं ब्रूते स्वभर्त्तुः क्लेशसंयुतम् ॥ २३ ॥
 वाजी मेढ्रतलावर्त्तो वर्जनीयो महीभुजाम् ।
 स करोति हरेर्नाशं परचारसमुद्भवम् ॥ २४ ॥
 त्रिवलिस्थो यदावर्त्तस्त्रिवर्गस्य प्रणाशकः ।

वाजिनस्ते परिज्ञेयाः स्त्रीपार्श्वस्था भयप्रदाः ॥ २५ ॥
 पुच्छदेशे यदावर्त्तो वाजिनः संप्रदृश्यते ।
 धूमकेतुरिति ख्यातः स त्याज्यो दूरतो नृपैः ॥ २६ ॥
 गुह्ये पुच्छे बली यस्य भवन्त्यावर्त्तकास्त्रयः ।
 स कृतान्तस्वरूपेण वर्जनीयस्तुरङ्गमः ॥ २७ ॥
 अध ऊर्ध्वं यदा वाजी सम्पुटं न स्पृशेत् क्वचित् ।
 यमदूतः स विज्ञेयो वर्जनीयः प्रयत्नतः ॥ २८ ॥
 हीनदन्तोऽधिदन्तश्च कराली कृष्णतालुकः ।
 मुशली च तथा शृङ्गी षडेते स्वामिघ्नातकाः ॥ २९ ॥
 एकाण्डजातश्चैकाण्डो हीनाङ्गोऽप्यधिकाङ्गकः ।
 परित्याज्यः स वाञ्छद्भिरन्विष्य परमं यशः ॥ ३० ॥
 घण्टी वदनको बाली शृङ्गी चैव चतुर्थकः ।
 वर्जनीयः प्रयत्नेन सर्वे ते पापकृत्तमाः ॥ ३१ ॥
 घण्टी च स्वामिनं हन्ति वदनी धनसंचयम् ।
 अन्तःपुरं तथा वाली शृङ्गी राष्ट्रविनाशनः ॥ ३२ ॥
 षट्पदाभो भवेद्यश्च कृष्णतालुर्न दुष्यति ।
 शङ्खपादमुखो यस्तु आवर्त्तैः कुम्भितैरपि ।
 न दुष्यति सदावर्त्तः शालिहीत्रमतं यथा ॥ ३३ ॥

इति श्रीनकुलविरचितेऽश्वचिकित्सिते
 आवर्त्ताऽध्यायश्चतुर्थः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

दन्ताः ।

दन्तोद्भेदं प्रवक्ष्यामि वाजिनामायुलक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण आयुर्ज्ञानं प्रचक्षते ॥ १ ॥
अश्वस्तु तनुभिर्दन्तैः क्षीरदन्त इति स्मृतः ।
तथा षोडशभिः कोणो प्राञ्चैर्द्वादशमासिकः ॥ २ ॥
त्रिंशन्मासोद्भवाः सर्वे अखण्डाः परिकीर्त्तिताः ।
हौ स्यातां हौ च न स्यातां मूर्द्धोपरि यथाक्रमम् ॥ ३ ॥
चतुर्भिर्वत्सरैर्दन्ताः कालिकान्ये भवन्ति च ।
तथान्यः सप्तमे वर्षे चतुर्थः कालिको भवेत् ॥ ४ ॥
अष्टमे वत्सरे प्राप्ते प्राप्ताः स्युः सार्वकालिकाः ।
नवमे त्वयवा रेखा पीतत्वं शंसयन्ति च ॥ ५ ॥
तथाप्येकादशे वर्षे तावत् पीतत्वमागताः ।
तिष्ठन्ति दशनास्तेषां वाजिनामप्यसंशयम् ॥ ६ ॥
ततः श्वेता प्रदृश्यन्ते यावद्वर्षत्रयं पुनः ।
ततः काचप्रभाः सम्यक् यावत् संवत्सरास्त्रयः ॥ ७ ॥
ततः सप्तदशादूर्द्ध्वं यावद्वर्षाणि विंशतिः ।
मक्षिकाभा रदास्तेषां यावद्वर्षत्रयं पुनः ॥ ८ ॥
तस्मादुदूर्खलं प्राप्तास्तावद्वर्षत्रयं पुनः ।
प्रकम्पञ्च समागम्य पश्चात् पातः समात्रयम् ॥ ९ ॥
द्वात्रिंशद्वत्सरैरेव वाजी निर्वाणमाप्नुयात् ।
दंष्ट्राचतुष्टयं श्वेतं वक्त्रेण परमायुषि ॥ १० ॥
अश्वानामेव सर्वेषां दन्ता द्वादश कीर्त्तिताः ।
कालिका हारिणी शक्ता काचा वाप्यथ मक्षिका ॥ ११ ॥
शङ्खोदूर्खलकश्चैव दन्तानाञ्चलनं तथा ।

ततस्तु पतनं विद्यादेष व्यञ्जनसंग्रहः ॥ १२ ॥
 चतुर्विंशतयो दंष्ट्राः शालिहोत्रमतं तथा ।
 एवं दन्तविशेषेण सर्वेषामिह वाजिनाम् ।
 विज्ञेया चायुषः सङ्ख्या वाजिपोषणतत्परैः ॥ १३ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते दन्तोद्भेदो नाम
 पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अवयवप्रमाणम् ।

दीर्घसूक्ष्मविमांसास्था ये भवन्ति तुरङ्गमाः ।
 ते शस्ताः पार्थिवेन्द्रस्य यानवाहनकर्मणि ॥ १ ॥
 स्कन्धमभ्युन्नतं दीर्घं वक्रग्रीवं विशेषतः ।
 चमरालङ्कृतं सम्यक् स्तोकबालसमन्वितम् ॥ २ ॥
 येषां पृष्ठं सुवंशं स्याद्विपुलं व्रणवर्जितम् ।
 किञ्चिन्मध्यं भवेन्निम्नं राजार्हास्ते तुरङ्गमाः ॥ ३ ॥
 स्निग्धरोमा सुवृत्ता च सुस्थूला विपुला कटी ।
 ग्रथिताः सुदृढा रम्या भुजा मांसप्रपूरिताः ॥ ४ ॥
 पादा निर्मांसला वक्राश्चक्राकारखुरान्विताः ।
 अप्रमाणं तथा वक्षः कर्णौ लघुतरौ स्मृतौ ॥ ५ ॥
 पार्श्वौ तनुतरौ शस्तौ सुरसस्निग्धतालुकम् ।
 दन्ताश्च शिखराकारा विपुला चन्द्रवर्चसः ॥ ६ ॥
 सप्तविंशप्रमाणेन मुखमश्वस्य शस्यते ।
 कर्णौ षडङ्गुली प्रोक्तौ तालुकं चतुरङ्गुलम् ॥ ७ ॥

चत्वारिंशच्च सप्ताब्द्याः स्कन्धाः सम्यक् प्रकीर्त्तिताः ।
 पृष्टवंशश्चतुर्विंशः सप्तविंशा तथा कटी ॥ ८ ॥
 अतिसूक्ष्मं तथा निम्नं पुच्छं हस्तद्वयायतम् ।
 लिङ्गं हस्तप्रमाणञ्च तथाण्डौ चतुरङ्गुली ॥ ९ ॥
 मार्गस्थानं चतुर्विंशं हृदयं षोडशाङ्गुलम् ।
 कटिकक्षान्तरञ्चोक्तं चत्वारिंशत् प्रमाणतः ॥ १० ॥
 मणिबन्धद्वयं चैव खुराश्च चतुरङ्गुला ।
 अशीत्यङ्गुल उत्सेधो दैर्घ्यञ्च द्वयधिकं शतम् ।
 एवं क्रमेण गात्रस्य प्रमाणं वाजिनां मतम् ॥ ११ ॥
 दीर्घाणि चत्वारि तथोन्नतानि चत्वारि रक्तानि च सूक्ष्मकाणि ।
 ऋस्वानि चत्वार्यथ चायतानि भूयश्च चत्वार्यथ नम्रकाणि ॥ १२ ॥
 द्वाविंशत् क्रमशोऽप्याहुर्लक्षणानि मुनीश्वराः ।
 तान्यहं कीर्त्तयिष्यामि वाजिनाञ्च पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥
 आस्यं भुजौ केशककाटिकाश्च दीर्घं चतुष्कं तुरगस्य शस्तम् ।
 तथोन्नते घ्राणपुटे ललाटे शफाश्च तज्ज्जाश्चरणौ वदन्ति ॥ १४ ॥
 श्रोष्ठौ च जिह्वाप्यथ तालुकञ्च मेढ्रं सुरक्तं शुभदं हयस्य ।
 लघूनिबन्धाश्चरणेषु कोष्ठं श्रोत्राणि सर्वाणि तथैव पुच्छम् ॥ १५ ॥
 कर्णान्तरं कर्णसमन्वितञ्च वंशं तथा ऋस्वतरं प्रशस्तम् ।
 वक्तं मुखं कन्धरजानुनौ च पार्श्वञ्च सप्तेः शुभदं प्रदिष्टम् ॥ १६ ॥
 कक्षान्तरं चोदरमध्यमञ्च निम्ना कटी तानि सजानुकानि ।
 वक्षःशफोरुजघनस्थलञ्च चतुष्कमेतत् पृथुलं प्रदिष्टम् ॥ १७ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते सर्वावयव-
 प्रमाणो नाम षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

वेगः ।

गुणानामिह सर्वेषां गुणो वेगमयोऽधिकः ।
अश्वानां शस्यते तज्ज्ञैरश्वज्ञानविचक्षणैः ॥ १ ॥
संवाहनविधानेन प्रकाशं यान्त्यसंशयम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वेगो ज्ञेयश्च वाजिनाम् ॥ २ ॥
अवाहिता विनश्यन्ति विनश्यन्त्यतिवाहिताः ।
अश्वानां वाहनं पथं सानुरागञ्च मोक्षणम् ॥ ३ ॥
अधमा मध्यमास्ते स्युर्मध्यमाश्च तथोत्तमाः ।
उत्तमाश्चोत्तमा भूयो वाह्यमाना स्तुरङ्गमाः ॥ ४ ॥
रूढमश्वविदां श्रेष्ठं रूढे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
रूढेन तु विहीनस्य लक्षणं चाप्यलक्षणम् ॥ ५ ॥
रूपावर्तगतिच्छाया सत्ववर्णवयोबलम् ।
जवहीनस्य वाहस्य सर्वमेव निरर्थकम् ॥ ६ ॥
गतेर्धन्यतरो वर्णो वर्णाद्धन्यतरः स्वरः ।
स्वराद्धन्यतरं सत्वं सर्वं सत्वे प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥
लघुत्वं मातृदोषेण पितृदोषेण जाड्यता ।
दौर्बल्यं स्वामिदोषेण स्वदोषो नास्ति वाजिनाम् ॥ ८ ॥

जवो हि सप्तेः प्रथमं विभूषणं

द्वपाङ्गनायाः कृशता तपस्विनः ।

द्विजस्य वेदोऽथ मुनेरपि क्षमा

पराक्रमः शस्त्रबलोपजीविनः ॥ ९ ॥

आकर्षन्निव गां वभन्निव खुरौ पश्चार्धमुद्यन्निव
स्त्रीकुर्वन्निव खं पिबन्निव दिशो वायुं समश्नन्निव ।
साङ्गारप्रकरणं सृशन्निव महीं छायामर्मर्षन्निव

चञ्चच्चामरवीज्यमानवदनः श्रीमान् हयो धावति ॥ १० ॥
 अलक्षितगतागतैर्मृगदृशां कटाक्षैरिव
 क्षणानुनयशीतलैः प्रलयकेलिकोपैरिव ।
 सुवृत्तमसृणोत्तरैर्मृगदृशामुरोजैरिव
 त्वदीयतुरगैरलं धरणिचक्रमाक्रम्यते ॥ ११ ॥
 येषां दीपशिखोपमानि नयनान्युद्धावितः सन्निव
 श्रीवा क्रौञ्चनिभा विभाति च समा पादाश्च मुद्गोपमाः ।
 वेगो वायुरिवाथ वानरसमः स्याद्धारणप्रेङ्खितम्
 शङ्खक्रीञ्चमृगेन्द्रदुन्दुभिघनव्याघ्रेभतुल्यस्वनः ॥ १२ ॥
 वक्त्रे यो हरिणाधिपप्रतिनिभो व्याघ्रोपमो बाहुभिः
 आवर्त्तेऽश्वशुभैः प्रधानकुलजाः सुस्निग्धवर्णप्रभाः ।
 उद्गात्ताः प्रियदर्शनाश्च सुभगाः श्वासैः सुगन्धैश्च ये
 धन्यास्ते जयराज्यवित्तसुखदाः संवाहका भूपतेः ॥ १३ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते वेगवर्णनी नाम
 सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

आरोहणम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि हयारोहणमुत्तमम् ।
 येन विज्ञानमात्रेण रेवन्तेनोपमीयते ॥ १ ॥
 चलकिसलयपादः कर्णमध्येकदृष्टिः
 न चलति कटिदेशे आसने संस्थितश्च ।
 हयहृदयगतिज्ञः स्थानदण्डावपाती
 स खलु तुरगयोक्ता मान्यते पार्थिवेन्द्रेः ॥ २ ॥

यो नित्यं दृढमुष्टिहस्तलघुकः क्रोधानलैर्वर्जितः
 सत्यैकस्थिरबुद्धिमध्यमतनुः शास्त्रस्थतत्त्वज्ञकः ।
 काले दण्डनिपातविश्रमयुतः ताम्बूलवक्त्रान्वितः
 त्वेवं लक्षणसंयुतो हयरुहो राज्याधिपैः पूज्यते ॥ ३ ॥

ऊरू स्थिरौ यस्य चलो च पादौ

त्रिकोन्नतं संहतमासनञ्च ।

स वाजिवाहः कथितः पृथिव्यां

शेषा नरा भारवहा हयानाम् ॥ ४ ॥

प्राज्ञः सत्वबलोत्साही दृढः सर्वाङ्गसौष्ठवः ।

जितशीतातपालस्यो जितायासो जितासनः ॥ ५ ॥

हयकालबलप्राणजवकामाध्वयोगवित् ।

शान्तोपचारसारज्ञो रणक्रीडासु दीक्षितः ॥ ६ ॥

वाजिनां हृदयज्ञश्च स्थाने दण्डनिपातवित् ।

दुष्टाश्वदमने दक्षः सर्वक्लेशसहः शुचिः ॥ ७ ॥

ग्रासौषधान्नपानीये परव्यूहावलोकने ।

त्रिषु श्रेष्ठः प्रवेशे च निर्गमे कुशलोऽस्त्ववित् ॥ ८ ॥

रोगं विकुरुते यश्च वृत्त्या वाधाविचारवित् ।

धनुःकुन्तासिशक्तिज्ञः सोऽश्ववाहः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥

वक्त्रे स्कन्धे मुखे कोष्ठे गात्रे सकथौ च ताडयेत् ।

उन्मार्गो यदि भ्रष्टोऽश्वो मूढः खलति ऋषते ॥ १० ॥

कुपिते पुच्छसंस्थाने भ्रान्ते जानुद्वयं तथा ।

सर्वथा प्राप्तदण्डस्य दण्डमेकं निपातयेत् ॥ ११ ॥

ऋषणे स्कन्धमुद्दिष्टं खलिते जघनान्तरम् ।

भीते वक्षःस्थलं हन्याद्वक्त्रश्चोन्मार्गगामिनम् ॥ १२ ॥

अस्थाने ताडितो वाजी बहन् दोषान् प्रदर्शयेत् ।

तावद्भवन्ति ते दोषा यावज्जीवत्यसौ हयः ॥ १३ ॥

दण्डेनाभिभवेद्वाहाद्भारोहेद्दण्डवर्जितान् ।
 दण्डो हि साधनं तीव्रं पदं दण्डात् प्रजायते ॥ १४ ॥
 तुलावदुद्धृता वला नात्युच्चा नातिलम्बिता ।
 दोषं दृष्ट्वा तु कर्त्तव्या तिर्यग्गोकुञ्चिता स्तथा ॥ १५ ॥
 कटिं समेध ग्रैथिल्याद्बहमानस्य ताडयेत् ।
 सद्यः प्रखलिते गात्रं तत्र दण्डं प्रदापयेत् ॥ १६ ॥
 अकालदण्डपाताच्च त्वकालग्रहमोक्षणात् ।
 अकालहिंसाघाताच्च तेन वाजी न धावति ॥ १७ ॥
 आसनं शिथिलं यस्य स्वरो यस्य न भौषणः ।
 लघुप्रहारदाता च वाजी तस्य न धावति ॥ १८ ॥
 सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वदोषविवर्जितः ।
 कुलशीलवलोपेतः कथमश्वो न धावति ॥ १९ ॥
 गतिरेका प्लुता चान्या चतुराख्या तृतीयका ।
 वेगसन्धिस्रुतुर्थी च धारावेगगतिस्तथा ॥ २० ॥
 श्लथरागार्थवेषस्य चञ्चलस्य त्रिकोणतः ।
 नित्यमुद्यतदण्डस्य तस्य वाजी न धावति ॥ २१ ॥
 धारा तु पञ्चमी प्रोक्ता न शृणोति न पश्यति ।
 सर्वकर्मक्षमो वाजी तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥
 इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते आरोहणाध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

ऋतुचर्या ।

कर्मचर्यासु नित्यानां शुद्धान्नं सुनिवर्हितम् ।
 धनुरष्टादशे योज्यं वाजिनां मण्डलं क्रमात् ॥ १ ॥

सङ्कोचयेज्जयं तावद् यावत् कार्मुकपञ्चकम् ।
 तदूर्ध्वं मण्डलैर्योज्यो गोमूत्रात्तदनन्तरम् ॥ २ ॥
 ऋजुर्वृत्तानुवृत्ता च गोमूत्रा सर्वकर्मसु ।
 युज्यमानानि दृश्यन्ते प्रायशो हि विचक्षणैः ॥ ३ ॥
 शालिहोत्रमुनिप्रोक्ता चर्या षोडश वाजिनाम् ।
 तासामनुपयोगित्वान्न कृतः संग्रहो मया ॥ ४ ॥
 तीक्ष्णस्वकेन सुदितो द्वाभ्यां भद्रस्तु धावति ।
 त्रिभिर्दण्डैस्तदा मन्दः क्रमात् षष्ठाभिताडनैः ॥ ५ ॥
 तीक्ष्णाश्वभद्रमन्दानां प्रधानो जव उच्यते ।
 सोऽप्यनेनैव मार्गेण संविभज्यो विजानता ॥ ६ ॥
 आवाहिता विनश्यन्ति सर्वकर्मक्षमा हयाः ।
 कृशा व्याधिपरीताङ्गा जायन्तेऽत्यन्तवाहनात् ॥ ७ ॥
 बलं कालो वयो भूमिः कालः सत्वमतः क्रमात् ।
 कुर्यादेकान्तरे योगश्चातियोगो हि दोषवान् ॥ ८ ॥
 तच्च लोकप्रसिद्धं हि बोद्धव्यं यत्नतो बुधैः ।
 हयवाहनवैज्ञानी नरेन्द्रैः पूज्यते सदा ॥ ९ ॥
 धाविते ये गुणाः सप्तैर्वक्ष्यमाणान्निबोध तान् ।
 शालिहोत्रादिशास्त्राणां व्यायामफलसम्भवान् ॥ १० ॥
 स्थिरमांसो भारसहो लघुगात्रः पराक्रमी ।
 दीप्ताग्निश्च सुशीलश्च व्यायामिनोपजायते ॥ ११ ॥
 सत्यार्थो विनयी प्रीतो निर्दोषस्तापवर्जितः ।
 वेदविद्विादिचित्तञ्च उक्तो धावति तिष्ठति ॥ १२ ॥
 शुभावर्त्तगतिच्छाया बलशीलसमन्वितम् ।
 गन्धवर्णस्वरोत्कण्ठसारपुण्ड्रविभूषितम् ॥ १३ ॥
 एवंविधं समारुह्य देवतांशं हयं नृपः ।
 जित्वा रिपुकुलं भुङ्क्ते निःशङ्कोऽथ वसुन्धराम् ॥ १४ ॥

जवः अष्टसुरङ्गानामुत्तमाधममध्यमः ।
द्विविधोऽपि तथा भिन्नो जवभेदः स उच्यते ॥ १५ ॥
यवोदरैरष्टसङ्घैरङ्गुलं परिकीर्तितम् ।
हस्तश्च तैश्चतुर्विंशैः कार्मुकं तैश्चतुर्गुणैः ॥ १६ ॥
अक्षोर्निमेषणैः काष्ठा अष्टलघ्वक्षरं तथा ।
मात्रा ज्ञेया प्रमाणैश्च पूर्वप्रोक्ता तपोधनैः ॥ १७ ॥
मात्रा षोडशकेनाश्वो यो धावति धनुःशतम् ।
तमश्वमुत्तमं विद्याद्वायुवेगं महाजवम् ॥ १८ ॥
यथोत्तमजवा वाहास्तथाश्वा मध्यमाधमाः ।
चतुरस्यधिकां वृद्धिं मात्राणां लक्षणं बुधाः ॥ १९ ॥
नभस्यश्वयुजे मासि भाराध्वानं जवं त्यजेत् ।
वज्राग्निसदृशं पित्तं अमात् कुप्यति वाजिनाम् ॥ २० ॥
कार्यैणैव महान् किञ्चिद् युज्यो नभसि कार्तिके ।
हेमन्ते शिशिरे योगं वसन्ते च यथेच्छया ॥ २१ ॥
श्लेष्मत्तयात् श्लथं गात्रं न ग्रीष्मे वाहयेदयम् ।
बालो वृद्धः कृशो रोगी दन्तस्त्रेहो महाबली ॥ २२ ॥
पूर्णातिरिक्तकोष्ठश्च गुर्विणीं न च वाहयेत् ।
समां च विपुलाञ्चैव किञ्चित् पांशुसमन्विताम् ॥ २३ ॥
एकान्ते विजने चैव रङ्गभूमिं हयं नयेत् ।
सान्द्राञ्चैव सुकठिनां पाषाणोदकगर्त्तिकाम् ॥ २४ ॥
दृणकाष्ठसमायुक्तां रङ्गभूमिं विवर्जयेत् ।
विण्मूत्रं कारयेदश्वं क्रोशक्रोशद्वयान्तरे ॥ २५ ॥
वारि दद्याद् यथाकामं घासं मुष्टिञ्च चारयेत् ।
अन्यथा दोषजातानि वक्ष्याम्येतानि तावतः ॥ २६ ॥
गुरुविस्त्रग्वात्रश्च छिन्नश्वासी च कम्पते ।
दुर्मना रुद्धविण्मूत्रः सर्वकर्माद्यमो हयः ॥ २७ ॥

गूढमेद्रोन्नतश्रीवो रक्तमेही गुरुक्लमः ।

क्षुत्तृष्णावृतशुष्कास्यम्हायां प्राप्य वितिष्ठति ॥ २८ ॥

तर्जनैर्हन्यमानोऽपि विधुनोति शिरः परम् ।

मुहुर्विनमते पृष्ठं पदमेकं न गच्छति ॥ २९ ॥

भाराध्वानपरिआन्तं शनैः संक्रामयेत् पथि ।

नावतारितपर्याणं मार्गोऽध्वानममागतम् ॥ ३० ॥

मुक्तपुच्छाग्रबन्धस्य खलीनं नावतारयेत् ।

मर्दयित्वास्य गात्राणि पांशुमध्ये विवर्त्तयेत् ॥ ३१ ॥

स्नानपानावगाहञ्च प्रतिपानं सभोजनम् ।

सर्वं क्रमेण कर्त्तव्यमन्यथा दोषसम्भवः ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तसमीरोत्यमन्यास्तम्भोदरादयः ।

हृद्रोगा वातशूलानि शीतोष्णोदकपानतः ॥ ३३ ॥

रक्तपित्तहरं देयं प्रतिपानं गुडौदनम् ।

रक्तपित्तसमीरोत्यं दातव्यं शर्करोदकम् ॥ ३४ ॥

जीवनं वातपित्तघ्नं वृथं बल्यतमं ततः ।

सर्वरोगहरोऽश्वानां मधु जाङ्गलको रसः ॥ ३५ ॥

स्वच्छाक्तञ्च घृतं क्षीरं वारियुक्तं तुरङ्गमः ।

पीत्वा हि निर्हरेद्दोषान् अमभाराध्वसंश्रवान् ॥ ३६ ॥

धर्मार्थकामाविजयो यशःश्रीशोभासुखं जातिजनैश्च पूज्या ।

रणे निमित्तानि शुभावहानि नृपस्य चैवं विनिवेदयन्ति ॥ ३७ ॥

प्रत्यूषकाले च दिनं निरीक्ष्य वक्त्रं द्विजं पूर्णघटं कुमारीम् ।

क्षत्रं ध्वजं चामरदर्पणञ्च रुष्टञ्च दृष्ट्वा तुरगं जयाय ॥ ३८ ॥

श्रुत्वा तु शङ्खासुदवेदवाक्यं पुण्याहमाङ्गल्यशिवस्य गीतम् ।

क्षेपं निमित्तं भवति स्वनेन ध्रुवं जयं तत्र रणे नराणाम् ॥ ३९ ॥

सन्ध्याङ्घ्रिघातेन महीं निहन्ति क्षेपन्ति ये स्वामिसुखं निरीक्ष्य ।

प्रदक्षिणावर्त्तविकीर्णपुच्छा जयावहास्ते समरे नृपाणाम् ॥ ४० ॥

विच्छिन्नदौनस्वरगद्गदा ये अशुभ्ण ता भिन्नपुरीषमूत्राः ।
 अनल्पमाना दिनकान्निरीक्षाः पराजयं ते कथयन्ति युद्धे ॥ ४० ॥
 अन्यापदं याञ्च वदन्ति दीनाः सव्येतरं चक्रविकीर्णपुच्छाः ।
 युग्यासनादीन् परिवर्जयन्ते पराजयं ते कथयन्ति भर्तुः ॥ ४१ ॥
 विना निमित्तं रसयन्त्यभीक्ष्णं आकुञ्चिता व्यापितमक्षिकाङ्गाः ।
 ध्यायन्ति घातैश्च न चोद्दिजन्ते भयावहास्ते समरे नृपाणाम् ॥ ४२ ॥
 शोकं शीलं भयं लज्जामालस्यं चैवमादिषु ।
 सुकूलं तं विजानीयादलं पर्याणवारणे ॥ ४३ ॥
 स्थाणुकण्टकवृक्षैश्च सुधाखदिरकण्टकैः ।
 स्वामिघाताय चादत्ते तेषां रूपमिदं शृणु ॥ ४४ ॥
 वानरोलूकमार्जारतरङ्गुगण्डलोचनाः ।
 गतिर्वा असुरैस्तुल्या स्थूलमेद्रशिरान्विताः ॥ ४५ ॥
 लम्बौष्ठकर्णनासाश्च कृत्स्नहीनाधिकद्विजाः ।
 विच्छिन्नप्रोथगण्डा ये भ्रुकुटी चित्रमेहनाः ॥ ४६ ॥
 एते दोषास्तथान्येऽपि सुकुलाश्वसमुद्भवाः ।
 खलानामिह राजेन्द्र वक्तुं शक्या न मादृशैः ॥ ४७ ॥
 लक्ष्यं प्रधानमित्येके चान्ये लक्षणमाश्रिताः ।
 लक्ष्यलक्षणमेतेषां तेनेदं दुष्करं विदुः ॥ ४८ ॥
 अव्याप्तिरतिसंक्षेपादतिव्याप्तिश्च विस्तरात् ।
 सुनीनामेकवाक्यत्वाद् ब्रूयामः स्थितिदुष्कराः ॥ ४९ ॥
 सत्ववर्णगतिच्छायास्वरस्थानगतिः कुलम् ।
 पुष्पं पुण्ड्रकनामानि दोषं वा ज्वलक्षणम् ॥ ५० ॥
 एवं लक्षणसंयुक्तं दृश्यते शूररक्षणे ।
 लक्षण्येन विहीना ये निर्दोषाः स्युः प्रधाविताः ॥ ५१ ॥
 हयरोहस्य, का चिन्ता लक्षणैः शुभनिन्दितैः ।
 वेनात्र न कृतोऽस्माभिर्हयलक्षणविस्तरः ॥ ५२ ॥

हयवाहनविज्ञानं कौतुकाहितबुद्धयः ।
 अनायासेन गृह्णन्ति परं हृष्टा इमे जनाः ॥ ५३ ॥
 चलासनं कषा रागाः पाणिघातप्रतीदनम् ।
 पदप्रघातसंज्ञानि दोषो यैरूपजायते ॥ ५४ ॥
 कामात् कोपाङ्गयान्मोहाहर्षाञ्चैव मदाश्रयात् ।
 पर्याणारोहदोषाच्च दूष्यन्तेऽश्वा निसर्गतः ॥ ५५ ॥
 श्रीयुक्तसामन्तनरेन्द्रवन्दितं रणे हयारोहवराभिनन्दितम् ।
 धर्मार्थकामादियशःप्रधानमित्यं कृतं वाहनशास्त्रविस्तरम् ॥ ५६ ॥
 इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते वाहनाध्यायो नाम
 नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

धातुपरीक्षा ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि धातूनां लक्षणं परम् ।
 येन विज्ञानमात्रेण ज्ञायन्ते रोगसम्भवाः ॥ १ ॥
 ततः शुद्धशरीरोत्थरक्तदोषानवाप्नुयात् ।
 रक्तदोषात्तदा वाजी प्राप्नोत्येव महामयान् ॥ २ ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्तं ज्ञेयं विचक्षणैः ।
 आषाढसमये प्राप्ते शिरामोक्षेण कृत्स्नशः ॥ ३ ॥
 तेन संशोध्यते रक्तं वाजिनां दोषसम्भवम् ।
 ततः शुद्धशरीरोऽथ पिण्डाद्यैश्च बलीकृतः ॥ ४ ॥
 आवणे शष्पमासाद्य वज्रवत् सुदृढो भवेत् ।
 यदि रक्ताधिको वाजी सस्यमश्नाति कर्हिचित् ॥ ५ ॥
 रक्तात् सञ्जायते पित्तं ततो नाशमवाप्नुयात् ।
 रक्ताधिकश्वासपुटः स्नेहाद्यैः शस्यमत्ति चेत् ॥ ६ ॥

संप्राप्य श्लेष्मचिराद्दयो नाशमवाप्नुयात् ।

हीनरक्ती यदा शस्यं रूचोऽश्नाति तुरङ्गमः ॥ ७ ॥

तदा वायुं परं प्राप्य सद्यो नाशमवाप्नुयात् ।

तत्रेदं लक्षणं प्रोक्तं रक्तकोपसमुद्भवम् ॥ ८ ॥

धातूनामपि सर्वेषां ज्ञेयं चिह्नं विचक्षणैः ।

पित्तरक्तप्रकोपेण यदा संपीड्यते हयः ॥ ९ ॥

तदा कण्डूतिमासाद्य कषते सततं वपुः ।

छायां वाञ्छति यत्नेन विशेषेण जलाश्रयम् ॥ १० ॥

मुहुर्वाञ्छति पानीयमाहारञ्च विशेषतः ।

एवं वातोत्थरक्तेन ज्ञात्वाश्वं पीडितं ततः ॥ ११ ॥

शिरामोचं विधायैव दद्यात्सकटुकं गुडम् ।

ततः शुद्धिमवाप्नोति नीरोगः संप्रपद्यते ॥ १२ ॥

पित्तासृग्दूषितो वाजी यदि चाश्रूणि मुञ्चति ।

नेत्रान्ते पाण्डुरत्वञ्च सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥

नेत्रयोर्लक्षणं प्रोक्तं पित्तरक्तसमुद्भवम् ।

श्लेष्मरक्तप्रकोपेण यदा सम्पीड्यते हयः ॥ १४ ॥

अधोवक्तो भवेन्नित्यं कासते च मुहुर्मुहुः ।

आहारं न च गृह्णाति नोत्साहं कुरुते क्वचित् ॥ १५ ॥

न विन्दति कशाघातं न च पाणिं न चासनम् ।

नासाग्रेण क्षिपेत्तोयं वह्निर्धर्मञ्च वाञ्छति ॥ १६ ॥

तस्यापि शोधयित्वासृग् दद्याच्छुण्ठग्रायुतं गुडम् ।

सर्वं रक्तं ततः शुद्धा निःशेषं समवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

वाजिनः श्लेष्मरक्ताभ्यां दूषितस्य सदा भवेत् ।

नेत्रान्ते विन्दुकाकारकण्डूस्तस्य तथोदरे ॥

तदा मृत्युमवाप्नोति षण्मासाभ्यन्तरे ध्रुवम् ॥ १८ ॥

शुण्ठग्रासृता गौक्षुरकं घनञ्च श्यामा वचा हिङ्गुयुता च यष्टिः ।

कफप्रणाशाय विनिर्मितोऽयं पिण्डः प्रसिद्धश्च कफाघहृद्य ॥ १९ ॥

नोचेदश्राति शुण्ठ्याद्यं सैन्धवन्नस्य मार्गतः ।

वायुरक्तप्रकोपेण पीडितस्तु तुरङ्गमः ।

कुचिद्वये हयस्तीव्रं मुहुः श्वासं प्रमुञ्चति ॥ २० ॥

नैकत्र मन्यते स्थातुं ऋषते च निरर्गलम् ।

एवं वातोद्भवं ज्ञाप्यं रक्तं देहे हयस्य च ॥ २१ ॥

शोधयित्वाथ सन्दद्यान्महाघृतमनल्पकम् ।

ततः शुद्धिमवाप्नोति परां पुष्टिञ्च गच्छति ॥ २२ ॥

उत्साहं कुरुते मार्गं सर्वदोषविवर्जितः ।

वातरक्तप्रकोपेण लोचनान्ते हयस्य च ॥ २३ ॥

यदा स्यातां सिते रक्ते काशः कण्डूस्तथानने ।

तदा तस्य भवेन्मृत्युर्यदि नाश्राति चामिषम् ॥ २४ ॥

अस्मकञ्च युतं दध्ना माहिषेण निशागमे ।

सन्निपातेऽथ रक्तेन यदा संपीड्यते हयः ॥ २५ ॥

यदा वेपथुमाप्नोति काशते च निरर्गलम् ।

निद्रालस्याग्निमन्दत्वं वस्तौ मलनिबन्धनम् ॥ २६ ॥

कर्णयोः पातनञ्चैव वक्त्रालालाविमोक्षणम् ।

तत्रापि शोधयेद्रक्तं ततो लङ्घनमर्हति ॥ २७ ॥

यावद्दोषस्य निर्णाशं स्तोकोदककृताशनः ।

क्वचिदुष्णं क्वचिच्छीतं क्वचिद्भेषजसंयुतम् ॥ २८ ॥

प्रदेयं युक्तितत्वज्ञैर्वारि वार्यं न कुत्रचित् ।

सपथ्या चामृता चैव कटुका च वचा तथा ॥ २९ ॥

शामयेत् तत्क्षणादेव त्रिधातुकुपितं ज्वरम् ।

शिरौषं श्रीफलञ्चैव वेतसञ्चैव वृद्धिभाक् ॥ ३० ॥

मन्दाग्नित्वं सदोषाणां कुरुते भस्मसाद् द्रुतम् ।

मधुकं मधुजालञ्च माधुर्यं कुलिकान्वितम् ॥ ३१ ॥

शिरीषं क्षुद्रकं लाक्षां काथयित्वा त्रिभागतः ।
 यस्यैतत्सन्निपाताय वाजिनः संप्रदीयते ॥ ३२ ॥
 तस्य तन्नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ।
 स्वस्थस्यापि हि नेत्रान्ते स्यातां नीले च वाजिनः ॥ ३३ ॥
 गन्धश्च सदृशः क्षीण्य तदा मृत्युर्हिमासिकः ।
 नीले पीतेऽथ नेत्रान्ते स्यातां चेद्वाजिनः क्वचित् ।
 स निर्वाणमवाप्नोति त्रिभिर्मासैरसंशयम् ॥ ३४ ॥
 यस्य नेत्रान्तरे रेखा बहुवर्णा प्रजायते ।
 विशेपात् स्वरभेदः स्यात्तस्यायुः पाञ्चमामिकम् ॥ ३५ ॥
 जिह्वायां जायते विन्दुरकस्माद् यस्य वाजिनः ।
 कृच्छ्रञ्च जीवते मासं स वाजो नात्र संशयः ॥ ३६ ॥
 पीतो मासद्वयेनैव सप्तेर्मृत्युं प्रयच्छति ।
 त्रिभिर्मासैस्तथारक्तञ्चतुर्भिश्च विचित्रितः ॥ ३७ ॥
 पञ्चभिर्नीलवर्णश्च षड्भिर्वज्रसमाकृतः ।
 सप्तभिः पाटलाकारश्चम्यकाभस्तथाष्टभिः ॥ ३८ ॥
 नवभिश्च हरिद्राभो दशभिर्जन्तुकोपमः ।
 एकादशभिर्दूर्वाभो वत्सरेण हिमद्युतिः ॥ ३९ ॥
 यस्य श्वासो भवेदुष्णः शरीरं पुलकाङ्कितम् ।
 जिह्वा हिमकणाकारा मासषट्कं स जीवति ॥ ४० ॥
 ग्रीवाग्रे पिण्डिका यस्य जायते च तथाधरे ।
 मूत्रं करोति रक्ताढ्यं मासषट्कं स जीवति ॥ ४१ ॥
 वर्णः श्वेतो यदा यस्य नेत्रयोश्च प्रजायते ।
 दशमासान् सामासाद्य पित्तार्त्तो न स जीवति ॥ ४२ ॥
 यस्य नीलप्रभे स्यातां नेत्रे वातार्दितस्य तु ।
 मासत्रयञ्च कृच्छ्रेण यः सप्तः स न जीवति ॥ ४३ ॥
 श्लेष्मयुक्तस्य वा रक्ते यदि स्यातां विलोचने ।

वक्त्रगन्धः सुरातुल्यो दश मासान् स जीवति ॥ ४४ ॥
 यस्य नेत्रे हरिद्राभे स्यातां पित्तादित्तस्य च ।
 तस्यायुः सप्तमासाख्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४५ ॥
 बहुवर्णे घने नेत्रे स्यातां धातुसमागमे ।
 तस्य सप्तेर्भवेन्नृत्युः सप्तरात्रादसंशयम् ॥ ४६ ॥
 यस्यैकं लोचनं नीलं द्वितीयं रक्तसन्निभम् ।
 दृश्यते स च विज्ञेयः पित्ताढ्यो मासजीवकः ॥ ४७ ॥
 यस्य पित्तप्रसक्तस्य काले नीरदवर्त्तिनि ।
 हयस्य जीवितं तावद्दिनानि दश पञ्च च ॥ ४८ ॥
 एवं रक्तविकाराणां ज्ञात्वा धातुं तुरङ्गमे ।
 ततः प्रतिक्रिया कार्या उक्ता या कीर्त्तिता परा ॥ ४९ ॥
 भयादपीतपानीयशीतविश्रियुतस्य च ।
 आर्त्तोऽपि ताडितोऽत्यर्थं तिर्यग्बिद्धो यदापि वा ॥ ५० ॥
 श्माङ्गराच्च बन्धाद्वा गात्रे वा विषमस्थिते ।
 क्षीणशोणितमांसस्य शिरावेधः प्रशस्यते ॥ ५१ ॥
 इति श्रोनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते धातुपरीक्षा-
 ध्यायो नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः ।

ऋतुचर्या ।

द्वासप्ततिसहस्राणि नाडीनां हि भवन्ति च ।
 वाजिनामिह सर्वेषां वायुरक्तं व्यवस्थितम् ॥ १ ॥
 तासां निर्मोचनार्थाय द्वाराण्यष्टौ वदाम्यहम् ।
 यैर्याति कुक्षितं रक्तं सर्वदेहसमुद्भवम् ॥ २ ॥

कण्ठे वक्षसि तालौ च नसयोश्च मुखे तथा ।
 अण्डयोरथ पादेषु पादयोरुभयोरपि ॥ ३ ॥
 कालं बलञ्च विज्ञाय वाजिनां भिषगुत्तमः ।
 शिरामोक्षं प्रकुर्वीत स्थानेष्वेतेषु पण्डितः ॥ ४ ॥
 अन्ये मसदश प्राहुः शिराद्वाराणि वाजिनः ।
 विकारयुक्तं यद्रक्तं सुखल्पमपि वर्जयेत् ॥ ५ ॥
 एवं शरदि यः सम्यक् पुष्टिं नयति वाजिनाम् ।
 तस्य यद्वाञ्छितं किञ्चिद्यानार्थं तच्च सिध्यति ॥ ६ ॥
 ततो हेमन्तमासाद्य निवाते निबधेद्वयम् ।
 मासोत्थं यवसं दद्यात् पानीयञ्च यथेच्छया ॥ ७ ॥
 घृतं वा यदि वा तैलं पाने दद्याद्द्विचक्षणः ।
 वाहयेच्च शनैर्नित्यं सर्वदोषप्रशान्तये ॥ ८ ॥
 ततः शिशिरमासाद्य दद्यात्तैलं हि वाजिनाम् ।
 पलाष्टकप्रमाणेन यावद्दिनत्रिसप्तकम् ॥ ९ ॥
 यवोत्थं यवसं दद्यादेकविंशत्यहानि च ।
 यवाभावेऽथ चणकान् दद्यादाद्र्दतरान् सदा ॥ १० ॥
 तदभावे मसूराञ्च शुष्कार्द्रांस्तैलसंयुतान् ।
 यवसं चापि तद्देयं नीरोगो जायते ह्ययः ॥ ११ ॥
 औषधानाञ्च सर्वेषां क्वाथानां नस्यकर्मणाम् ।
 तैलानाञ्च घृतानाञ्च यवस्य यवसं परम् ॥ १२ ॥
 पर्वतानां यथा मेरुरायुधानाञ्च वज्रकम् ।
 तथा सर्वोपचाराणां सप्तैः श्रेष्ठतमा यवाः ॥ १३ ॥
 देवतानां यथा विष्णुर्ब्रह्मा वेदविदां वरः ।
 नदीनाञ्च यथा गङ्गा तथा श्रेष्ठा यवा ह्ये ॥ १४ ॥
 यथोदितः सृष्ट्वांशुर्निःशेषं तिमिरं जयेत् ।
 तथा शरीरजान् दोषान् यवाः सप्तेर्हरन्ति च ॥ १५ ॥

उपचारक्रियाः सर्वाः पञ्चर्तुजनिता ह्ये ।
 कृताः स्युर्यवभोज्येन सप्तस्तस्य कृता नरैः ॥ १६ ॥
 यस्य दत्ता यवा भोज्ये शिशिरे समुपस्थिते ।
 अकृतापि कृता सर्वा पञ्चर्तुजनिता ह्ये ॥ १७ ॥
 कृताः स्युर्यवभोज्येन सप्तस्तस्य कृता नरैः ।
 नीरोगास्तुरगाः सर्वे शालिहोत्रमतं यथा ॥ १८ ॥
 पञ्चर्तुजनिता वाथ क्रिया न्यस्ता तुरङ्गमे ।
 अतीतास्ते विजानीयाद् यवभोज्यविवर्जिताः ॥ १९ ॥
 एवं रक्तविशुद्धानां कृत्वा यत्नेन वाजिनाम् ।
 दद्याद्गोमूत्रसंयुक्तां सतैलां च हरीतकीम् ॥ २० ॥
 दिनं त्रिसप्तकं यावत् पलपञ्चप्रमाणतः ।
 ततः शुद्धिमवाप्नोति निःशेषाद्गुधरोद्गमात् ॥ २१ ॥
 ततो नवद्वणाहारं संप्राप्य सुमनोहरम् ।
 परां पुष्टिमवाप्नोति नीरोगश्च प्रजायते ॥ २२ ॥
 न प्रायो वाहयेदश्वं प्रावृट्काले कथञ्चन ।
 य इच्छेद्वाजिनस्तस्य वाहनं दशमासिकम् ॥ २३ ॥
 कूपोदकं सदा शस्तं पानाय जलदागमे ।
 अभ्यङ्गः कटुतैलेन निर्वातस्थानबन्धनम् ॥ २४ ॥
 एकाहां तरितं दद्यात्क्षवणञ्च विचक्षणः ।
 पलद्वयप्रमाणेन मुखजापरिशुद्धये ॥ २५ ॥
 मुखरोगमवाप्नोति चारस्त्रादविवर्जितः ।
 वृष्ट्यशोभिस्तु सिक्ताङ्गस्तेजसा त्यजते ह्ययः ॥ २६ ॥
 अशुद्धोदकजान् प्राप्तान् प्राप्नोति शतशः पराम् ।
 नवोदकप्रधानेन बलहीनश्च जायते ॥ २७ ॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रावृट्काल उपस्थिते ।
 अनेन विधिना प्राञ्ची वाजिनः परिपोषयेत् ॥ २८ ॥

ततः शरदमासाद्य बहुखण्डसमन्वितम् ।
 शस्तं च्चारौदनं सप्तपलाष्टपरिसंख्यया ॥ २८ ॥
 दुग्धं वा केवलं रात्रौ कथितं संप्रशस्यते ।
 तथान्यदपि यत्किञ्चिन्मधुरं संप्रजायते ॥ ३० ॥
 पानाय सारसं तोयं यवसं सुमनोहरम् ।
 नीलवर्णमकुष्टाश्च घृतं प्राशेन संयुतम् ।
 वाहनं च प्रयत्नेन सुखल्पमपि वर्जयेत् ॥ ३१ ॥
 परीक्षाग्नौ यथा हेन्नः स्नेहस्य च प्रतिक्रिया ।
 हयजीवस्य तद्वच्च परीक्षा यवभक्षणे ॥ ३२ ॥
 यथा सांयात्रिकः पारं गत्वोच्चैः स्वस्थतां व्रजेत् ।
 तद्वत् यवाशनोत्तीर्णाः शुद्धदेहा हयोत्तमाः ॥ ३३ ॥
 अल्पेनापि हि छिद्रेण यथा नश्यति नौर्जले ।
 स्वल्पेनापि हि दोषेण यवदोषांस्तथैव च ॥ ३४ ॥
 एवं ज्ञात्वा विदग्धेन यवा देयाः प्रयत्नतः ।
 प्राप्तक्षीरा विशेषेण शिशिरे समुपस्थिते ॥ ३५ ॥
 शुष्का वापि यवा देयाः सर्वकालं च वाजिनाम् ।
 प्राणदास्ते ततो ज्ञेयाः सवंव्याधिविनाशनाः ॥ ३६ ॥
 यश्चाश्नाति यवानांशु शुष्कांश्च स्वच्छया सदा ।
 न तस्य जायते रोगः कदाचिच्च यवान्नभाक् ॥ ३७ ॥
 न च शूलं न च श्वासी न च प्लीहा न च क्लमः ।
 न च रक्तप्रकोपश्च न च वातादिघातवः ॥ ३८ ॥
 योग्योऽश्नार्थं वाहानां प्रधानो यव ईष्यते ।
 यवाभावेऽथ चणका धान्यमन्यतमं परम् ॥ ३९ ॥
 यवाभावेऽथवा दद्यान्मुकुष्टांस्तैलसंयुतान् ।
 भोजने तुरगेन्द्राणां परां पुष्टिमभीष्टताम् ॥ ४० ॥
 मुकुष्टभोजनाद्वाजी पुष्टिं गच्छत्यलौकिकीम् ।

उक्त्वाहं परमं धत्ते स च रोगैर्विसुच्यते ॥ ४१ ॥
 अप्राप्तौ च सुकुष्ठानां मुद्गा देया मनीषिभिः ।
 सतैलास्तेऽपि कुर्वन्ति पुष्टिं सत्वविवर्द्धिनीम् ॥ ४२ ॥
 एते पुष्टिगुणाः प्रोक्ताश्चणकाहारजा ह्ये ।
 नान्यस्तस्मादभावेन सर्वेषां तान् विनिर्दिशेत् ॥ ४३ ॥
 नान्यद्धितं प्रशंसन्ति पञ्चमं वाजिनां बुधाः ।
 भक्षणार्थं यतस्तस्य दानोल्लङ्घनमुत्तमम् ॥ ४४ ॥
 अन्नाभावे प्रदातव्यं घृतं वा यदि वा पयः ।
 शस्यं वा मांसमेवाथ पुष्ट्यर्थं वाजिनां सदा ॥ ४५ ॥
 यस्याश्वः शस्यमश्नाति सदा लवणमिश्रितम् ।
 किं तस्य शस्यदानेन यथाभूतेन भूपतेः ॥ ४६ ॥
 शस्याभावेऽथ यवसं शुष्कं वा यस्य वाजिनः ।
 दिवानिशमरण्ये च स्वेच्छया संविभुक्तिकाः ॥ ४७ ॥
 तेचापि वाजिनो ज्ञेया यथा शस्यचरास्तथा ।
 तथा सर्वप्रयत्नेन मुक्तान् सञ्चारयेद्दने ॥ ४८ ॥
 आरोग्यार्थं सुपुष्ट्यर्थमुक्त्वाहार्थं विशेषतः ।
 वित्तव्ययस्य रक्षार्थं हरेद्रोगं प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥
 वसन्तसमये प्राप्ते वाहयेत् सततं हयम् ।
 सनिम्बं लवणं दद्यात्ताभ्यां तैलं विशेषतः ॥ ५० ॥
 सर्वत्र सम्भवं भोज्यं तैलं वा यदि वा घृतम् ।
 न दोषकारणं प्रोक्तं सत्त्वारं लवमश्रुतः ॥ ५१ ॥
 वसन्तसमये योऽश्वः स्थाने तिष्ठति बन्धने ।
 तस्योक्त्वाहः प्रणश्येत सालस्यं जायते वपुः ॥ ५२ ॥
 ततो मन्दाग्निनाविष्टो रोगाभावे प्रजायते ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वसन्ते वाहयेद्धयम् ॥ ५३ ॥
 शीघ्रकाले च संप्राप्ते दूर्वाभोज्यं प्रशस्यते ।

वाजिनामिह सर्वेषां धर्मतापोपशान्तये ॥ ५४ ॥
 घृतपानं विशेषेण सुच्छायासु निबन्धनम् ।
 रक्तस्रावे च गात्रेषु श्रासं वा घृतसंयुतम् ॥ ५५ ॥
 दूर्वाभावे प्रदातव्यं तुरगाय घृतान्वितम् ।
 कृत्तकाशस्य मध्याग्रं सर्वदोषोपशान्तये ॥ ५६ ॥
 एवं स्वस्थमयं सग्नगुपचारं करोति यः ।
 हयस्य तु अहो नित्यं तस्य वर्द्धन्ति वाजिनः ॥ ५७ ॥
 नीरोगाः पुष्टिसंयुक्ताः प्रकृष्टोक्ताहसंदुताः ।
 तर्पिता भूमिपैरब्जा भूमिमार्गाक्रियाक्षमाः ॥ ५८ ॥
 इति श्वेनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते ऋतुपर्यायाध्यायो
 नाम एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

नस्यः ।

कासश्वाससमो नस्यो वातपित्तकर्फाद्भवः ।
 नस्यः संनाशयेत्तस्मात्तं नस्यं योजयेद्द्वये ॥ १ ॥
 पिप्पली सैन्धवं सारं नागरं च गुडान्वितम् ।
 क्षत्तिकासारमध्याग्रं वाजिनां श्लेष्मनाशनम् ॥ २ ॥
 चूलिका लवणं नस्ये सदा रोगविनाशनम् ।
 सिता चन्दनतोर्यानि साक्तुकाख्यानि वाजिनाम् ॥ ३ ॥
 नस्यकर्माणि मुक्तानि नाडीवातप्रशान्तये ।
 ऋदुकैरार्द्रकं सान्द्रं वचाक्षारविमिश्रितम् ॥ ४ ॥
 नस्ये दत्तं वातशान्त्यै हयरोगविनाशनम् ।
 शर्करां मध्वक्षिकं सैरं पटोलं पलसंयुतम् ॥ ५ ॥
 नस्ये शरदि सप्तीनां जायते रोगशान्तये ।

वचा चोष्माणकं कुष्ठं शुण्ठी च कासमर्दिका ॥ ६ ॥
 युक्तं शीतोदके स्तोके तेषां नस्येऽपसर्पयेत् ।
 गुडूची कौमुदी ताली मिश्रिता कूपवारिणा ॥ ७ ॥
 नस्ये दत्ता वराश्वानां शिशिरे सुखदा स्मृता ।
 अपामार्गं महानस्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥ ८ ॥
 केवलं कटुतैलं वा गोमूत्रे पाचितं च यत् ।
 मैथुनाद्रिक्तमन्धीनां स्रोतोबलकरं विदुः ॥ ९ ॥
 कण्ठरोगे तथा नस्यं गोमूत्रलवणान्वितम् ।
 महद्गुणकरं प्रोक्तं सर्वदोषनिवारणम् ॥ १० ॥
 अपामार्गस्य मूलेन नस्ये मूत्रं च छागलम् ।
 मुखरोगविनाशाय नस्यं मत्स्यवसोद्भवम् ॥ ११ ॥
 नस्यं पिप्पलीमूलं गण्डकी नागकेशरम् ।
 दत्तं नस्येन रोगघ्नं कटुतैलेन वाजिनाम् ॥ १२ ॥
 नस्यं पर्युषितेस्तोत्रैः प्रातर्दत्तं तु केवलैः ।
 अश्वानाञ्च नराणाञ्च चान्द्रुथं बलवर्द्धनम् ॥ १३ ॥
 पिप्पलीमिश्रतोयेन ससितामलिलेन च ।
 नस्यं यच्छति सप्तीनां सर्पिषा यच्छते बलम् ॥ १४ ॥
 नस्यं स्निग्धं तथा रूक्षं तिक्तञ्च मधुरं तथा ।
 चतुर्धा वाजिशास्त्रज्ञैर्यथावत्परिकीर्तितम् ॥ १५ ॥
 देयं वाताधिके स्निग्धं रूक्षं तिक्तं कफाधिके ।
 मधुरं चैव पित्ताढ्ये तुरङ्गे समयोचितम् ॥ १६ ॥
 द्विपञ्चाशत्प्रमाणं वा श्रेष्ठं तन्नस्यमुच्यते ।
 पादोनं मध्यमं तत्र षड्विंशत्यां तथाधमम् ॥ १७ ॥
 नस्यान्ते वाजिनो रक्तं सदा पुष्टं प्रजायते ।
 नस्यदानात् हृतं तस्य विनाशमुपगच्छति ॥ १८ ॥
 दाडिमं पुष्करं श्लोकं श्वेतदूर्वाङ्कुरास्तथा ।

शीतोदकेन संयुक्तं रक्तं दुष्टं न जायते ॥ १९ ॥
 धातकी गोक्षुरं रोध्रं कुसुम्भं सिन्धुवारकम् ।
 शीतोदकेन संयुक्तं नस्यं रक्तविनाशनम् ॥ २० ॥
 धातकी गण्डकी चैव गोमूत्रं लवणं तथा ।
 नस्ये दत्तं कफं हन्ति तमः सूर्योदये यथा ॥ २१ ॥
 शुण्ठी घृतञ्च दुग्धञ्च रससारं तथैव च ।
 वातदोषविनाशाय नस्यमेतत् प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥
 माक्षिकं शर्करायुक्तं चन्दनं केशराणि च ।
 नस्योऽयं वारिण्य सद्यः पित्तनाशकरः परः ॥ २३ ॥
 गुडूची शुण्ठी सुस्ता च तगरं सितसर्षपाः ।
 सन्निपाते सपित्तेऽयं नस्यः स्याज्जीवरक्तकः ॥ २४ ॥
 अभया पुच्छिणी धात्री एला लाक्षा शतावरी ।
 सन्निपातेऽनिलाधिक्ये नस्योऽयं क्षेमकारकः ॥ २५ ॥
 मरिचं पिप्पलीमूलं वचा भारङ्गिकाभया ।
 सन्निपाते कफाधिक्ये नस्यं सप्तेः सुखप्रदम् ॥ २६ ॥
 इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते नस्याधिकाराध्यायो
 नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

पिण्डः ।

कटुका च जयन्ती च भ्रामरी सुरसा घनाः ।
 पञ्चामृतमयः पिण्डो वाजिनामयमिष्टकृत् ॥ १ ॥
 एला शतघ्नी सुरसा काकजङ्घा शतावरी ।
 माक्षिकं ससितं पिण्डः पित्तयुक्ते हि वाजिनि ॥ २ ॥

माक्षिकं सैन्धवं मुस्ता गोमूत्रं च हरीतकी ।
 समभागेन पिण्डोऽयमुक्तो वङ्गिप्रदीपकः ॥ ३ ॥
 कङ्गोलं केतकी द्राक्षा शर्करा मधुयष्टिका ।
 दत्तो घृतघृतः पिण्डः पुष्टिं नयति वाजिनः ॥ ४ ॥
 मत्स्यमांसेन संयुक्तं ग्रावचूर्णं घृतप्लुतम् ।
 बलहीनस्य वाहस्य पिण्डोऽयं बलवर्द्धनः ॥ ५ ॥
 बला मद्यं दधि क्षीद्रं भक्षयंस्तुरगो भवेत् ।
 अतिवृद्धोऽपि सूक्ष्मोऽपि यथा षट्सप्तवार्षिकः ॥ ६ ॥
 मेथिका धातकी काली सारणी वीजपूरकः ।
 पिण्डो दत्तो वराश्वानां तेजोवृद्धिकरः स्मृतः ॥ ७ ॥
 कटुका मद्यसंमिश्रा धात्री लोध्रगुडान्विता ।
 दत्त्वा पिण्डविधानेन वाजिनां सुखवृद्धिदा ॥ ८ ॥
 त्रिफला कटुका मुस्ता विडङ्गानि च चित्रकम् ।
 सदालस्यसमेतानां वाजिनां पिण्ड आर्त्तिहृत् ॥ ९ ॥
 वचा विदलिताः स्निग्धाः सघृताः क्षारभाविताः ।
 पिण्डैर्दत्ताः प्रकुर्वन्ति वाजिनां व्याधिनाशनम् ॥ १० ॥
 सैन्धवं नागरं श्यामा गुडूची सितसर्षपाः ।
 अस्त्वितसमश्वानां पिण्डोऽयं शूलनाशनः ॥ ११ ॥
 पिप्पली पिप्पलीमूलं कटुका सहदेविका ।
 दूर्वापल्लवसंमिश्रः पिण्डोऽयं प्लीहनाशकः ॥ १२ ॥
 केशरं श्रीफलं तालं माक्षिकं गिरिकर्णिका ।
 पिण्डोऽयं श्लथने शस्तो वाजिनां सुगतिप्रदः ॥ १३ ॥
 वचालोध्रं सकर्पूरं गुहा श्यामा गुडं मधु ।
 समांशकेन पिण्डोऽयं करोति लघिमा ह्ये ॥ १४ ॥
 मद्यं मरिचसंयुक्तं लशुनं नागकेशरम् ।
 द्विगुणं मेघमांसञ्च पिण्डो दत्तो जयेच्छ्रमम् ॥ १५ ॥

जम्बीरं फलिनीपत्रं त्वचा किञ्चल्लम्बमेव च ।
जातशोणितवाहानां पिण्डोऽयं रक्तनाशनः ॥ १६ ॥
तमालं पुष्करं लोभ्रमपामागं सतिन्दुकम् ।
पयसा पिण्डमेतद्धि वातकोपप्रणाशनम् ॥ १७ ॥
आरनालं प्रपिष्टा च पथ्या नेपालिका फलम् ।
पिण्डे दत्त्वे ह्ये दध्ना निहन्त्याशु विजृम्भितम् ॥ १८ ॥
सुहृपूगं वचामिश्रं तथा सर्जरसान्वितम् ।
पिण्डे दत्ते निहन्त्याशु कृमिसङ्घं त्रणोद्भवम् ॥ १९ ॥
सुहीचीरं सकर्पूरं कूपोदकविभावितम् ।
पिण्डोऽयं हन्ति मध्यस्थान् रोगान् सर्वान् कृमिव्रजान् ॥ २० ॥
सिता दुग्धं सकर्पूरमेलया पत्रसंयुतम् ।
अग्निदाहार्त्तियुक्तानां पिण्डोऽयं वाजिनां स्मृतः ॥ २१ ॥
श्रीष्वासह्यप्रतप्तानामारनालं परिप्लुतम् ।
सकृदिच्छन्ति पिण्डेन वाजिनां सुखकारकम् ॥ २२ ॥
वृष्टिवातादिर्दितानाञ्च वाजिनां पुष्टिकृन्मतः ।
पिण्डः कृतः सतैलेन लशुनेन पलेन च ॥ २३ ॥
महाघृतं सकर्पूरं शर्करा दुग्धमेव च ।
कफनाशकरः प्रोक्तः पिण्डोऽयं सुखदः स्मृतः ॥ २४ ॥
रोचना च वरी धात्री तथा स्याद्बीजपूरकः ।
गुल्मं प्रशमयन्त्याशु वाजिनां हृदयोद्भवम् ॥ २५ ॥
सहदेवी वचा कुष्ठं वरुणा चेन्द्रवारुणी ।
अतिश्वासं हरन्त्येते वाजिनां मधुना सह ॥ २६ ॥
उदुम्बरफलं मांसं सौकरं माहिषं दधि ।
ह्यस्य चातिवृद्धस्य करोति परमं सुखम् ॥ २७ ॥
विभीतकं प्रियङ्गुश्च सर्जिका लवणं यथा ।
कासदोषोपशमनः पिण्डः सप्तैः सुखप्रदः ॥ २८ ॥

तक्रं कर्पूरचूर्णञ्च शिवं सीवर्चलान्वितम् ।
 पिण्डोऽयं वस्त्रसंरोधे वाजिनः संप्रकीर्तितः ॥ २९ ॥
 सीवर्चलं हरिद्रा च पिप्पली चेन्द्रवारुणी ।
 मूत्रकृच्छ्रे परीषन्ति पिण्डोऽयं तुरगस्य हि ॥ ३० ॥
 पिण्डीर सक्तवः चौद्रं भक्नातकफलं वुषम् ।
 रक्तमूत्रे तु पिण्डोऽयं वाजिनां रक्तनाशनः ॥ ३१ ॥
 अभया यष्टिका श्यामा देवदारु सगन्धकम् ।
 पुरीषे रक्तसंसिञ्चे सदा शंसति वाजिनः ॥ ३२ ॥
 पटोलं धातकी मुस्ता यष्टिका गिरिकर्णिका ।
 रक्ताधिके कृतः पिण्डः करोति रुधिरक्षयम् ॥ ३३ ॥
 हरिद्राद्वयसंयुक्तं गन्धकं कटुतैलकम् ।
 पिण्डकं श्रुतियुक्तानां सदाश्नानां प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
 अतसौपत्रकं निम्बं न्यग्रोधकलिकान्वितम् ।
 अतीसारे सुशंसन्ति पिण्डोऽयं वाजिनः शुभः ॥ ३५ ॥
 ब्रणैः कृमिभिरत्यर्थं यदा वाजी प्रपीड्यते ।
 तदा पिण्डः प्रदातव्यः स्थूलैरुदलैरलम् ॥ ३६ ॥
 कर्पूरशर्करालोघ्रं माक्षिकं त्रिफलान्वितम् ।
 तुरङ्गिण्याः प्रशंसन्ति पिण्डोऽयं वाजिनः शुभः ॥ ३७ ॥
 पत्रकं सिन्धुवारञ्च भ्रामरं चक्रकिंशुकम् ।
 मांसवृद्धौ प्रशंसन्ति पिण्डोऽयं वाजिनः शुभः ॥ ३८ ॥
 सैन्धवं चूलिकाक्षारं विडङ्गानि मधूनि च ।
 शस्त्रपीडाभिभूतस्य पिण्डोऽश्वस्य प्रशस्यते ॥ ३९ ॥
 इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते पिण्डाध्यायो नाम
 त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

घृतविधानम् ।

शिलाजतु विशाला च पद्मकं नागकेशरम् ।
लाक्षा पद्मकमूलञ्च निम्बद्वयसमन्वितम् ॥ १ ॥
घृतं माक्षिकसंयुक्तं सप्तविंशतिकं विदुः ।
अष्टांशं तु समादाग्र सुरामांसघृतस्य च ॥ २ ॥
पलमात्राणि सर्वाणि पूर्वद्रव्याणि निःक्षिपेत् ।
तेषां दानेन तत्सर्पिर्जायते सर्ववाजिनाम् ॥ ३ ॥
बलपुष्टिकरं नित्यं सर्ववातविनाशनम् ।
सर्वरोगप्रशमनं कायाग्नेश्च प्रदीपनम् ॥ ४ ॥
ओजस्करं व्यथानाशं प्लीहशोषप्रणाशनम् ।
धातकी केशरं कुष्ठं कुसुम्भं कुङ्कुमं नलम् ॥ ५ ॥
दाडिमं सितरोध्रञ्च पलमात्राणि निःक्षिपेत् ।
घृतञ्च पाचयेत् पानादभिघातान्वितो हयः ॥ ६ ॥
जायते सर्वशुद्धाङ्गो महाप्राणैर्न संशयः ।
आरनालं वचा कुष्ठं पिङ्गला सिक्थकं घृतम् ॥ ७ ॥
एतैः पक्वं घृतं सम्यक् पित्तव्याधिविनाशनम् ।
हरिद्राद्वयसंयुक्तं गन्धकं तु मनःशिला ॥ ८ ॥
क्वाथयेन्नवनीतेन त्रिगुणेन घृतेन च ।
अभ्यङ्गेनाथ पानेन सप्तरात्रेण वाजिनः ॥ ९ ॥
कण्डूतिर्निःक्षयं याति तथोदरभवा रुजः ।
माक्षिकं निम्बपत्राणि नखं गुग्गुल एव च ॥ १० ॥
भृङ्गराजो विशाला च पाठा चैव पुनर्नवा ।

विल्वमारुष्ककं रोध्रं सैन्धवं तगरं तथा ॥ ११ ॥

एतैः पक्त्वा घृतं वाजी संप्राप्यार्त्तैर्विमुच्यते ॥ १२ ॥

इति त्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते घृताध्यायश्चतुर्दशः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

क्वाथः ।

पूर्वाणि समभागानि क्वाथयेत् कूपवग्निना ।

ततोऽष्टांशं समादाय तोयस्य क्वाथितस्य च ॥ १ ॥

एतत् सिद्धार्थकं नाम ह्युत्कृष्टं सर्ववाजिनाम् ।

कायाग्निं वर्धयत्याशु नीरोगत्वं प्रयच्छति ॥ २ ॥

मुस्ता मधुकपत्राणि केशरं लवणं रुहा ।

शताह्वा शाल्मली धात्री त्रपुसं फलिनी तथा ॥ ३ ॥

क्वाथयित्वा जलं कौपं दत्तैस्तुल्यैर्विचक्षणः ।

त्रिभागमेवमादाय ततो दद्याद्द्वयस्य च ॥ ४ ॥

प्रकरोति सदा नाशं पित्तस्यागन्तुकस्य च ।

एकविंशदिनं यावच्छालिहोत्रमतं यथा ॥ ५ ॥

शुण्ठी हरीतकी पाठा ब्राह्मी मुस्ता शिफालिका ।

हरिद्राद्वयसंयुक्ता हरितालं मनःशिला ॥ ६ ॥

सिद्धस्त्रिभागशेषोऽयं क्वाथो हन्यात्त्रिरात्रिकम् ।

सन्निपातमशेषेण पलिकः पलमात्रकः ॥ ७ ॥

मधुकं केशरं पत्रं भस्मातकविभीतकम् ।

शङ्खपुष्यं रुहा सारं समभागेन मिश्रितम् ॥ ८ ॥

कासार्त्तस्य समुद्दिष्टः क्वाथोऽयं त्रिफलात्मकः ।

उत्साहवर्द्धकः सद्यस्तथा कायाग्निदीपकः ॥ ९ ॥

कुमारी शास्त्राली पाचा मञ्जिष्ठा चेन्द्रवारुणी ।
 काकोली समभागेन काथयेत् समभागतः ॥ १० ॥
 पलद्वयप्रमाणेन ततः पीतेन वाजिना ।
 मोहयेच्छूलजं दोषं मूत्रदोषञ्च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥
 यवानौ मात्तिकं कामं मौवर्च्चलयुताभया ।
 काथयेदष्टमांशेन तत्पानाज्जायते ह्ययः ॥ १२ ॥
 प्रदीप्ताग्निस्तु तेजस्वी सर्वरोगाद्दिमुच्यते ।
 स शीघ्रमार्गगामी च स्निग्धो रोगविवर्जितः ॥ १३ ॥
 शेफालिका रुहापीले वेणुका सिन्धुवारिका ।
 एतैः काथः कृतः सम्यक् क्लमिनाशकरः परः ॥ १४ ॥
 मातुलुङ्गस्य वीजानि चन्दनं सितसर्षपाः ।
 उशीरं पुष्करं ब्राह्मी लक्ष्मणा च पुनर्नवा ॥ १५ ॥
 काथोऽयं शृण्ठिचूर्णेन धावितक्लेशनाशनः ।
 प्रकरोति तुरङ्गाणां सर्वदैव सुखं तथा ॥ १६ ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते काथाध्यायो
 नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः ।

विषम् ।

वारुणी मात्तिकी गौरी श्रीताली वीजपूरकम् ।
 क्लमिक्लेदविनाशाय काथो नित्यं रुजाहरः ॥ १ ॥
 अश्वगन्धा घृतं क्षौद्रं विषदग्धस्य वाजिनः ।
 विषनाशं करोत्येव सर्वगात्रेषु तत्क्षणात् ॥ २ ॥
 सामान्येन प्रदिष्टोऽयमगदो विषनाशनः ।
 पृथक् पृथग्विभागेन कर्त्तव्यं साम्यतः परम् ॥ ३ ॥

त्रिविधं कीर्तितं चैव कृत्रिमञ्च ततःपरम् ।
 त्रिविधं कीर्तितं प्राज्ञैर्विषज्ञानविचक्षणैः ॥ ४ ॥
 स्थावरं कन्दजं प्रोक्तं जङ्गमं सत्वसंस्थितम् ।
 कृत्रिमं योगजं प्रोक्तं त्रिविधं विषमुच्यते ॥ ५ ॥
 यदा स्थिरं समञ्चन्ति कदाचित्तरगोत्तमाः ।
 तदा कार्यं विधानज्ञैरगदस्य प्रयोजनम् ॥ ६ ॥
 केशरं पद्मनालञ्च सौपर्णी वदरीफलम् ।
 तक्रमिश्रं ह्ये दत्त्वं सर्वथा विषनाशनम् ॥ ७ ॥
 सौपर्णी सिन्धुवारञ्च नागवल्ली जटा तथा ।
 विषान्तं प्राप्य संमिश्रं दुग्धे स्यादायुधी ह्ययः ॥ ८ ॥
 अश्वगन्धा रुहा एला घृतमिश्रा प्रयोजिता ।
 विषनाशं नयत्याशु जङ्गमं ह्यगात्रतः ॥ ९ ॥
 मूलं चन्दनवृक्षस्य माषचूर्णपरिप्लुतम् ।
 जङ्गमस्य विषस्याशु प्रकरोति च संचयम् ॥ १० ॥
 तक्रं केशरसंयुक्तं विषं सद्यो नवाभ्रकम् ।
 ह्यस्य जङ्गमं नाशं विषं नयति तत्क्षणात् ॥ ११ ॥
 सौपर्णी विषकङ्कोली पिष्ट्वा मद्येन भाविता ।
 जङ्गमं गात्रतः कृत्स्नं विषं नयति तत्क्षणात् ॥ १२ ॥
 एला कङ्कोलिकामूलं सौपर्णी घृतमिश्रितम् ।
 त्रिषनाशं करोत्याशु नस्यदानेन वाजिनाम् ॥ १३ ॥
 कौसुभं केशरं लाक्षा माक्षिका नाकुली तथा ।
 कृत्रिमस्य विषस्याशु प्रकरोति च संचयम् ॥ १४ ॥
 चम्पकं मालतीमूलमुन्मत्तकरसं तथा ।
 अश्वानां नाशयत्याशु विषं जङ्गममाश्रितम् ॥ १५ ॥
 इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सिते विषयोगाध्यायो
 नाम षोडशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

अश्वशालाविधिः ।

ऋपवेश्म वामभागे शुभदिने तु कारयेद्वयागारम् ।
पूज्यश्रियं प्रयत्नादुच्चैःश्रवसं प्रतिष्ठाप्य ॥ १ ॥
सुशुभे भूमिविभागे पूर्वोत्तरजलप्लवविधानात् ।
तस्मिन् शालां क्षिप्त्वा दशहस्तसमुच्छ्रितां दृढां कुर्यात् ॥ २ ॥
खादनकोष्ठकमस्मिन् हस्तद्वितयं समुच्छ्रितं कुर्यात् ।
संस्थाप्य वृषभगावौ सप्ताहं वाजिशालायाम् ॥ ३ ॥
अत ऊर्ध्वं न्तु हुताग्निः प्रवेशयेद्वाजिनो यथायोग्यम् ।
कुशलैस्तरुणैर्दक्षैरनुकूलैः स्थानपालैश्च ॥ ४ ॥
कृतमङ्गलसंस्कारा बन्धव्यास्तोऽत्र चोत्तराभिमुखाः ।
नात्यायता न शिथिलाः स्थाने वा दक्षिणाभिमुखम् ॥ ५ ॥
वैद्यानां तुरगाय समीपं गृहं कारयेत् पूर्वम् ।
कार्यांसिकेन सूत्रेण मात्सिकाणां निवारणम् ॥ ६ ॥
गन्धैर्मात्स्यैर्वृषैः स्थानानि विभूषयेदलङ्कारैः ।
सविशेषं त्वद्यपोती हुताग्निं पूरयेद्विद्वान् ॥ ७ ॥
स्वच्छिद्रं नातियवसं यथा पश्यन्ति वाजिनः ।
स्थानं चैव पृथक् प्राप्तं प्रयत्नं रोगिणां न वै ॥ ८ ॥
कोष्ठी कुष्ठी ज्वरो यक्ष्मी परस्परं दूषयति क्षारैः ।
तिथिवारे केशांश्च खुरांश्च प्रघ्नन्ति दीर्घान् ॥ ९ ॥
अश्वस्याङ्गे प्रलिपेद्वरिद्रया वरिष्ठया मङ्गल्या च ।
सुपवित्वान् दोषघ्नैर्विभूषयेदलङ्कारैः ॥ १० ॥

इति श्रीनकुलकृतेऽश्वचिकित्सितेऽश्वशालाविधि-

अष्टादशोऽध्यायः ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ।



पण्डितकुलपतिः

श्रीजीवानन्दविद्यासागर वि, ए,

PANDIT JIBANANDA VIDYASAGARA I. A.

Superintendent Free Sanskrit College, Calcutta.

